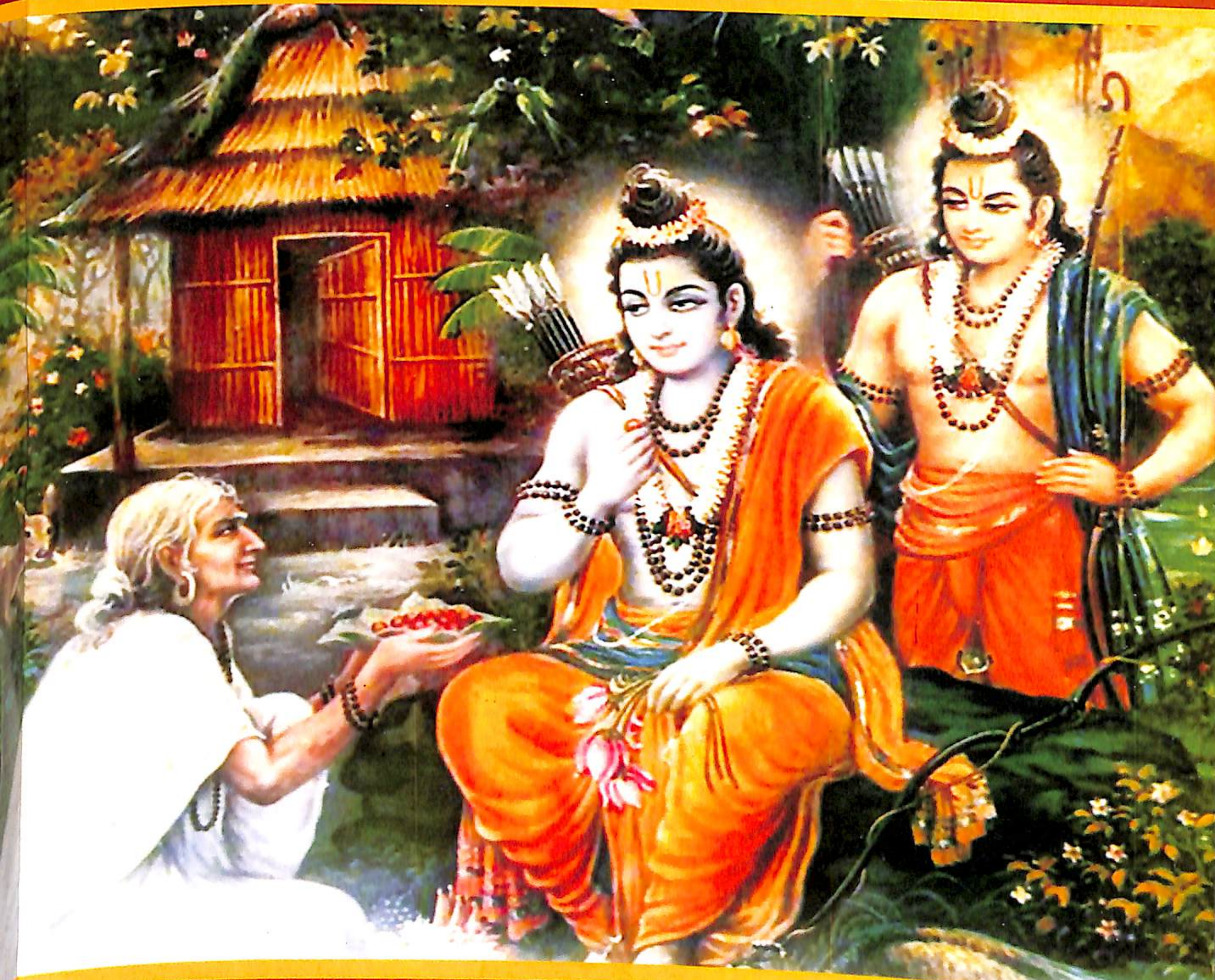
धर्मो रक्षति रक्षितः

स्मारिका

दशहरा २०१२

संख्या ३३



महंत बाबा हाथीराम पजावा रामलीला कमेटी, इलाहाबाद

स्मारिका

विजयदशमी | 2012 ई. | संख्या 33

सम्पादक

डा. योगेन्द्र प्रताप सिंह

महंत बाबा हाथीराम पजावा रामलीला कमेटी, इलाहाबाद की स्थायी समिति द्वारा प्रकाशित एवं श्वेता जाब्स, इलाहाबाद द्वारा लेजर-टाइपसेटिंग तथा राभू प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद द्वारा मुद्रित। आवरण : आईडियल ग्राफिक्स

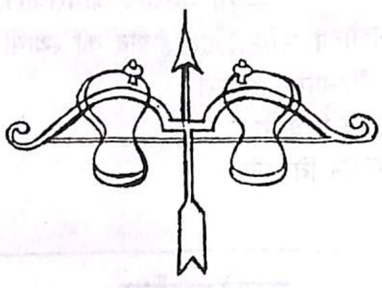
पुष्पाञ्जलि

उल्लेखनीय

- महंत बाबा हाथीराम पजावा रामलीला कमेटी, इलाहाबाद, द सोसाइटीज़ एक्ट, 1960 ई. के अन्तर्गत पंजीकृत है, पंजीकृत संख्या 1501।

दशहरा 2012 ई. के लिये सहायक निबन्धक, फर्म, सोसाइटीज़ एवं चिट्स, इलाहाबाद द्वारा गठित समिति

1. श्री अशोक कुमार सिंह, सहायक निबन्धक, फर्म, सोसाइटीज़ एवं चिट्स, चेयरमैन
2. श्री सुरेश चन्द टण्डन (बड़े बाबू)
3. श्री सतीश चन्द टण्डन
4. श्री अमित कुमार कपूर
5. श्री रामजी केसरवानी
6. श्री शम्मी कपूर
7. श्री अमिताभ टण्डन



अपनी बात

रामलीला : लोकजीवन तथा अध्यात्म

सामान्यतया यह स्वीकार किया जाता है, भारतीय नाट्य परम्परा के उपरूपकों की परम्परा में 'रामलीला' का विकास हुआ होगा। रासक, हल्लीसक आदि लोकनाट्य की परम्पराएँ उपरूपक संवर्ग से इसी एक स्थिति में मिलती है किन्तु रामलीला प्रकरण का लोकनाट्य संदर्भ इन सबसे भिन्न रहा है। लोकनाट्य की प्रकृति एकाङ्गमुखी है, अर्थात् नाट्य के द्वारा अभिनय के माध्यम से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष जैसे मन्तव्य की अनुभूति के बाद उसका समापन संदर्भ अनिवार्य हो जाता है। राम का व्यक्तित्व दुहरा है, दुष्यन्त आदि नायकों का चरित्र केवल एक पक्षीय है—वे केवल प्रकृत नामधारी व्यक्ति कथा के मन्तव्य के अनुसार अपने को व्यक्त करते हैं किन्तु राम एक ओर पुरुष हैं तथा दूसरी ओर ब्रह्म। उनका लोक-जीवन लीला का माध्यम है किन्तु ब्रह्म रूप राम दूसरी ओर अज, अद्वैत, अज्ञेय, निर्लेप तथा चिदानन्दघन हैं। लीला तथा नाट्य विधान में सबसे बड़ा अन्तर यही है कि अवतरित रूप (ब्रह्म का सगुण रूप) सर्वथा मानवीय है किन्तु उससे निकलने वाली व्यंजना आध्यात्मिक है। लोक तथा आध्यात्म भावनाओं का अन्तरंग सम्मिलित द्वन्द्व लीला की अभिव्यक्ति है और इसीलिए भक्तगण लोक में 'तीन साधनाओं' पर निरन्तर बल देते रहे हैं—नाम साधना, रूप साधना तथा लीला साधना। कतिपय पंडितों ने **'नाम एवं लीला'** साधना को ध्वनि सिद्धान्त के माध्यम से देखने का प्रयास किया है और बताया है कि लीला में नाम, रूप, कथा तथा उसकी प्रस्तुति वाच्य है—उससे व्यंजित आध्यात्मिक संदर्भ व्यंग्य या व्यंजना है। उनकी दृष्टि में, लीला नाट्य स्वयं में साधन है और साध्य है, प्रभु की आध्यात्मिक शक्ति (अभिव्यंजना)। लीला एवं प्रभु के बीच स्थापित यह मन्तव्य भी संगत नहीं है, नाट्कादि तो साहित्य के साधन हैं और साध्य हैं, नाट्याभिप्राय की अभिव्यक्ति किन्तु लीला के अन्तर्गत लीला प्रस्तुति का स्वरूप एवं मन्तव्य दोनों समाज स्तर के हैं। प्रभु की नाट्य लीला एवं उसकी आध्यात्मिक अभिव्यंजना दोनों साध्य हैं—प्रभु की लीला प्रस्तुति एक ओर भक्ति के लिए नितान्त काम्य है तो दूसरी ओर उसकी आध्यात्मिक अभिव्यंजना उससे भिन्न नहीं की जा सकती, अतः लीलाभिव्यक्ति को नाट्याभिव्यक्ति के अंग के रूप में नहीं देखना चाहिए। यहाँ लीला का मूल मन्तव्य प्रभु श्रीराम का लोक रंजन तथा आत्मविलास है और ये दोनों तत्त्व लोक द्वारा काम्य एवं उनसे सम्बद्ध आध्यात्मिक अभिव्यंजना के सम्पोषक हैं। इसीलिए लीला काव्य के निरन्तर तीन पक्ष साथ-साथ चलते रहते हैं—

(1) लोक के लिए आध्यात्मिकता से सम्पृक्त प्रभु का रंजक रूप

(2) आराध्य राम के हँसने, बोलने, कामनाओं की अभिव्यक्ति आदि से जोड़कर भक्त का भक्ति रूप से तादात्म्य

(3) आध्यात्मिक आनन्द की फल रूप में अभिव्यक्ति

लीला के सम्पर्क में 'अज्ञ जन' भी आता है, किन्तु उसकी चित्तदशा लोक से सम्बद्ध मोह मुग्धता से ही जुड़ी रहती है।

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहि............।

राम के वनगमन एवं दशरथ के विलाप या लक्ष्मण शक्ति प्रकरण में 'राम-विलाप' को हम उदाहरण के रूप में ले सकते हैं। दशरथ अन्त तक राम को अपना पुत्र ही स्वीकार करते रहे हैं—सर्वप्रिय पुत्र। इस सर्वप्रिय पुत्र की लालसा को मनु-शतरूपा प्रसंग में व्यक्त करते हुए वे वर माँगते हैं कि कोई मुझे कितना भी मूढ़ तथा अज्ञानी व्यक्ति क्यों न कहे, मैं राम को जीवन-पर्यन्त अपना पुत्र ही समझता रहूँ। अन्ततः पुत्र राम के वियोग गमन की पीड़ा में उनका प्राणान्त हुआ और कवि की टिप्पणी भी यहाँ विचारणीय है—

ताते उमा मोक्ष नहिं पायो। दशरथ भेद भगति मन लायो।

यह निरन्तर 'राममयता' की लोक वासना भी स्वयं भक्ति है और अवसर पाकर भगवान् स्वयं उसको पुनः अपना आध्यात्मिक स्वरूप दिखा कर मुक्ति देते हैं। लीला के द्वारा राम के चरित्र को देखकर जो लोकभाव में मुग्ध होकर राममय हो उठते हैं, उनमें अचेतन भाव से राम के संस्कार जागृत होते हैं और उन्हें भी समय पाकर राम स्वयं से अंगीकृत कर लेते हैं। यह मध्यकालिक भक्ति का प्रथम सोपान है। वे जो आध्यात्मिकता से पूरी तरह से अपरिचित अज्ञ जन हैं, रामलीला के द्वारा जिस सुख, दुःख, हर्ष, ममत्त्व, आत्मीयता आदि की आत्मानुभूति करते हैं—वे भी भक्ति के अगम्य सरोवर में प्रवेश पाने की स्वयं में एक भूमिका तैयार करते हैं।

इस प्रसंग का दूसरा पक्ष **'बुध होहिं सुखारे'** का है अर्थात् श्रीराम की लीला का अवलोकन करके या पढ़कर या सुनकर जो अत्यन्त प्रसन्न हो उठते हैं। राम लक्ष्मण की मूर्च्छा पर गहन कारुणिक विलाप कर रहे हैं और इस विलाप का श्रोता पर प्रतिफल पीड़ादायक है। हरिश्चन्द्र नाटक में श्मशान घाट का कारुणिक प्रसंग किस दर्शक (सामाजिक) को पीड़ाबोध नहीं कराता किन्तु राम की लक्ष्मण वियोग की असह्य पीड़ा भक्तों के लिए हास्य, मनोरंजन एवं आत्मानन्द का कारण बनती है—क्यों? इसलिए कि वह ब्रह्म जो अज, अद्वैत, भवकष्ट मोचक है, लोक को दिखावे के लिए रो रहा है—वह रो नहीं रहा है, रोने की लीला कर रहा है—यह उसकी लोक लीला के लिए लीला है। लोकनाट्य में इस प्रकार की प्रस्तुतियों का पक्ष नाट्यदोष समझा जाता है किन्तु लीला संदर्भ में राम का रुदन लोक में सर्वथा विपरीत पीड़ा व्यंजक नहीं, हास और उपहास का विषय है। नाट्य की प्रस्तुति देश-काल, परिवेश की सीमा से बद्ध है किन्तु लीला की प्रस्तुतियों में देश-काल, परिवेश मात्र दिखावटी तथा भक्त मर्मज्ञों के लिए उपहास एवं रंजन का विषय है।

2. भक्ति की व्याख्या का एक दूसरा पक्ष भी है वह यह कि अवतरित ब्रह्म की समस्त लीलामयता में भक्त की आत्मसंलिप्ति एवं सर्वथाभावेन तन्मयीभूतता उसके लिए श्रेष्ठतम मानक है। इस दृष्टि से, प्रभु का समग्र लीला विलास ही भक्ति है। इस संवर्ग के दर्शक भक्त निरन्तर प्रभु की लीला में लीन प्रभुमय होकर रहते हैं।

इनके लिए लीला उनके भक्ति चैतन्य का भावात्मक प्रवाह है जो निरन्तर अपनी लीलामयिता में उन्हें आमग्न किए रहता है। रामचरितमानस में शिव के संदर्भों को देखें। शिव निरन्तर राममय होकर रहते हैं और उनकी लीलाओं का मर्म उन्हें सर्वथा अपने में आमग्न किए रहता है। मानसेतर अनेक राम कथाओं में शिव राम जन्म के बाद हनुमान को बन्दर बनाकर राम के बाल्य मनोरंजन के लिए अयोध्या जाते हैं और यहाँ उनका मुख्य मन्तव्य राम की लीलामयता में स्वयं का विलयन ही है। तुलसी के रामचरितमानस में लीला के इस प्रसंग की व्याख्या उमा के प्रश्न के उत्तर में शिव देते हैं—

मगन ध्यान रस दण्ड जुग मन पुनि बाहेर कीन्ह।
रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह॥

यही रघुवर ही भक्तों के लिए श्रीराम की लीला है। इस लीला चरित के सन्दर्भों में ही शिव एक क्षण के लिए तन्मयीभूत हो उठे थे, फिर लीला के रहस्य को समझाते हुए बताते हैं—

झूँठेउ सत्य जाहि बिनु जाने। जिमि भुजंग बिनु रज पहिचाने।
जेहिं जाने जग जाइ हेराई। जाने जथा सपन भ्रम जाई।
बंदउँ बालरूप सोह रामू। सब सिधि सुलभ जपत जिस नामू।
मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी।

दशरथ के आँगन में बाललीला में बिहार करने वाले राम कौन हैं, वह बालरूप लीला किसकी है, ब्रह्म राम की है और जिसकी लीला की संसक्ति इस मोहतृष्णामयी संसार को चित्त से पकड़ कर सदा-सदा के लिए उसे बाहर निकाल देती है, ऐसी श्रीराम लीला ही भक्त समाज को प्रतिक्षण संसक्त किए हुए निरन्तर उन्हें अपने में भावनिमग्न लिए रहती है। लीला के आनन्द के निष्कर्ष की ओर ध्यान आकर्षित कराते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि—

अगुनहिं सगुनहिं नहिं कहु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा।
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगति प्रेम बस सगुन जो होई।
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे। जल हिम उपल विलग नहिं जैसे।

लीला राम और ब्रह्म राम दोनों अभिन्न हैं और लीलामय भक्त उनकी लीला में ही उस अभिन्नता को एक करके निरन्तर उनके तादात्म्य सुख में लीन रहते हैं।

3. लीला द्वारा आध्यात्मिक आनन्द की फलरूप भक्ति की प्राप्ति—मध्यकालीन सन्दर्भ में भक्ति की अनेक परिभाषाएँ मिलती हैं। शांडिल्यभक्ति सूत्र, नारद भक्ति सूत्र, भागवत पुराण आदि में लीला भक्ति के आनन्दधर्मी सन्दर्भों को बार-बार व्यंजित किया गया है। लीला भक्ति की सबसे सुन्दर परिभाषा गोस्वामी तुलसीदास जी की है—

जासौं बेगि द्रवौं मै भाई।
सो मम भगति भगत सुखदाई।।

प्रभु श्रीराम कहते हैं कि मेरे लीला सन्दर्भों से जुड़े भक्त के जिस आचरण से मैं तुरन्त द्रवित को उठूँ, वही भक्ति है। यह लीला सन्दर्भ में भक्ति की परिभाषा है। लीलामयी श्रीराम के प्रति अनेक जन अनेक भावों से ओत-प्रोत आचरण करते हैं—उनमें से कतिपय आचरण ऐसे हैं, जो मुझे त्वरित ही द्रवित कर देते हैं, जैसे—केवट प्रसंग को देखें–वह राम को विवश करता है कि बिना उनका चरण धोये नदी पार नहीं कराएगा। इस हठ से राम आनन्दित हो उठते हैं, उसका हठ ही राम की लीलाभक्ति है। शबरी हठ करती है कि मैं चख कर ही आपको खाने के लिए बेर दूँगी, कहीं वे खट्टे न निकलें और आपका मन खिन्न न हो–श्रीराम उसके आग्रह को स्वीकार करके जूठे बेर बार-बार खाते हैं–लीलाभक्ति का यही भावमय साक्ष्य है। राम-रावण युद्ध हो रहा है, मरते-मरते भी रावण अपना अमर्ष नहीं छोड़ता और मृत्यु क्षण में भी वह चीखता है—**"कहाँ राम रण हतौं प्रचारी"**। रावण के अमर्ष पर राम हँस पड़ते हैं और उसके तेज को अपने में समन्वित कर लेते हैं—रावण का यह अमर्ष भी भक्ति है। राम सम्पूर्ण सृष्टि के पिता हैं—जगत्पिता। उन्हें सम्पूर्ण सृष्टि के

सचराचर से आसीम मोहपूर्ण प्रेम है—"**सब मम प्रिय सब मम उपजाए। सबसे अधिक मनुज मोहिं भाए।**" फिर, उनकी लीला अपने शिशुओं के लिए ही तो है। लीला की सम्पूर्ण निष्पत्ति आध्यात्मिक आनन्द की है, लीला स्वयं में लोकमयी व्यवहार रचना है और इस व्यवहार रचना को ब्रह्म से जोड़कर मानव समाज को निरन्तर कलेश से मुक्त रखना मध्यकालीन भक्ति का सर्वथा समर्थ पक्ष है। कल्पना करें, सम्पूर्ण भारत गुलामी, आतंक, अराजकता, हिंसा, उपद्रव, लूट, गरीबी, अशिक्षा जैसे संकटों के बीच पीड़ा तथा कष्ट झेलता हुआ, जिस प्रकार जीवन जी रहा था, लीलाभक्ति के आनन्द के माध्यम से इन भक्त कवियों ने उसे ईश्वरावलम्बन देकर अन्तर्मुखी लीलाभक्ति से जोड़ा है। पीड़ित भारतीय समाज को आनन्दमय जीवन जीने के लिए यह लीलाभक्ति स्वयं में एक वरदान ही नहीं बनी अपितु नवजागरण के सन्दर्भ से भी जुड़ी। इसके द्वारा भारतीय समाज अपनी आत्मरक्षा करता हुआ भविष्य के उत्कर्ष की सम्भावनाओं से अपने को निरन्तर जोड़े रहा है। अन्याय के विरुद्ध युद्ध, गर्हित मूल्यों के प्रति तिरस्कार, रामराज्य की स्थापना, अतीत की पुनर्प्रस्तुति, गरिमामयी भारत की पुनर्स्थापना आदि-आदि सन्दर्भों के प्रति सचेष्ट करने वाली श्रीराम की यह लीला शतियों-शतियों से हम भारतीयों के लिए प्रेरणास्रोत रही है–और उस युग के सन्दर्भ तथा परिवेश को ध्यान में रखकर हम इस 'लीलाभक्ति' को निश्चित रूप से सामाजिक जागरण की संवाहिका के रूप में स्वीकार कर सकते हैं।

'स्मारिका' को सम्हालने एवं इसे भव्य रूप में रखने तथा प्रूफ रीडिंग आदि द्वारा इसे संशोधित करने का दायित्व श्रीमती शैल टण्डन जी ने स्वीकार करके सहज भाव से उसे पूरा किया है। उनके अतिरिक्त भी प्रूफ रीडिंग में श्री रामदास अग्रवाल ने जो योगदान किया है इसके लिए हम उनके आभारी हैं।

इसके प्रकाशन एवं मुद्रण का दायित्व श्री रामचन्द्र शर्मा एवं श्री रमेश कुमार जी के ऊपर है और अपने इस दायित्व के प्रति वे निरन्तर तत्पर रहे हैं और उन्हीं के प्रयास से समय पर यह स्मारिका आपके हाथ तक पहुँचती है।

अन्त में, महंत बाबा हाथीराम पजावा रामलीला कमेटी, इलाहाबाद को ज्ञात तथा अज्ञात भाव से सहयोग देने वाले सभी सामान्य बन्धुओं के प्रति स्मारिका की ओर से मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

—योगेन्द्र प्रताप सिंह

रचनाकारों से विनम्र निवेदन

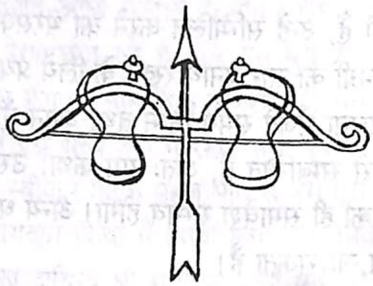
महंत बाबा हाथीराम पजावा रामलीला कमेटी
68/57 रानीमण्डी, इलाहाबाद-211003

देश के कोने-कोने से भगवत्प्रेमी विद्वान साहित्यकार स्मारिका के लिए स्वेच्छया अपनी रचनाएँ उदारतापूर्वक निरन्तर भेज रहे हैं, यह प्रभु राम की महिमा तथा ऐसे सहृदय रचनाकारों की सहज आत्मीयता है। यद्यपि हम सभी रचनाओं का सादर स्वागत करते हैं, उन्हें सम्मिलित करने का भरसक प्रयत्न भी करते हैं, फिर भी हमारी अपनी सीमाएँ हैं। इसके साथ हम सामग्री का स्तर बनाये रखने के लिये प्रयत्नशील हैं। आपके अपेक्षित सहयोग से हमें सुविधा होगी, इस सन्दर्भ में रचना भेजते समय निम्न तथ्य ध्यान में रखने से प्रकाशन में सरलता होगी।

1. रामलीला कमेटी मुख्यतः राम से सम्बन्धित है, अतः राम कथा, उसके पात्रों, रचनाकारों, विभिन्न पक्षों, व्याख्या से सम्बन्धित रचनाओं का ही समावेश सम्भव होगा। अन्य धार्मिक विषयों, आध्यात्मिक सिद्धान्तों आदि का उपयोग अन्यत्र किया जा सकता है।
2. स्मारिका रूपी राम मन्दिर में रचनाकार अपनी रचना के माध्यम से प्रभु राम के चरणों में पुष्प अर्पित करते हैं। कोई भी भक्त भगवान् के चरणों में बासी अथवा झूठे पुष्प नहीं अर्पित करता। अतः आशा है, प्रबुद्ध रनाचाकर अपनी मौलिक तथा पूर्व अप्रकाशित रचना ही स्मारिका के लिए भेजेंगे।
3. रचना लेख कागज के एक ओर सुस्पष्ट लिखी हो। कम्पोजिंग में सुविधा की दृष्टि से रचनाएँ टाइप की गयी हों तो सुविधा होगी तथा उन्हें प्राथमिकता भी मिलेगी। कभी-कभी श्रेष्ठ रचनाएँ अस्पष्ट लिखावट के कारण ही हमारी इच्छा के बावजूद सम्मिलित होने से वंचित हो जाती हैं।
4. अधिकतम रचनाकारों को स्थान देने की दृष्टि से हमारे लिए स्मारिका में एक रचनाकार की एक ही रचना प्रकाशित करना सम्भव हो पाता है। यदि रचना अच्छी है तो उसे हम सुविधानुसार भविष्य में उपयोग के लिये रख लेते हैं। हम इस सन्दर्भ में रचनाकारों के स्नेह, उत्साह का सादर अभिनन्दन करते हैं।
5. अपनी रचना (लेख तथा कविता विशेषतः) का आकार छोटा रखें, इससे हमारे लिए अधिकतम रचनाओं को स्थान देना सम्भव होगा तथा पाठकों को पढ़ने में भी सुविधा होगी।
6. औसत भारतीय राम कथा के घटनाक्रम से सुपरिचित हैं, अतः लेखों के मात्र उसी घटनाक्रम का विस्तृत उल्लेख कर पुनरावृत्ति करने की अपेक्षा किसी पक्ष, नये दृष्टिकोण, व्याख्या आदि को प्रस्तुत करें, अपने कथन की पुष्टि में उद्धरण कम दें। भावार्थ तथा उद्धरण में से एक ही दें। लम्बी व्याख्या, पुनरुक्ति पर नियन्त्रण से लेख सुगठित होगा।

7. अनेक छात्र-छात्राएँ, युवा रचनाकार रचनाएँ भेजते हैं। हम उनके उत्साह का सादर अभिनन्दन तथा उनके प्रति मंगल कामना भी करते हैं, परन्तु स्मारिका के स्तर की दृष्टि से ऐसे उत्साही रचनाकार अपने अध्यापक, वरिष्ठ रचनाकार अथवा अभिभावक के मार्गदर्शन में तैयार रचना शुद्ध करके भेजें।
8. अपनी रचना 15 मई तक भेजें, विलम्ब हो जाने पर श्रेष्ठ रचना को भी सम्मिलित करना सम्भव नहीं हो पाता। स्मारिका के लिए रचनाएँ जनू के प्रथम सप्ताह तक आ जानी चाहिए।
9. शोधपरक मौलिक लेखों के अन्त में सन्दर्भ : ग्रन्थों की सूची, आवश्यक पाद टिप्पणियाँ अनिवार्यतः लेख में दिये गये उद्धरणों की शुद्धता की सावधानीपूर्वक जाँच कर लें। संस्कृत में उद्धरणों का विशेष ध्यान रखें। शोधपरक लेख विशेष रूप से स्वीकार्य हैं।

—सम्पादक



खण्ड-एक

विचार तथा चिन्तन

राम से सम्बन्धित नैतिकता के प्रश्न

डा. कीर्तिकुमार सिंह
इलाहाबाद (उ.प्र.)

भगवान राम को मर्यादा पुरुषोत्तम माना जाता है, अर्थात् एक आदर्श व्यक्ति में अधिकतम् जो-जो सद्‌गुण होने चाहिए, राम उन सबके समुच्चय थे। इसके बावजूद अपने जीवन में राम ने कुछ ऐसे भी कार्य किये, जिस पर लोग उँगली उठाते हैं। उदाहरण के लिए उन्होंने शूर्पणखा से झूठ बोला था कि मेरा छोटा भाई लक्ष्मण अभी कुँवारा है– **'अहइ कुमार मोर लघु भ्राता'**। इसी तरह उन्होंने बालि को पेड़ की ओट से छुपकर मारा था। उन्होंने सीता की अग्नि परीक्षा लेकर नारी जाति का अपमान किया। उन्होंने एक धोबी की शंका को महत्त्व देते हुए सीता को राजमहल से निकाल दिया है, आदि-आदि।

दरअसल नैतिकता के प्रश्न गणित के समान नहीं होते कि 2+2=4 ही होगा। नैतिकता के सन्दर्भ में जब भी दुविधा या धर्मसंकट खड़ा होता है तो उसका समाधान करना आसान नहीं होता। एक सामान्य बुद्धि का व्यक्ति ऐसा धर्मसंकट खड़ा होने पर बड़ी आसानी से निर्णय ले सकता है, परन्तु व्यक्ति जितना ही विद्वान् और मर्मज्ञ होगा, उसके लिए निर्णय लेना उतना ही कठिन होगा। जब द्रौपदी का चीरहरण हो रहा था तो नैतिकता के सन्दर्भ में भीम ने बड़ी आसानी से निर्णय ले लिया। उन्होंने कहा कि "मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि युद्धभूमि में मैं दुर्योधन की जाँघ को अपनी गदा से तोड़ डालूँगा।" लेकिन परम् नीतिज्ञ भीष्म पितामह यह निर्णय नहीं ले पाये कि ऐसी परिस्थिति में मेरे लिए क्या करना उचित होगा। वे एक तरफ अपनी प्रतिज्ञा से बँधे थे कि जो भी हस्तिनापुर के सिंहासन पर बैठा रहेगा, मैं उसके प्रति पूरी तरह से वफादर रहूँगा। वहाँ जो कुछ भी हो रहा था, हस्तिनापुर नरेश धृतराष्ट्र की उससे असहमति नहीं थी। दूसरी तरफ पुरुषों से भरी सभा में एक नारी का चीरहरण हो रहा था, जो कि गलत था। सब कुछ हो गया, लेकिन भीष्म अन्त तक यह निर्णय नहीं कर पाये कि ऐसी स्थिति में मेरे लिए क्या करना सही होगा?

हमारे शास्त्रों में भी इस समस्या को समझा गया है। नीतिज्ञ इस बात को भली-भाँति समझते थे कि नैतिकता सम्बन्धी दुविधा खड़ी होने पर सामान्य व्यक्ति यह निर्णय नहीं कर पाता कि ऐसी स्थिति में क्या करना सही होगा और क्या करना गलत? ऐसी स्थिति में–सदा सत्य बोलो, बड़ों का आदर करो, जीवों पर दया करो; जैसे किताबी सिद्धान्त व्यक्ति की मदद नहीं कर सकते। इसीलिए हमारे यहाँ ऐसी परिस्थिति से निबटने का उपाय बताया गया है। **'महाजनो येन गता स पन्थः'**। अर्थात् हमें यह देखना चाहिए कि ऐसा धर्मसंकट पैदा होने पर किसी महापुरुष ने क्या किया था? महापुरुष ने वैसी स्थिति पैदा होने पर जिस मार्ग का अनुसरण किया था, हमें भी उसी मार्ग पर चलना चाहिए। वैसी स्थिति पैदा होने पर महापुरुष ने झूठ बोला था तो हमें भी उस समय झूठ बोलना चाहिए क्योंकि ऐसी स्थिति में सदा सच बोलो का किताबी सिद्धान्त हमें पाप का भागी बना सकता है।

प्रश्न उठता है कि राम ने शूर्पणखा से झूठ क्यों बोला कि मेरा छोटा भाई कुँवारा है। इसका उत्तर है कि इसी झूठ से रावण को मारने की भूमिका तैयार हुई। **विप्र, धेनु, सुर, सन्त हित लीन्ह मनुज अवतार।** भगवान ने सबके हित में रावण को मारने के लिए मनुष्य के रूप में जन्म लिया था। सब ने बारम्बार भगवान से प्रार्थना की थी कि हमें रावण के अत्याचारों से मुक्ति दिलाइए, तब उन्होंने मनुष्य का रूप धारण किया था। भगवान तफरीह करने के लिए मनुष्य के रूप में नहीं पैदा हुए थे। उन्हें किसी भी तरह से रावण को मारना था। चूँकि वे मर्यादा पुरुषोत्तम थे, अतः वे बिना किसी अपराध के ही रावण को नहीं मार सकते थे। अतः रावण को मारने के लिए पहले उन्होंने भूमिका तैयार की। इस झूठ के कारण शूर्पणखा के नाक-कान काटे जो अन्ततः रावण की मृत्यु के कारण बने।

कहा गया है–

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।।

तुलसीदास ने भी रामचरितमानस में इसी का भावानुवाद किया है–

परहित सरिस धर्म नहीं भाई। परपीडा सम नहिं अधमाई।।

अर्थात् निरपेक्ष नैतिकता का सन्दर्भ वस्तुतः दो ही चीजों से जुड़ा है। परोपकार या परहित करने से पुण्य मिलता है। अर्थात् परोपकार या परहित करना नैतिक है। दूसरे को कष्ट पहुँचाने से पाप होता है, अर्थात् दूसरे को कष्ट पहुँचाना अनैतिक है। यहाँ दूसरे को कष्ट पहुँचाने का तात्पर्य है, जानबूझकर दूसरे को कष्ट पहुँचाना। आपका बेटा उन्नति कर रहा है और इसके कारण आपका पड़ोसी जल-जलकर मरा जा रहा है तो आप पाप के भागी नहीं होंगे। आप अपने पड़ोसी को जानबूझकर कष्ट नहीं दे रहे हैं। वह अपनी बुरी मनोवृत्तियों के कारण कष्ट पा रहा है। इसी तरह परोपकार भी आप अच्छी भावना से कर रहे हैं, तभी आप पुण्य के भागी होंगे। आप किसी भिखारी को दयापूर्वक दस रुपये दे रहे हैं तो आपका यह काम नैतिक है, परन्तु यदि आप उस भिखारी को चोट पहुँचाने के इरादे से खींचकर दस रुपये का सिक्का उसके सिर पर मारते हैं और भिखारी उस सिक्के को उठाकर खाने का सामान खरीद लेता है तो आपका कार्य नैतिक नहीं माना जायेगा।

इस तरह परोपकार या परहित नैतिक और परपीड़ा अनैतिक है। इन दो तथ्यों को छोड़कर किसी भी नैतिक तथ्य को निरपेक्ष नैतिकता की कोटि में नहीं रखा जा सकता। सदा सत्य बोलो। यह एक नैतिक तथ्य है। परन्तु इस सिद्धान्त को निरपेक्ष रूप में नैतिक नहीं माना जा सकता। मानवता की भलाई के लिए, किसी के हित के लिए झूठ बोला जा सकता है। अतः शूर्पणखा से झूठ बोलना राम का अनैतिक कृत्य नहीं था।

दूसरा प्रसंग बालि-वध का है। राम ने बालि को पेड़ की आड़ से छुपकर मारा था। स्वयं बालि राम से शिकायत करता है–

धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि ब्याध की नाईं।।
मैं बैरी सुग्रीव पिआरा। अवगुन कवन नाथ मोहिं मारा।।

इसका उत्तर देते हुए राम कहते हैं–

अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी।।
इन्हहिं कुदृष्टि बिलोकई जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई।।

अर्थात् छोटे भाई की पत्नी, बहन, बेटे की पत्नी और पुत्री–ये चारों एक समान होती हैं। इन पर जो कुदृष्टि डालता है, उसे मारने से कोई पाप नहीं होता। दरअसल बालि अपार शक्तिशाली था और वह अपनी शक्ति

के घमण्ड में चूर था ठीक रावण की ही तरह। परम शक्तिशाली होने पर अत्यन्त विवेकवान ही अपने को अहंकार से बचा पाता है–

नहिं कोउ अस जनमा जग माँहीं। प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं।।

व्यक्ति जब अहंकार से ग्रस्त हो जाता है तो वह मदान्ध हो जाता है तथा वह सही और गलत का विवेक खो देता है। वह सोचता है कि मैं जो भी कर्म-कुकर्म कर रहा हूँ, वही नियम है। बालि पापी बन बैठा था, इसलिए राम ने उसे मारा। अब प्रश्न यह उठता है कि राम ने उसे छुपकर क्यों मारा? प्राचीनकाल की युद्धनीति के अनुसार एक योद्धा दूसरे योद्धा को सामने से ललकारता था। आमने-सामने का युद्ध होता था और उसी से जय-पराजय निर्धारित होती थी। किसी पर छुपकर वार करना कायरता मानी जाती थी।

यह एक सर्वज्ञाता तथ्य है कि बालि को यह वरदान प्राप्त था कि सामने से उससे जो भी लड़ेगा, उसकी आधी शक्ति बालि के अन्दर चली जायेगी। बालि मानवता का अपराधी था। उसे हर हाल में मारना आवश्यक था। अतः उसे छुपकर के मारने के अलावा और कोई चारा नहीं था। इस तरह के बहुत से उदाहरण हम महाभारत में भी देखते हैं कि भगवान कृष्ण ने बहुत से वरदान प्राप्त योद्धाओं को छल से मरवाया। इसी कराण से कृष्ण की नैतिकता पर भी सवाल उठाये जाते हैं। कृष्ण ईश्वर के अवतार हैं। फिर भी, महाभारत में कई बार छल करते हुए दिखायी पड़ते हैं। यह कैसा ईश्वरत्व है? महाभारत में कहा गया है–

यतो धर्मस्ततो जयः।

अर्थात् जहाँ पर धर्म है, वहीं पर जय है। तात्पर्य यह कि सत्य की ही विजय होती है। तब असत्य का सहारा लेकर कृष्ण कैसे जीतते हैं? महाभारत में इसका उत्तर दिया गया है। महाभारत प्रश्न पूछता है कि धर्म या सत्य क्या है? क्या धर्म या सत्य की कोई निरपेक्ष सत्ता है। महाभारत कहता है कि धर्म या सत्य अपने आप में निरपेक्ष कोई सत्ता नहीं है–

यतो कृष्णः ततो धर्मः। यतो धर्मस्ततो जयः।।

अर्थात् हमेशा धर्म या सत्य की ही विजय होती है और जहाँ पर कृष्ण हैं, वहीं पर धर्म या सत्य है। इस तरह से राम ने जो भी कार्य किया है, वही नैतिकता का उदाहरण है और वैसी स्थिति पड़ने पर हमें भी वैसा ही करना चाहिए।

राम के सम्बन्ध में एक अन्य आपत्ति उठायी जाती है कि उन्होंने सीता की अग्नि परीक्षा ली थी। इस सम्बन्ध में हमें यह याद रखना चाहिए कि राजा को सही और न्यायप्रिय होना ही नहीं चाहिए बल्कि सही और न्यायप्रिय दिखायी भी पड़ना चाहिए। राम को सीता पर पूरा विश्वास था। वे संसार को सीता की पवित्रता दिखलाना चाहते थे। अग्नि परीक्षा देने की घटना से ही सीता के प्रति श्रद्धा और सम्मान का भाव संसार में फैला। आज के सन्दर्भ में यदि हम इस घटना को देखें तो राम का चरित्र और भी उज्ज्वल दिखायी देता है। आज का शासक वर्ग यह जानते हुए भी कि मेरा रिश्तेदार भ्रष्टाचार और अनाचार में गले तक डूबा है, वह किसी भी कीमत पर अपने रिश्तेदार के विरुद्ध कोई जाँच नहीं होने देना चाहता। शासन में बैठे हुए लोगों के रिश्तेदार देश को बुरी तरह लूट रहे हैं, लेकिन कहीं कोई किसी को बोलने वाला नहीं है। राम ने बिना किसी के कुछ कहे ही सीता की अग्निपरीक्षा का आदेश दे दिया क्योंकि उन्हें पता था कि आगे चलकर लोग सीता पर उँगली उठा सकते हैं। रामराज की महारानी बनने से पहले उन्होंने सबके सामने सीता को खरा सिद्ध करके दिखा दिया।

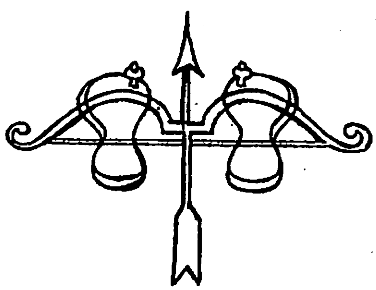
इसी तरह राम ने एक धोबी द्वारा सीता के चरित्र पर सन्देह करने पर सीता को महल से निकाल दिया। हम देखते हैं कि सीता जो राजसुख भोग रही थीं, वह अपने कारण नहीं बल्कि अयोध्या के राजा राम की पत्नी अर्थात् महारानी होने के कारण भोग रही थीं। अतः अयोध्या के महाराज की पत्नी होने के कारण जो दुःख उनके हिस्से आना था, उसे भी उन्हें ही भोगना था। राम सीता को अपने प्राणों से भी ज्यादा प्यार करते थे। उन्हें महल से निकालने का निर्णय उन्होंने अपने कलेजे पर पत्थर रखकर लिया होगा। उचित-अनुचित का पूरा विचार करने के उपरान्त उन्होंने बड़ी कठिनाई से यह निर्णय लिया होगा। राम का यह निर्णय दर्शाता है कि राज्य में एक व्यक्ति के विचार का भी बहुत महत्त्व होता है और प्रजा के वर्ग के प्रत्येक सदस्य के अभिमत का सम्मान किया जाना चाहिए। अभिज्ञान शाकुन्तलम् में कहा गया है कि–**'संता हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तः करण प्रवृत्तयेः।'** अर्थात् सज्जन लोग सन्देहपूर्ण प्रसंग उपस्थित होने पर अपनी अन्तरात्मा की आवाज सुनते हैं। यहाँ सीता के प्रकरण में न्याय करने के लिए राम ने अपनी अन्तरात्मा की आवाज सुनी और सीता को राजमहल से निकालने का निर्णय लिया। न्याय के सिंहासन पर बैठे हुए कितने लोग हैं जो अपने सबसे प्रिय को देश निकाले की सजा दे सकते हैं। दूसरों के साथ निर्मम न्याय करना बड़ा आसान होता है, परन्तु अपनों के साथ निर्मम न्याय विरले लोग ही कर पाते हैं। राम को पता था कि सीता के पेट में अयोध्या के भावी राजकुमार हैं। उस समय सीता गर्भवती थीं। उन्हें उन राजकुमारों के लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा की भी चिन्ता थी। उस समय राजकुमारों की शिक्षा-दीक्षा ऋषियों के आश्रम में होती थी। अतः राम ने सीता को ऋषि के आश्रम के पास छोड़ा। ध्यान देने की बात यह है कि राम ने सीता को किसी ब्राह्मण या क्षत्रिय कृषि के आश्रम के पास नहीं छुड़वाया। उन्हें छुड़वाया वाल्मीकि ऋषि के आश्रम के पास, जो कि निम्न जाति के थे। इस तरह राम ने जाति-पाँति की निरर्थकता पर एक बार फिर जोर दिया। राम का यह निर्णय पूरी तरह से सही सिद्ध हुआ। सीता की भली प्रकार से आश्रम में देखभाल हुई। लव-कुश का अच्छी तरह से पालन-पोषण हुआ और उच्चकोटि की उनकी शिक्षा-दीक्षा सम्पन्न हुई।

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि क्या नैतिक है और क्या अनैतिक है, इसका निर्णय करने में बड़े-से-बड़े विद्वान् और नीतिज्ञ को भी कठिनाई आती है। बहुत धर्मसंकट भरे नैतिक निर्णय में गणित की तरह नहीं कहा जा सकता कि ऐसा हुआ, ऐसा हुआ। अतः निष्कर्ष रूप में यही होगा। ऐसी परिस्थितियों में ऐसे निर्णय नहीं लिये जा सकते कि कोई उँगली ही न उठा सके। गीता में भी कहा गया है–

सत्यं किम् असत्यं किम् कवयोरपि मोहिता।

अतः ऐसी स्थितियों के लिए यही प्रमाण मानकर चलना चाहिए कि–

महाजनो येन गता स पन्थः।



रामायन सतकोटि महँ.....

सुरेश कुमार शुक्ल 'सन्देश'
खीरी (उ.प्र.)

चराचर संसार नाम रूपात्मक है। सम्पूर्ण भौतिक जगत ही ईश्वर का स्थूल स्वरूप है, जो सतत् परिवर्तनशील है। नाम और रूप में रूप परिवर्तनशील और शीघ्र ही नष्ट होने वाला है, जबकि नाम, रूप न रहने पर भी शेष रहता है और कुछ नाम तो चिरंजीवी हो जाते हैं और जो युग-युगान्तर तक अपनी पहचान बनाये रखते हैं। नाम की यह शक्ति सामर्थ्य नामधारी के गुणों एवं कर्मों से उत्पन्न होती है और धीरे-धीरे संचित होकर सूक्ष्म रूप से व्यक्ति के नाम में स्थिर हो जाती है। गुणों और कर्मों की मात्रा, उनकी गुणवत्ता, नाम की आयु का निर्धारण करती है। नाम का स्वरूप गुणवत्ता के आधार पर सात्विक, राजसिक एवं तामसिक हो सकता है, जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम राम और राक्षसराज रावण। नाम तो दोनों ही का अमर है; किन्तु राम के स्मरण से ही मन में उनके प्रति सात्विक श्रद्धा एवं समादर का भाव जाग उठता है, रोम-रोम आनन्दित हो उठता है। सहज रूप में गौरव का बोध होता है, रावण का स्मरण करने से ऐसा नहीं होता। अतः यह स्वयं सिद्ध है कि संसार में व्यक्ति नहीं गुण का ही महत्त्व है। इसलिए हमें अपने भीतर अधिकाधिक सद्गुणों को विकसित करना चाहिए। अवगुणों की उपेक्षा करते हुए धीरे-धीरे उनके निस्तारण का प्रयास तथा सद्गुणों के अंकुरण, पल्लवन, पुष्पन एवं फलन पर ध्यान देना चाहिए।

नाम की महत्ता, उसकी गुणात्मकता एवं जीवन पर पड़ने वाला उसका प्रभाव उसमें सन्निहित अक्षरों की अर्थवत्ता पर भी किसी-न-किसी मात्रा में निर्भर करता है। इसीलिए एक कहावत है–**'जथा नाम तथा गुण'**। व्यक्ति अपने नाम की मर्यादा का ध्यान रखते हुए अपने कर्त्तव्य का पालन करता था, किन्तु वर्तमान में उक्त कहावत अपनी अर्थवत्ता से स्खलित होती जा रही है। जो अत्यन्त सोचनीय एवं मननीय है। अक्षर और अर्थ की महत्ता एवं गुणवत्ता को ध्यान में रखते हुए 'राम' नाम पर विचार करते हैं। 'राम' शब्द में 'र' (रकार), 'आ' (अकार), 'म' (मकार) का सहज संयोग है। जिसमें 'र' अग्नि का बीज मन्त्र, 'आ' सूर्य का बीज और 'म' चन्द्रमा का बीज है। उक्त तीनों घटकों को सत्यापित करने के लिए कृसानु, भानु और हिमकर आदि तीन शब्दों का प्रयोग किया गया है। गोस्वामी जी ने उत्कृष्ट काव्य लाघव के साथ यहाँ पद संभंग पर यथाक्रम का प्रयोग किया है।

बंदउँ नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥

कृसानु, भानु और हिमकर से राम शब्द को संकलित कर विलग कर लिया जाये तो तीनों शब्दों के अवशेष निरर्थक हो जायेंगे। कृसानु से 'ऋ', भानु से 'आ' और हिमकर से 'म' निकाल लेने पर शेष शब्दों की अर्थवत्ता

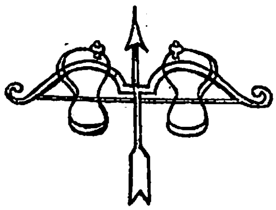
समाप्त हो जाती है। तीनों शब्दों की अर्थवत्ता एवं गुणवत्ता का एकमात्र कारण राम ही है। अर्थात् तीनों का प्राणतत्त्व राम ही है। अतः राम अग्नि के समान तेजस्वी, सूर्य के समान ज्ञानी और यशस्वी तथा चन्द्रमा के समान शान्त, शीतल और लोक जीवन के लिए उदार, उपकारी तो हैं ही साथ ही मर्यादा के साक्षात् स्वरूप भी हैं। राम समष्टिवादी संस्कृति के उन्नायक तथा नायक हैं।

ब्रह्मा अर्थात् चराचर सृष्टि के सृजनकर्त्ता, विष्णु अर्थात् सम्पूर्ण सृष्टि के पालनकर्त्ता, हर अर्थात् प्रलयंकार– ये तीन शक्तियाँ ब्रह्माण्ड की प्रमुख हैं जो किसी-न-किसी रूप में सतत् कार्यरत हैं। इन तीनों शक्तियों में 'राम' समान रूप से सदैव विद्यमान रहते हैं। गोस्वामी जी ने तो यहाँ तक लिख दिया—**'सीयाराममय सब जग जानी'** अर्थात् यह सम्पूर्ण चराचर जगत सीताराममय ही है, कहीं कुछ भी उनके स्वरूप से विलग नहीं है। और 'राम' निर्गुण रहकर सम्पूर्ण जगत में चेतन रूप में तो विद्यमान रहते ही हैं। साथ ही सगुण रूप में अनुपम गुणों के निधान बन जाते हैं।

गोस्वामी जी ने 'राम' को वेदों का प्राणतत्त्व बताया है। प्रणव अर्थात् तीन अक्षर वाला 'ॐकार' सर्वप्रथम प्रकट हुआ, उसी से त्रिपदा गायत्री और गायत्री से वेदत्रयी। ऋक्, साम और यजुर्वेद। अतः (प्रणव) ॐकार वेदों का प्राणतत्त्व हुआ। अब देखें–प्रणव से 'र' विलग कर लेने पर पणव शेष बचता है, जिसका अर्थ ढोल होता है और 'ॐ' से 'म' निकाल देने पर 'ओ' बचता है जो शोक का वाचक है। अतः प्रणव और ॐकार से 'र' और 'म' निकाल लेने पर दोनों ही शब्द अपनी मौलिकता खो देते हैं और महामहिम से विस्खलित होकर मामूली रह जाते हैं। इसलिए यह सिद्ध है कि 'राम' की उपस्थिति में ही ॐकार वेदों का प्राण है। अतः 'राम' तो वेदों के प्राण के भी प्राण हैं। ऐसा कहना ज्यादा उचित लगता है।

राम नाम की महिमा एवं उसके अमित प्रभाव का वर्णन भारतीय वाङ्मय में यत्र-तत्र-सर्वत्र भरा पड़ा है। 'सहस्र नाम तत्तुल्यं राम नाम वराननें', 'कलियुग केवल नाम अधारा', 'राम न सकहिं नाम गुन गाईं', 'यह संसार सकल है मैला 'राम' नाम ते सूचा', 'उलटा नाम जपत जग जाना, वाल्मीकि भये ब्रह्म समाना', 'नाम प्रभाउ जान सिव नीको', 'महिमा जासु जान गनराऊ प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ', 'नाम लेत भवसिन्धु सुखाहीं', निर्गुण से भी नाम का महत्त्व अधिक है। राम से भी राम का नाम अधिक बड़ा एवं सामर्थ्यवान है, यह स्वयं में ही सिद्ध है।

श्रीरामचरितमानस के बालकाण्ड में गोस्वामी जी ने नाम की महिमा का कई स्थानों पर सुन्दर वर्णन किया है। प्रभु श्रीराम ने अहल्या, सबरी, गीधराज जटायु, विभीषण, सुग्रीव, बालि आदि कुछ ही जनों का उद्धार किया है, जबकि उनके नाम ने वाल्मीकि आदि असंख्य जनों का उद्धार किया है। नाम की सत्ता राम से पूर्व भी प्रभावी थी, राम के समय में भी रही, आज भी है और सदा सर्वदा रहेगी।



तजउ चउथि के चंद की नाई

—डा. शोभाकान्त झा
रायपुर (छ.ग.)

मिथिला में भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी को चौठंचन्द्र (चौरचन) त्यौहार मनाया जाता है। महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़ आदि प्रान्तों में उसी दिन से दस दिनमा गणेशोत्सव सामूहिक उल्लास के साथ मनाया जाता है। छत्तीसगढ़ में आकर वह चौठचन्द्र उत्सव छूट-सा गया है। तीजा और गणेशोत्सव नये व्रतोत्सव, जो यहाँ खूब प्रचलित हैं उनसे जुड़ गये हैं। जीवन में जोड़-घटाव तो चलते ही रहते हैं। रायपुर आने से पहले सत्रह वर्षों तक लगातार गाँव में रहा। पिताजी सन्ध्या समय चौठ-चन्द्र की पूजा कराते थे। एक ही आँगन में चार परिवार रहते थे। दूसरे आँगन के भी कुछ परिवार पूजा में शामिल होने आ जाया करते थे। सुबह से भादों की वर्षा-धूप दोनों को दर किनार कर किशोर-किशोरियाँ पुरइन और चिकनी के पत्ते और कुमुदिनी के फूल तालाब से काढ़ कर ले आते। स्त्रियाँ आँगन लीप-पोतकर पावन बनातीं। इसी बीच वर्षा की तबियत कहीं मचल गई तो पुता आंगन धुल जाता और ओसारे पर पूजा करनी पड़ती। अल्पना साजी जाती। गुजिया (पुरीकिया), खजुरी, दलिपुरी, खीर, दही आदि अनेक प्रकार के प्रसाद भोग लगाये जाते। चन्द्रदेव के डूबने से पूर्व पूजा सम्पन्न हो जाती ताकि पूजा करने वाली स्त्रियाँ और उपस्थित बन्धु-बान्धव फल हाथ में लेकर इस मन्त्र के साथ चन्द्रदेव का दर्शन कर सकें—

सिंह प्रसेनमवधीत सिंहो जाम्बवता हतः।
सुकमारकमारोदीस्तव ह्येश स्यमन्तकः॥

सिंह ने प्रसेन को मारा और जाम्बवान के द्वारा वह सिंह मारा गया। हे सुकुमार! मत रोओ, तुम्हारी स्यमन्तक मणि यह है। यह वही स्यमन्तक मणि है जिसने कृष्ण को भी चोरी के कलंक से कलंकित कर दिया था और वह दिन था भाद्रपद के चतुर्थी शुक्ल का। तब से लोग इस तिथि के चन्द्रमा को नहीं देखते हैं, उसका देखना अशुभ माना जाता है, परन्तु करवा चौथ का चन्द्रमा देखकर ही सौभाग्यवती व्रत पारणा करती हैं। ऐसे ही अनेकों विधि-निषेधों से सभ्यता बनती है। ऐसे निषिद्ध चन्द्र दर्शन को मिथिला में पूजने और फल लेकर देखने की प्रथा है। इस प्रथा के पीछे स्कन्दपुराण में एक कथा है कि फल हाथ में लेकर चतुर्थीचन्द्र को देखने से आदमी वृथा कलंक से बच जाता है। इस अदर्शनीय चन्द्र को मैथिल महाराज दरभंगा ने दर्शनीय बनाया। सुनते हैं राजनगर का राजमहल जो कि कमला नदी के कगार पर खड़ा है, उसे नदी में बह जाने की आशंका थी। महाराज दरभंगा ने चन्द्रदेव से प्रार्थना की यदि मेरा महल नदी माता के प्रकोप से आज आपने बचा लिया तो मेरे राज्य में आज के दिन हर वर्ष आपकी पूजा होगी। तब से मिथिला में यह पूजा प्रचलित है। दूसरे क्षेत्रों में तो आज के रात चन्द्रमा को देखना ही वर्जित है।

मैने पिताजी से पूछा था कि आज के दिन लोग चन्द्रमा को फल लेकर क्यों देखते हैं तो उन्होंने कहा– "कलंक से बचने के लिए।" सुन्दरकाण्ड का पारायण करते हुए जब इस चौपाई पर नजर पड़ी तो बात पुष्ट हो गई–

सो परनारि लिलार गोसाईं।
तजउ चउथि क चंद की नाईं।।

विभीषण रावण को समझाने का साहस तो नहीं करते, परन्तु सत्य का निवेदन कल्याण कामना से करते हुए कहते हैं कि 'भाई! जो मनुष्य अपना हित और सुयश, सुबुद्धि, शुभगति और अनेक सुखों की वांच्छा रखता है उसे परस्त्री की ओर भूलकर भी नहीं झाँकना चाहिए। उसके मुखचन्द्र का दर्शन भाद्रपद के चौठचन्द्र की तरह त्याज्य है। उस चौठीचान के दर्शन-जन्य दोष तो तत्काल दिखाई नहीं देते। वह दोष व्यापित शापित करता भी है या नहीं, वह दिखाई नहीं पड़ता–पाप-पुण्य के फलोदय की भाँति। परन्तु इस धरती की पराई चन्द्रमुखी का दर्शन तो क्षणभर के लिए सुखद हो सकता है, परन्तु कल्याणकारक तो कथमपि नहीं हो सकता।' विश्व की चन्द्रमुखियों की कहानियाँ गवाह हैं। बड़े-बड़े युद्ध उनके नाम पर लड़े गए हैं। आज भी खून-खराबा होता है। अब सीता-जैसी सर्वश्रेयस्कारी को ही लीजिए। क्या वह रावण के अपयश, दुर्गति और विनाश का कारण नहीं बन गई? जैसे शीत रात्रि कमल-वन के लिए कालरात्रि बन जाती है वैसे सीता जैसी सर्वमंगला लंका निकर समूह के लिए सिद्ध हुई, क्योंकि उन पर कुदृष्टि डाली गई थी। कुदृष्टि, कुमार्ग, कुसंगति, कुकर्म आदि ही अमंगलदायक तत्त्व हैं–सबके लिए।

आखिर चन्द्रमा भी लांछित क्यों हुआ था? परस्त्री गमन के कारण ही तो? इसलिए भाई विभीषण बार-बार चेताते हैं–परस्त्री लोभ से रावण को बचने के लिए। चेताते नहीं, प्रार्थना करते हैं, क्योंकि वे राक्षसकुल में उत्पन्न होकर भी सन्त स्वभाव के जो हैं! सन्त जानते हैं कि कुसोच, कुसंगति, कुपंथ, कुदृष्टि किसी के लिए शुभकारी नहीं होते। दक्ष प्रजापति ने शिव के अपमान के उद्देश्य से–कुसोच से यज्ञ का आयोजन किया और वह स्वयं उस यज्ञ की आहुति बन गया। दूसरे का अकारण अहित सोचने वाले स्वयं अमंगल के फेर में पड़ जाते हैं। सत्संगति की महिमा और कुसंगति की हानियाँ शास्त्र-पुराण-जगविदित तथ्य हैं–

मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई।
सो जानव सत्संग प्रभाऊ। लोकहुँ वेद न आन उपाऊ।।

(बा.कां. 3)

कुपंथ पर चलने वालों के लिए तो बाबा तुलसी लिखते हैं–

जे कुपंथ पग देत खगेसा।
रहहिं न तन बल बुधि लवलेसा।।

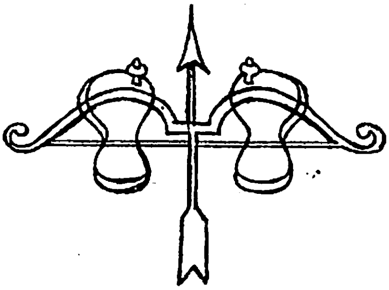
लंका में रहकर लाचार, परन्तु विचारवान विभीषण देख रहे हैं कि रावण की दुर्मति, दुराचार से लगतार लंका संकट की ओर बढ़ रही है। सम्पूर्ण निशाचर जाति का विनाश आशंकित है। एक-से-एक राक्षस वीर मारे जा रहे हैं। अभेद्य लंका जला दी गई है। ऐसे में उन श्री राम के कोप दण्ड से क्या लंका बच सकती है? वैसे भी वे राक्षस जाति के समूल विनाश की प्रतिज्ञा ऋषि-मुनियों के बीच कर चुके हैं। ऐसे में सीता हरण का पाप

तो आग में घी डालने जैसा है, परन्तु करुणानिधान की करुणा पर भक्त विभीषण को पूरा भरोसा है, इसलिए वे दसानन से बार-बार निवेदन करते हैं कि वह ससम्मान सीता माता को वापस कर दे और अमंगल, अपकीर्ति और विनाश से बच जाये। इससे उसका तो कल्याण होगा ही पूरी राक्षस जाति विनष्ट होने से बच जायेगी।

विचारक देखें तो विभीषण के इन निवेदनात्मक परामर्श में किसी तरह की अतिश्योक्ति नहीं है और न ही भयवश रावण जैसे प्रतापी को राम के चरण में समर्पित कराने का उपक्रम है। दरअसल मदान्ध रावण न वर्तमान को देख पा रहा है न भविष्य को, परन्तु विभीषण कालज्ञ हैं। वे देख रहे हैं कि सीता हरण के कारण राम-रावण का युद्ध अवश्यम्भावी है। यह ऐसा भयंकर युद्ध होगा, जिसमें निर्दोष जनता रावण की कामान्धता के कारण नष्ट हो जायेगी। युद्ध में केवल जान-माल का ही नुकसान नहीं होता। महाभारत को जाने भी दें, दो-दो विश्व युद्ध, हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के युद्ध, इराक-इरान की लड़ाई आदि निकट के साक्ष्य हैं। हम यह भी जानते हैं कि सुन्दरियों के कारण विश्व में अनेक लड़ाइयाँ लड़ी गई हैं। इतिहास, पुराण, साहित्य इसके प्रमाण हैं। लोक का सबसे बड़ा प्रमाण है कि बड़े से बड़ा आदमी क्यों न हो, जिसने अधर्मयुक्त काम के पीछे भागने की कोशिश की वह अशुभ के पल्ले पड़ा। आये दिन समाचार पत्रों के पन्ने काम के गुलामों की खबर लेते-देते रहते हैं। उनकी सुमति कुमति में तब्दील हो जाती है और कुमति कुकृत्य कराती है और ऐसे लोग क्षण-सुख के लिए पूरी जिन्दगी को नरक बना लेते हैं। अपयश की तो बात ही क्या, सदा के लिए मुँह काला हो जाता है। समाज में सिर उठाकर चलने लायक वे नहीं रह जाते। निर्लज्ज की तो बात दूसरी है—काम के गुलाम को न भय होता है न लज्जा—

कामातुराणां न भयं न लज्जा।

इतना सब देखने-सुनने के बाद भी मनुष्य नहीं चेत पाता और गलत रास्ते पर चल पड़ता है। काम के इस मारक प्रभाव से या तो राम ही बचा सकते हैं या मनुष्य के धर्म, शील-संयम। फिर भी राम की कृपा सर्वोपरि है। कदाचित् इसीलिए विभीषण राम की शरण में जाने के लिए बार-बार रावण को प्रेरित करते हैं। उनके शरणापन्न हो जाने से लंका की सुरक्षा निश्चित हो जाती।



दूसरि रति मम कथा प्रसंगा

डा. कृष्णपाल सिंह गौतम
फतेहपुर (उ.प्र.)

महाकवि गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज प्रणीत श्रीरामचरितमानस के अरण्य काण्ड में नवधाभक्ति के प्रसंग में भगवान् श्रीरामचन्द्र जी ने भक्तिमती शबरी से द्वितीय श्रेणी के भक्ति वर्णन में इस भक्ति का वर्णन किया है। भगवान् कहते हैं—**'दूसरि रति मम कथा प्रसंगा'** अर्थात् भगवान् की कथा उनके गुण वर्णन के प्रति अनुराग, भक्ति, स्नेह-प्रेम ही द्वितीय श्रेणी की भक्ति है।

इस अर्द्धाली में प्रयुक्त 'रति' शब्द का विश्लेषण अत्यावश्यक है। 'रति' शब्द रम +क्तिन के संयोग से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ यहाँ पर आनन्द, खुशी, हर्ष, सन्तोष, अनुराग, भक्ति, आनन्दानुभूति, स्नेह-प्रेम आदि है। इसका अर्थ दक्ष-कन्या रति देवी (कामदेव की पत्नी) तथा संभोग का आनन्द भी है। किन्तु ये अर्थ यहाँ अप्रयोजनीय हैं। हाँ, 'रति' साहित्य में शृंगार रस के स्थानीय भाव के रूप में वर्णित है।

विचार्य प्रकरण को हम साहित्य के शृंगार-रस के स्थायी भाव से सम्बद्ध कर विचार करें तो संयोग-शृंगार के पक्ष में अपने पति के प्रति पतिव्रता स्त्री अथवा प्रेमिका में अपने प्रेमी के प्रति जो अनुराग-आस्था एवं समर्पण का भाव होता है उसी रति-दशा-जन्य अनुरक्ति की स्थिति इस भक्ति की संयोग-शृंगार-जन्य स्थिति हो सकती है। इसी रस दशा की अनुभूति भगवान् की कथा के प्रति होना, कथा के प्रति रति कहा जायेगा। शृंगार रस के द्वितीय पक्ष विप्रलम्भ शृंगार के रूप में सम्बद्ध कर विचार करें तो जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री या प्रेमिका में अपने पति या प्रेमी के प्रति उसके वियोग में एक-एक क्षण उसकी याद में दुःख-दशा की अनुभूति करते हुए कभी रुदन, नाम स्मरण, श्रवण, चिन्तन, तड़पन होती है उनके प्रति अनुराग, आस्था, स्नेह-प्रेम का चिन्तन करती हुई प्राप्त्याशा रखती है, ठीक उसी प्रकार प्रभु का चिन्तन-मनन करते हुए उनके प्रति तड़पन भरी प्राप्त्याशा उत्पन्न हो जाये, रुदन होने लगे तो प्रभु कथा के प्रति रतिभाव उत्पन्न होना माना जायेगा।

द्वितीय श्रेणी की भक्ति के लिए सत्संग का विशेष महत्त्व है। कथा के प्रति रुचि, अनुरागमयी भक्ति, आनन्दानुभूति एवं समर्पण का भाव आवश्यक है। नवधा भक्ति के प्रकरण में 'रति' का अर्थ भक्ति लेते हुए भक्ति को ही सर्वोपरि स्थान प्रदान किया गया है। प्रतीक्षारत भक्तिमती शबरी में भक्ति का विशेष उद्वेग देख भगवान् श्रीराम सर्वप्रथम शबरी के आश्रम में ही पधारते हैं। शबरी की भक्ति पर भगवान् ने ऐसी उदारता दिखा दिया कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है, वर्णनातीत है—**''ज्यों गूँगा मीठे फल को रस अन्तरगत ही भावे''** वाली स्थिति हो जाती है। यहाँ शबरी का दैन्य-भाव, समर्पण-भाव द्रष्टव्य है—

केहि विधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी।।
अधमते अधम अधम अति नारी। तेहि पर मैं मतिमंद अधारी।।

शबरी की अनुरक्ति, भक्ति पर प्रसन्न हो भगवान् कहते हैं–

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानौं एक भगति कर नाता।।
जाति-पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई।।
भगतिहीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिय जैसा।।

भगवान् ने स्पष्ट कर दिया कि मुझे केवल भक्ति चाहिए, समर्पण का भाव चाहिए, अनुराग, स्नेह-प्रेम चाहिए। जाति-पाँति, कुल, धन, बल, परिजन, गुन प्रचार एवं चतुराई-चालाकी मुझे पसन्द नहीं। ऐसा कहकर भगवान् ने भक्ति मार्ग पर चलने वालों का मार्गदर्शन किया है। भगवान् की कथा के प्रति प्रीति न होगी तो कथा का मर्म समझ में नहीं आयेगा। इसका प्रमुख साधन सत्संग है। सत्संग द्वारा ही हरिकथा प्रसंग का अर्थ समझ में आ सकता है।

मानसकार ने कहा है–

बिनु सत्संग बिबेक न होई। रामकृपा बिनु सुलभ न सोई।।

इतना ही नहीं अपितु–

बिनु सत्संग न हरिकथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गये बिनु रामपद होइ न दृढ़ अनुराग।।

सत्संग के लिए किसी रामभक्त की आवश्यकता होती है। तुलसी ने भी सानुराग हनुमान जी का सान्निध्य प्राप्त कर अपनी भक्ति को दृढ़ किया। हनुमान जी प्रभु के श्रेष्ठतम् भक्त हैं, प्रभु कथा श्रवण एवं सत्संग में वे इतने विभोर हो जाते थे कि प्रेमाश्रु का प्रवाह उमड़ पड़ता था। शुकदेव मुनि से भागवत कथा का श्रवण कर राजा परीक्षित मोह विमुक्त हो जाते हैं। पक्षिराज गरुण पक्षिसन्त काक भुशुण्डि का बहु-कालीन सत्संग कर पक्षिराज होने के मिथ्याभिमान से मुक्त हो प्रभुसत्ता में निमग्न हो जाते हैं। आज भी श्रीरामकथा के प्रति समर्पित सन्त मोरारी बापू, श्री आशाराम बापू, प्रभुदास जी महाराज सदृश अनेक भक्त सन्त हैं जिनका सत्संग कर हम अपना भक्ति पथ सुधार-सँवार सकते हैं। हाँ, चित्त को एक रस रखने वाले सन्त हमें चाहिए। ऐसे सन्त किसी के शत्रु या मित्र नहीं होते। वे शत्रु और मित्र के साथ समान व्यवहार करने वाले होते हैं सारे जगत के हितैषी होते हैं, संसार के सभी जीवों पर प्यार करना उनका स्वभाव होता है। वे विषयों से अनासक्त, शील और गुण की खान होते हैं। दूसरों के दुःख से दुःखी और दूसरों के सुख से सुखी होते हैं। समदर्शी, शत्रुहीन, अभिमान विरहित, विरक्त, लोभ, क्रोध, भय और हर्ष के त्यागी होते हैं। मन-वचन-कर्म से भक्ति करने वाले कोमल चित्त, माया रहित, सबको मान देने वाले तथा जीवों पर दया करने वाले होते हैं। ऐसे सन्तों का सत्संग कर हम अपना भक्ति पथ सँवार सकते हैं।

वैसे नवधाभक्ति में वर्णित प्रत्येक भक्ति का इस द्वितीय श्रेणी की भक्ति से इस प्रकार सम्बन्ध है कि जो किसी एक का प्रारम्भ करेंगे उसे नवो प्रकार की भक्ति प्राप्त हो जायेगी। जैसे प्रथम भक्ति में सन्तों का संग कहा गया है। जो सन्तों का संग करेंगे उनको सत्संग के द्वारा दूसरी भक्ति हरिकथा की प्राप्ति हो जायेगी। इसीलिए भगवान् श्रीराम ने कहा है–

नवमहुँ एकउ जिन्ह के होई। नारि पुरुष सचराचर कोई।।
सोइ अतिशय प्रिय भामिनि मोरे। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे।।

कहने का तात्पर्य यह है कि नवधा भक्ति सम्पन्न भक्त ईश्वर के स्वरूप का दर्शन करते हैं। इस अवस्था में उन्हें अपने निज स्वरूप का ज्ञान सहजरुपेण हो जाता है। भगवान् ने कहा है—

ममदर्शन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा।।

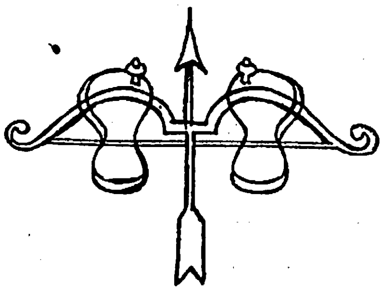
इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए श्रीमद्भगवद्गीता के पन्द्रहवें अध्याय के छठवें श्लोक में योगेश्वर श्री कृष्ण कहते हैं–

न तद्भासयते न शशांको न पावकः।
यद् गत्वान निवर्तन्ते तद्धाम परमं ममा।

कहने का तात्पर्य यह है कि–

प्रभु के प्रति अनुराग हो/सहज समर्पण भाव हो/सहज कथा अनुराग हो।
ऐसी अनुपम भक्ति से/प्रभुवर में अनुरक्ति से/पायें मुक्ति विरक्ति से।।

अन्ततः नवधा भक्ति मुक्ति का मुखर द्वार है।



श्रीहनुमान चालीसा :
मानसकार गोस्वामी तुलसीदास की रचना नहीं

डा. कृष्णपाल सिंह गौतम
फतेहपुर (उ.प्र.)

श्री हनुमान चालीसा को पाठक प्रायः गोस्वामी तुलसीदास की भक्तिपरक रचना मानते आ रहे हैं। किन्तु श्री वेनीमाधव दास, डॉ. माता प्रसाद गुप्त, बाबू श्याम सुन्दर दास, डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. उमा शंकर शुक्ल 'उमेश' आदि अनेकानेक तुलसी साहित्य के विद्वान अध्येताओं ने श्रीरामचरितमानस, गीतावली, कवितावली, बरवैरामायण, रामलला नहछू, जानकी मंगल, पार्वती मंगल, रामाज्ञा प्रश्न, वैराग्य सन्दीपनी, कृष्ण गीतावली, दोहावली, विनय-पत्रिका को ही तुलसीदास विरचित माना है। इसी तथ्य पर पूर्ण मतैक्य भी है तथा अनेक शोध सन्दर्भों में यह तथ्य खरा भी उतरता है। गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन लेखक श्री कृष्णदत्त मिश्र ने अपने ग्रन्थ 'गौतम चन्द्रिका' में 'अपरांग योग' के अन्तर्गत इन्हीं बारह ग्रन्थों को तुलसीदास कृत माना है। गीता प्रेस, गोरखपुर ने इन्हीं बारह ग्रन्थों को तुलसीदास विरचित घोषित करते हुए प्रकाशित किया है। श्री कृष्ण दत्त मिश्र के विवरण के अनुसार 'कवितावली' में 'हनुमान बाहुक' का भी समावेश हो जाता है। महात्मा प्रिया दास ने भी इन्हीं बारह ग्रन्थों का उल्लेख करते हुए लिखा है–

रामलला नहछू विराग संदीपनी हू
बरवै बनाई बिरमाई मति साईं की।
पार्वती जानकी मंगल ललित गाय।
रम्य राम आज्ञा रचीं कांमधेनु नाईं की।
दोहा अलौकिक गीत बन्धु कृष्ण कथा
कही रामायन मोह बात सब ठाईं की।
जग में सोहानी जगदीश हू के मनमानी
सन्त सुखदानी बानी तुलसी गोसाईं की।

गोस्वामी तुलसीदास के त्रिशत जयन्ती पर सं. 2004 वि. में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, लाला भगवान्दीन और ब्रजरत्न दास के सम्पादन में काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'तुलसी ग्रन्थावली' में भी गोस्वामी तुलसीदास के इन्हीं बारह ग्रन्थों को श्री छक्कन दास जी के प्रमाण पर सर्वमान्य घोषित किया गया है। श्री राम गुलाम द्विवेदी, सर जार्ज ग्रियर्सन ने भी इन्हीं बारह ग्रन्थों को प्रमाणित माना है। गोस्वामी तुलसीदास के शिष्य

माने जाने वाले महात्मा वेणी माधव दास ने अपने ग्रन्थ 'मूल गोसाईं चरित्र' में 'सतसई' को सम्मिलित किया है जबकि विद्वानों ने विविध तर्कों के आधार पर इसे तुलसीकृत नहीं माना। वास्तव में 'सतसईं' के रचनाकार 'तुलसी' नामधारी कोई कायस्थ कवि थे। वर्ष 1984 ई. में डॉ. किशोरीलाल गुप्त का 'तुलसी और तुलसी' नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने स्पष्ट किया है–'सतसई' कार तुलसी–गोस्वामी तुलसीदास के सम-सामयिक काशी में लालार्क कुण्ड और गंगा के बीच कुटी बनाकर रहने वाले 'हनुमान चालीसा', 'संकट मोचनाष्टक', 'तुलसी सतसई' आदि लगभग 50 ग्रन्थों के रचयिता, मानस में क्षेपक लगाने वाले प्रथम व्यक्ति थे। ये दोनों 'सत्सईकार' और 'मानसकार' तुलसी काशी में ही सौ मीटर के फासले पर रहते थे। सतसईकार तुलसी की रचनाएँ अधिक थीं किन्तु इनकी रचनाओं की जानकारी जन-सामान्य को नहीं हो पायी। फिर भी इनकी रचनाओं का घालमेलयुक्त भ्रम गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं के रूप में अधिक हुआ। स्वामी कृष्णानन्द ने स्पष्ट किया है–गोस्वामी तुलसीदास जी तपस्या भक्ति और कविता कला के प्रताप से इतना सुविख्यात हो गये कि तुलसी नामधारी उपरोक्त कवि की कृतियाँ भी इन्हीं गोस्वामी तुलसीदास की कृतियों में लीन हो गईं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि 'हनुमान चालीसा', 'बजरंग बाण', 'संकट मोचन हनुमानाष्टक', 'हनुमान हजारा', 'सतसईं' आदि रचनाएँ इन्हीं तुलसी नामधारी कायस्थ कवि की हैं। इन्होंने गोस्वामी तुलसीदास कृत 'दोहावली' से 150 दोहे लेकर 'सतसई' की रचना की। इसी प्रकार 'हनुमान चालीसा' में भी इन्होंने श्रीरामचरितमानस के अयोध्या काण्ड के मंगलाचरण के प्रथम दोहे–''श्री गुरु चरण सरोज रज निज मन मुकुर सुधार, बरनउँ रघुबर विलम जस जो दायक फल चारि।'' को अविकल रूप में सम्मिलित किया है। यहाँ विचार्य यह है कि यदि 'हनुमान चालीसा' गोस्वामी जी की रचना होती तो ऐसे समर्थ कवि को 'मानस' से दोहा रखने की क्या आवश्यकता थी, कोई अन्य दोहा मौलिक रूप में रख सकते थे। अतः निर्विवाद रूप से 'हनुमान चालीसा' 'संकट मोचन हनुमानाष्टक', 'बजरंग बाण' आदि गोस्वामी तुलसीदास की रचनाएँ नहीं हैं।

इस प्रकार 'हनुमान चालीसा' के समग्र रचना कौशल पर विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि यह रचना सुधी समीक्षकों के आलोड़न-विलोड़न में खरी नहीं उतरती, इसलिए यह गोस्वामी तुलसीदास जी के द्वादस ग्रन्थों की समर्थ माला की मनका नहीं बन पाई। यह अलग बात है कि इस ग्रन्थ का हनुमत् आराधना-साधना में महत्त्वपूर्ण स्थान है किन्तु इसे गोस्वामी तुलसीदास की रचना मानना एक क्लिष्ट कल्पना मात्र ही है।



लोक-परलोक सुधारक 'राम' नाम

ज्ञानेन्द्र कुमार पाण्डेय
इलाहाबाद (उ.प्र.)

इस संसार में जीव अपने पूर्वजन्म के सद्-असद् कर्मों के अनुरूप उत्तम अथवा निकृष्ट योनि में जन्म लेता है। यदि मनुष्य-शरीर पाने का अवसर मिल गया है तो यह बड़े सौभाग्य की बात है। **'कबहुँक करि करुना नर देही'** करुणा करके प्रभु नर-देह देते हैं। **'बड़े भाग मानुष तनु पावा'** ऐसी पूँजी मिल गयी, उसका नाश कर देना बहुत बड़ी गलती है। **'सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ'** वह परलोक में दुःख पावेगा, सिर धुन-धुन कर पछतायेगा और रोवेगा परन्तु उसके रोने का फल रोना ही निकलेगा, फिर कुछ होने का नहीं। इसलिए अनेक जन्मों से बिछुड़ा हुआ और चौरासी लाख योनियाँ भुगतता हुआ जीव मनुष्य रूप में यदि कह दे 'हे नाथ! मैं आपका हूँ, आप मेरे हैं तो प्रभु को बड़ा सन्तोष होगा पर ऐसा होता कहाँ है।' अविवेकी मनुष्य तो संसार में आ कर सांसारिकों से सम्बन्ध जोड़ लेता है और परमात्मा को भूल ही जाता है।

उल्लेख्य है कि भगवान् से अटूट नाता जोड़ने का सुअवसर एकमात्र मनुष्य-शरीर में ही है। सांसारिक काम खाना-पीना आदि तो पशु-पक्षी भी करते हैं। नीच से नीच प्राणी भी करते हैं। अगर यही हमने भी किया तो औरों में और हममें अन्तर ही क्या रहा। यह तो मनुष्य जन्म का बड़ा तिरस्कार है। गोस्वामी जी कहते हैं–

करुणाकर कीन्हीं कृपा, दीन्हीं नरवर देह।
नद चीन्हीं कृत हीन नर, खल कर दीन्हीं खेह॥

इस तन का नाश कर दिया। इससे लाभ लेना चाहिए। यह लाभ तभी सम्भव है जब लौकिकता को त्याग कर आध्यात्मिकता का आश्रय लिया जाता है।

सच्चा धनवान वही है जिसके पास राम-नाम रूपी धन है–

धनवंता सोई जानिये जाके राम-नाम धन होय।

गोस्वामी जी नाम की महिमा गाते हुए कहते हैं–

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। राम न सकहिं नाम गुन गाई॥"

(मानस 1/26/8)

नाम की महिमा मैं कहाँ तक कहूँ, भगवान् राम भी नाम का गुण नहीं गा सकते। इतने गुण 'राम' नाम में हैं।

मानस के बालकाण्ड में तुलसीदास जी कहते हैं–श्रीराम जी महाराज के नाम के ये दोनों अक्षर बड़ी शोभा देते हैं। इनमें से एक 'र' छत्र रूप से और दूसरा 'म' मुकुटमणि रूप से सब अक्षरों के ऊपर है। राजा के दो

प्रमुख चिह्न होते हैं–एक छत्र और दूसरा मणि। 'मणि' मुकुट के ऊपर रहती है और 'छत्र' सिंहासन पर रहता है।

एकु छत्रु एकु मुकुटमनि सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ॥

(मानस 1/20/–)

कलिसंतरणोपनिषद् में नाम-महिमा आयी है। एक बार नारद जी ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा जी ने पूछा–'कैसे आये हो?' नारद जी ने कहा–'पृथ्वी मण्डल पर अभी कलियुग आया हुआ है। इस कलियुग में जीवों का उद्धार कैसे हो?' ब्रह्मा जी ने कहा–'कलियुग के पापों को दूर करने के लिए महामन्त्र है–'हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।' इतिषोडशकं कल्मषनाशनम्।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा है कि नाम में भगवान् ने अपनी सब की सब शक्ति रख दी है। अनेक साधनों में जो शक्ति है, सामर्थ्य है, जिन साधनों के करने से जीव का कल्याण होता है, कलियुग को देखकर भगवान् ने भगवन्नाम में उन सब साधनों की शक्ति रख दी है। गोस्वामी जी भी कहते हैं–

नहिं कलि करम न भगति विवेक।
राम नाम अवलम्बन एक॥

(मानस 1/26/7)

जीव का कल्याण ही उसकी सर्वोच्च गति है। ऐसी जो श्रेष्ठ गति (मुक्ति) है, उसको सुगति कहते हैं। यह राम-नाम से प्राप्त हो जाती है।

'सुगति' रूपी जो सुधा है, वह सदा के लिए तृप्त करने वाली है। तब कोई दुःख पहुँच ही नहीं सकता है। ऐसे महान् आनन्द को प्राप्त करने वाली जो श्रेष्ठ गति है, उसका रस 'राम' नाम का जप करने से आता है। जो 'राम' नाम से तृप्त हो जाते हैं, वे फिर सांसारिक भोगों में फँसेंगे ही नहीं।

'राम' नाम जब मीठा लगने लगता है तो सब-के-सब रस फीके हो जाते हैं। भोजन के छः रस और काव्य के नौ रस सभी उसके सामने अरुचिकर लगने लगते हैं। संसार में जितने रस हैं, वे विषय और इन्द्रियों के सम्बन्ध से होने वाले हैं। वे आरम्भ में अमृत सदृश लगते हैं परन्तु 'परिणामे विषमिव'। गोस्वामी जी का अभिमत है–

स्वाद तोष सम सुगति सुधा के।
कमठ सेष सम धर बसुधा के॥

(मानस 1/20/7)

'स्वाद तोष सम'–अमृत के स्वाद और तृप्ति के समान 'राम' नाम है।

कविहृदय तुलसीदास जी बतलाते हैं कि 'राम' नाम भक्ति के कर्ण-भूषण हैं। भक्ति को हृदय में बुलाना है तो 'राम' नाम का जप करो। इससे भक्ति दौड़ी चली आयेगी।

भगति सुतिय कल करन बिभूषन।
जग हित हेतु बिमल विधु पूषन॥

(मानस 1/20/6)

ये दोनों अक्षर नर-नारायण के समान सुन्दर भाई हैं, ये जगत् का पालन और विशेष रूप से भक्तों की रक्षा करने वाले हैं।

नर नारायन सरिस सुभ्राता।
जग पालक बिसेषि जन त्राता।।

(मानस 1/20/5)

'राम' नाम के दोनों अक्षर मधुर और मनोहर हैं। 'मधुर' कहने का मतलब है कि रसना में रस मिलता है। 'मनोहर' कहने का तात्पर्य है कि मन को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। जिन्होंने दत्तचित्त हो 'राम' नाम का जप किया है, उन्हें ही इसका पता है।

ये दो अक्षर 'र' और 'म' वर्षाऋतु के सावन-भादों की भाँति हैं। जो भगवान् के प्यारे भक्त हैं, वे साक्ति (एक बढ़िया चावल) की खेती हैं और वर्षा ऋतु श्रीरघुनाथ की भक्ति है। वर्षा ऋतु में जब खूब बारिश होती है तभी साक्ति के चावल की अच्छी खेती होती है।

यह 'राम' नाम वेदों के प्राण के समान हैं, शास्त्रों का और वर्णमाला का भी प्राण है। वेदों का प्राण कहने में तात्पर्य है कि 'राम' नाम से 'प्रणव' होता है। प्रणव में से 'र' निकाल दें तो 'पणव' हो जायेगा और 'पणव' का अर्थ ढोल होगा। यह 'राम' नाम महामन्त्र है जिसे भगवान् शंकर जपते हैं और उनके द्वारा यह 'राम' नाम-उपदेश काशी में मुक्ति का कारण है। इसी महामन्त्र को उलटा जप करने से वाल्मीकि ब्रह्म के समान हो गए–

उलटा नामु जपत जगु जाना।
वाल्मीकि भए ब्रह्म समाना।।

(मानस 2/194/8)

ऐसी मान्यता है कि अन्त समय में 'राम' कहने से जन्म-मरण का चक्कर सदा के लिए समाप्त हो जाता है, फिर चौरासी लाख योनियों में भटकना नहीं पड़ता। पर गोस्वामी जी कहते हैं–

जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं।
अंत राम कहि आवत नाहीं।।

(मानस 4/9/3)

'राम' नाम जपने से पापों का नाश होता है, अज्ञान का नाश होता है और अन्धकार दूर होकर प्रकाश हो जाता है। अशान्ति, सन्ताप, जलन आदि मिट कर शान्ति की प्राप्ति हो जाती है।

गोस्वामी जी ने मानस में बतलाया है कि कलियुग में ऐसा जोरों से पाप छा जायगा कि मनुष्यों का मन जल में मछली की तरह पापों में रम जायगा। जैसे मछली पानी से अलग नहीं होना चाहती उसी तरह मनुष्य पाप कर्मों से विलग होने की स्थिति में नहीं रहेगा। झूठ-कपट-बेईमानी से अपने काम बनाने वाले मनुष्य यही सोचते हैं कि यदि ऐसा न करेंगे तो जीवन-निर्वाह कैसे भली-भाँति होगा।

कलि केवल मल मूल मलीना।
पाप पयोनिधि जन मन मीना।।

(मानस 1/27/4)

यह पाप-कर्म में संलग्नता पूर्व जन्म के पापों से ही होता है–

तुलसी पूरब पाप ते हरिचर्चा न सुहात।
जैसे ज्वर के जोर से भूख बिदा हो जात।।

भगवन्नाम में अभिरुचि तभी अन्तर्मन में जागृत होती है जब भगवान् का होकर भगवान् का नाम लिया जाता है। केवल भगवान् ही हमारे हैं और हम भगवान् के ही हैं। यह संसार असार है और हम वस्तुतः संसार के नहीं हैं। तुलसीदास जी ने इसीलिए कहा है–

बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबहीं आजु।
होहि राम को नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु।।

(दोहावली 22)

'राम' नाम इस लोक और परलोक में सब जगह काम देता है। यह सुमिरन करने में कठिन नहीं है। 'रा' और 'म' ये दोनों अक्षर उच्चारण करने में सुगम हैं क्योंकि ये अक्षर अल्पप्राण हैं।

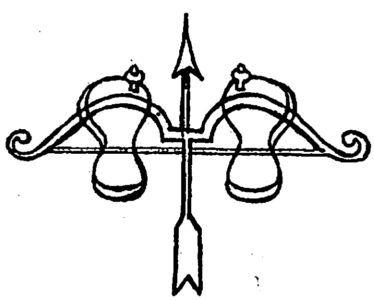
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू।
लोक लाहु परलोक निबाहू।।

(मानस 2/20/2)

गोस्वामी जी की दृष्टि में 'राम' अक्षर अति सम्मानीय हैं। वे कहते हैं—**'मेरे तो माँ अरु बाप दोउ आखर'**।

नारद जी के साथ हम भी प्रभु श्रीराम से यही याचना करते हैं कि आपका जो नाम है, वह सब नामों से अधिक हो जाय और बधिक के समान पापरूपी पक्षियों का नाश करने वाला हो जाय।

(मानस 3/42/8)



श्रीराम कथा में आध्यात्मिक प्रतीकात्मकता

गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव
इलाहाबाद (उ.प्र.)

आध्यात्मिक प्रतीकात्मक वह विधा है जिसमें किसी सामान्य कथा, घटना अथवा आख्यान के माध्यम से किसी गूढ़ आध्यात्मिक तत्त्व को प्रतिपादित किया जाता है। वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण आदि प्रायः सभी धार्मिक ग्रन्थों में इसी विधा के माध्यम से अध्यात्म के अनेक गूढ़ तत्त्वों का विवेचन किया गया है और कभी-कभी तो छोटी-छोटी सूक्तियों के द्वारा भारतीय दर्शन के जटिल सिद्धान्तों का दिग्दर्शन भी कराया गया है। 'महाभारत' में वर्णित कौरव और पाण्डवों की कथा धर्म-अधर्म और पाप-पुण्य की सर्वांगीण व्याख्या करती है और 'श्रीमद्भागवतगीता' कुरुक्षेत्र के युद्ध-क्षेत्र में खड़े हुए अर्जुन के व्यामोह के माध्यम से सांसारिक मायाजाल में फँसे हुए मनुष्य के मन में उठने वाले अनेक प्रश्नों का उत्तर देते हुए उसके कर्म और अकर्म का ज्ञान कराती है। इसी प्रकार 'रामायण', 'अध्यात्म रामायण' और 'श्रीरामचरितमानस' जैसे अनेक ग्रन्थों में वर्णित श्रीराम कथा जन-जन में प्रसिद्ध होते हुए भी किस प्रकार आध्यात्मिक प्रतीकात्मकता से परिपूर्ण है और अपने कलेवर में क्या-क्या गूढ़ तत्त्व छिपाए हुए है, प्रस्तुत आलेख में इसी का विवेचन करने का प्रयास किया गया है।

श्रीराम कथा का आरम्भ ही राक्षसराज रावण के अत्याचारों से व्यथित पृथ्वी की करुण पुकार से होता है जब ब्रह्मा जी के अनुरोध पर भगवान् विष्णु उसे आश्वस्त करते हुए कहते हैं–'मैंने कश्यप की तपस्या से सन्तुष्ट होकर उन्हें वर दिया था। उन्होंने मुझसे पुत्र-रूप से उत्पन्न होने की प्रार्थना की थी तब मैंने 'बहुत अच्छा' कहकर उसे स्वीकार किया था। इस समय वह पृथ्वी पर दशरथ होकर विराजमान हैं। उन्हीं के यहाँ पुत्र-रूप से पृथक्-पृथक् चार अंशों में प्रकट होकर मैं शुभ दिन में कौसल्या और अन्य दो माताओं के गर्भ से जन्म लूँगा। उसी समय मेरी योगमाया भी जनक जी के घर में सीता-रूप से उत्पन्न होंगी, उसको साथ लेकर मैं तुम्हारा कार्य सिद्ध करूँगा।'[1] तद्नुसार श्रीहरि अपने को चार स्वरूपों में प्रकट करके राजा दशरथ को पिता बनाने का निश्चय करते हैं।[2] तदनन्तर इस दैविक कार्य में सहायता प्रदान करने के लिए ब्रह्मा जी की प्रेरणा से देवता आदि के द्वारा बाली, सुग्रीव, नल, नील, हनुमान जैसे वानर यूथ-पतियों की उत्पत्ति होती है।[3] यह घटना उस शाश्वत आध्यात्मिक सत्य की ओर इंगित करती है जिसके अनुसार जब-जब संसार में धर्म की हानि होती है, अधर्म का अभ्युत्थान होता है, सन्त जन कष्ट पाते हैं तब-तब दुष्टों के संहार, साधुओं की रक्षा और धर्म की पुनर्स्थापना के लिए भगवान् स्वयं शरीर रूप में धरती पर अवतार ग्रहण करते हैं और धरती के सन्तुलन की रक्षा करते हैं।[4] भगवान् कृष्ण स्वयं कहते हैं कि वे अजन्मा और अविनाशी रूप होते हुए भी तथा समस्त प्राणियों के ईश्वर होते हुए भी अपनी योगमाया से प्रकट होते हैं।[5] इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए गोस्वामी जी भी कहते हैं–

जब-जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी।।
तब-तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।
असुर मारि थापहिं सुरन्ह, राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस, राम जन्म कर हेतु।।[6]

तदनुसार भगवान् की प्रेरणा से आकाशवाणी होती है

अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा।।
कस्यप अदिति महातप कीन्हां। तिन्ह कहुँ मैं पूरब बर दीन्हां।।
ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरीं प्रगट नर भूपा।।
तिन्ह कें गृह अवतरिहउँ जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई।।
नारद बचन सत्य सब करिहउँ। परम सक्ति समेत अवतरिहउँ।।[7]

इस प्रकार एक ईश्वरीय योजना के अन्तर्गत भगवान् राजा दशरथ के यहाँ कौसल्या के गर्भ से श्रीराम के रूप में अवतरित होते हैं। भगवान् के अवतरण के साथ ही सुमित्रा और कैकेयी के गर्भ से तीन पुत्र उनके अंशों के रूप में जन्म लेते हैं। दशरथ के वंश में उनका जन्म देवताओं तथा भक्तों का उपकार करने के उद्देश्य से प्रस्फुटित होने वाली भगवान् की सात्त्विक कृपा का प्रतीक है।

गुरु वशिष्ठ जी चारों पुत्रों के दैवी गुणों को देखकर सबसे बड़े पुत्र का नाम श्रीराम, दूसरे पुत्र का नाम भरत, शेष दोनों का नाम लक्ष्मण और शत्रुघ्न रखते हैं। कहने का भाव यह है कि श्रीराम स्वयं सच्चिदानन्द-स्वरूप हैं, भरत समग्र लोकों का भरण-पोषण करने वाले हैं, शत्रुघ्न के स्मरण मात्र से शत्रुओं का नाश होता है और लक्ष्मण शुभ लक्षणों के धाम और सारे जगत के आधार हैं। भगवान् के यह चारों रूप श्रीराम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न वास्तव में क्रमशः सामान्य धर्म, विशिष्ट धर्म, विशिष्टतर धर्म और विशिष्टतम् धर्म का प्रतिनिधित्व करते हैं। उदाहरणार्थ, श्रीराम का व्यक्तित्त्व माता-पिता की आज्ञा का पालन, सत्य की रक्षा, शरणागति आदि सामान्य धर्म का आदर्श है, लक्ष्मण का जीवन अनन्य भक्ति, निष्काम सेवा और सम्पूर्ण आत्मसमर्पण जैसे विशिष्ट धर्म का परिचायक है, भरत भगवान् पर सम्पूर्ण निर्भरता सम्बन्धी विशिष्टतर धर्म के प्रतीक हैं और शत्रुघ्न प्रभु की सेवा करने के विशिष्टतम् धर्म का आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

संसार में भगवान् का आविर्भाव धरती का भार हरने के लिए ही हुआ है, अतः महर्षि विश्वामित्र ऋषियों के यज्ञ कार्य में बाधा डालने वाले राक्षसों का संहार करवाने के लिए चारों भाइयों को अपने साथ ले जाने के लिए राजा दशरथ के पास आते हैं। राजा के मन की द्विविधा देखकर गुरु वशिष्ठ उन्हें उनके पूर्व वंशज अदिति और कश्यप को भगवान् विष्णु द्वारा दिए गए वरदान की सुधि कराते हुए कहते हैं–

तथेत्युक्त्वाद्य पुत्रस्ते रामः स एव हि। शेषस्तु लक्ष्मणो राजन राममेवान्वपद्यत।
जातौ भरतशत्रुघ्नौ शंखचक्रे गदाभृतः। योगमायापि सीतेति जाता जनकनन्दिनी।।
विश्वामित्रोपि रामाय तां योजयितुंमागतः। एतद्गुह्यतमं राजन्न वक्तव्यं कदाचन।।
अतः प्रीतेन मनसा पूजयित्वाद्य कौशिकम्। प्रेषयस्व रमानाथं राघवं सहलक्ष्मणम्।।[8]

तद्नुसार राजा दशरथ श्रीराम और लक्ष्मण को विश्वामित्र के साथ भेज देते हैं और उसी के साथ भगवान् के अवतरण के उद्देश्य की पूर्ति के कार्य का प्रथम चरण आरम्भ हो जाता है। राह में श्रीराम ताडका नामक राक्षसी का वध कर देते हैं–

तामेकेन शरेणाशु ताडयामास वक्षसि। पपात विपिने घोरा वमन्ती रुधिरं बहु।।[9]

किन्तु उसे दीन जानकर दीनबन्धु भगवान् उसे अपना दिव्य-रूप प्रदान करते हैं–

दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा।।[10]

आगे जाकर वह ऋषियों के यज्ञ-कार्य में अनेक बाधाएँ उत्पन्न करने वाले मारीच और सुबाहु नामक राक्षसों का वध करते हैं तथा कालान्तर में गौतम ऋषि द्वारा शापित शिला बनी उनकी पत्नी अहल्या का अपने दिव्य स्पर्श से उद्धार करते हैं, जिसके फलस्वरूप वह शापमुक्त हो पीताम्बर वस्त्र धारण कर उनकी स्तुति करती है तथा–

स्तुत्वैवं पुरुषं साक्षाद्राघवं पुरतः स्थितम्। परिक्रम्य प्रणम्याशु सानुज्ञाता ययौ पतिम्।।[11]

इसी शृंखला में विश्वामित्र श्रीराम और लक्ष्मण को विदेहनगर ले जाते हैं जहाँ उन्हें देखकर महाराज जनक अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। वहीं पुष्पवाटिका में विष्णु-रूप श्रीराम और उनकी पुत्री योगमाया/लक्ष्मी-स्वरूप जानकी जी से साक्षात् होता है जिनकी शोभा देखकर उन्हें अपने पिता के प्रण का स्मरण हो आता है और वह दुःखी हो जाती हैं–

नख सिख देखि राम कै सोभा। सुमिरि पिता पनु मनु अति छोभा।[12]

जानकी जी का यह अस्थाई दुःख जीव की संशय की उस स्थिति का द्योतक है जब वह कठिन परिस्थितियों में विधि के विधान से अनभिज्ञ होकर अपने भविष्य के प्रति भय और द्विविधा में पड़ जाता है किन्तु जब वह विधाता पर अनन्य आस्था रखकर अपना मनोरथ उन्हीं पर छोड़ देता है तब कठिनाइयाँ स्वयमेव दूर हो जाती हैं। तभी तो जब जानकी जी भवानी-मन्दिर जाकर अपने मनोरथ को प्रकट करते हुए देवी के चरण पकड़ लेती हैं तब गौरी जी प्रसन्न होकर कहती हैं–

सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजहि मन कामना तुम्हारी।
नारद बचन सदा सुचि साचा। सो बरु मिलिहि जाहिं मनु राचा।।[13]

जानकी जी के स्वयंवर में अन्ततः भगवान् श्रीराम शिवजी का धनुष तोड़कर समस्त समाज को प्रसन्न करते हैं–

प्रभु दोउ चापखंड महि डारे। देखि लोग सब भए सुखारे।।[14]

भगवान् विष्णु के अवतार श्रीराम और उनकी योगमाया लक्ष्मी-स्वरूपा सीता जी के सम्मिलन की अपरिहार्यता से आश्वस्त होकर आकाश में नगाड़े बजने लगते हैं और देवांगनाएँ गान करके नाचने लगती हैं, ब्रह्मा आदि ब्रह्मा, सिद्ध मुनीश्वर लोग प्रभु की प्रशंसा करने लगते हैं और आशीर्वाद देने लगते हैं और पुष्प और मालाएँ बरसाने लगते हैं। तभी सीता जी श्रीराम के गले में जयमाला पहनाती हैं और–

रघुबर उर जयमाल देखि देव बरिसाहिं सुमन।
सकुचे सकल भुआल जनु बिलोकि रबि कुमुदगन।।[15]

तदनन्तर शुभ लग्न और समय पर श्रीराम और सीताजी का पाणिग्रहण सम्पन्न होता है और उसके साथ ही उनके तीनों भाइयों का भी विवाह उर्मिला, माण्डवी और श्रुतकीर्ति से हो जाता है। श्रीराम और सीता जी का

विवाह परमात्मा और उनकी योगमाया शक्ति के दैवी मिलन का संकेत है और उसी प्रकार शेष भाइयों का विवाह भगवान् के अंशों का अपनी-अपनी शक्तियों से सम्मिलन का द्योतक है।

तदनन्तर श्रीराम के राज्याभिषेक का समय आता है और जब कि इस समाचार से चहुँ ओर प्रसन्नता छा जाती है, देवगण सरस्वती जी से अयोध्या जाकर राज्याभिषेक में विघ्न उपस्थित करने का आग्रह करते हुए कहते हैं–

बिपति हमारि बिलोकि बड़ि मातु करिअ सोइ आजु।
रामु जाहिं बन राज तजि होइ सकल सुर काजु।।[16]

तद्नुसार सरस्वती जी सर्वप्रथम मंथरा के हृदय में दुर्बुद्धि का प्रवेश कराती हैं और वह कैकैयी के पास जाकर उसके कान भरते हुए कहती है–

भविता राघवो राजा राघवस्य च यः सुतः। राजवंशात्तु भरतः कैकेयि परिहास्यते।।
ध्रुवं तु रामः प्राप्य राज्यमकण्टकम्। देशान्तरं नाययिता लोकान्तरमथापि वा।।[17]

देवासुर संग्राम में कैकेयी को राजा दशरथ द्वारा दिए गए दो वचनों का स्मरण कराती हुई मंथरा कहती है–

भरतो राघवस्याग्रे किंकरो वा भविष्यति। विबास्यते वा नगरात्प्राणैर्वा हाप्यते चिरात्।।
त्वं तु दासीव कौसल्यां नित्यं परिचरिष्यसि। ततोऽपि मरणं श्रेयो यतसपत्न्याः पराभवः।।
अतः शीघ्रं यतस्वाद्य भरतस्याभिषेचने। रामस्य वनवासार्थं वर्षाणि नव पंच च।।[18]

तत्पश्चात् कैकेयी कोपभवन में प्रवेश करती है और राजा भयभीत होकर उसके पास जाते हैं। राजा के बहुत पूछने पर कैकेयी पूर्व में उनके द्वारा दिए गए दो वचनों का स्मरण दिलाते हुए कहती है–

तदा देवासुरे युद्धे तस्य कालो यमागतः। नव पंच च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः।।
चीराजिनधरो धीरो रामो भवतु तापसः। भरतो भजतामद्य यौवराज्यमकण्टकम्।।[19]

इस प्रसंग के माधम से ईश्वरीय विधान की अपरिहार्यता और मनुष्य-हृदय की ईर्ष्या और उसके कपट का दिग्दर्शन कराया गया है। गोस्वामी जी कहते हैं–

बिपति बीजु बरषा रितु चेरी। भुइं भइ कुमति कैकेई केरी।।
पाइ कपट जलु अंकुर जामा। बर दोउ दल दुख फल परिनामा।।[20]

सारा समाचार जानकर श्रीराम पिता को समझाते हैं और माता के पास सहर्ष वन जाने की आज्ञा लेने जाते हैं और कहते हैं–

बरष चारिदस बिपिन बसि करि पितु बचन प्रमान।
आइ पाय पुनि देखिहउँ मनु जनि करसि मलान।।[21]

श्रीराम के वनगमन का समाचार सुनकर लक्ष्मण जी साथ जाने का अपना निश्चय उनसे बताते हैं अन्यथा अपने प्राण देने की प्रतिज्ञा करते हैं। इसी प्रकार पातिव्रत्य व्रत की साक्षात् प्रतिमा सीताजी उनके साथ चलने का आग्रह करते हुए कहती हैं–

अतस्त्वया गमिष्यामि सर्वथा त्वत्सहायिनी। यदि गच्छेसि मां त्यक्त्वा प्राणांसत्यक्ष्यामि तेऽग्रतः।।[22]

श्रीराम उन दोनों को वन में साथ ले जाने का निश्चय करते हैं।

लक्ष्मण के साथ श्रीराम-सीता के वनवास की घटना श्रीराम-कथा की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है और यहीं से भगवान् के उद्देश्यों की पूर्ति का दूसरा चरण आरम्भ होता है, जिसके मध्य-भाग में सीताजी का हरण होता है

और जिसका उपसंहार रावण के संहार से होता है। जब भरत वन जाकर श्रीराम से अयोध्या लौटने के लिए आग्रह करते हैं तब वसिष्ठ जी कहते हैं कि श्रीराम साक्षात् नारायण हैं और पूर्वकाल में ब्रह्माजी की प्रार्थना पर उन्होंने रावण को मारने के लिए दशरथ के यहाँ पुत्र-रूप में जन्म लिया है। इसी प्रकार योगमाया ने सीता जी के रूप में अवतार लिया है। शेष जी लक्ष्मण के रूप में उनका अनुगमन कर रहे हैं। इसलिए निःसन्देह वह वन को ही जाएँगे और रावण का संहार करके शीघ्र ही अयोध्या लौटेंगे।[23]

वनवास की अवधि में श्रीराम लक्ष्मण और सीता जी के साथ गौतमी के तट पर पंचवटी में निवास करते हैं। वहीं रावण की भगिनी राक्षसी शूपर्णखा का आगमन होता है और वह श्रीराम को देखकर उन पर अनुरक्त हो जाती है तथा उनसे प्रणय-निवेदन करती है। भगवान् अपनी भार्या सीता जी की ओर इंगित करते हुए उसे बाहर विराजमान लक्ष्मण के पास भेज देते हैं। जब वह बाहर आकर लक्ष्मण जी से वही बात कहती है तब वह उसे पुनः श्रीराम के पास वापस भेज देते हैं। इस पर वह विकट रूप धारण कर सीता जी की ओर उन्हें खाने के लिए दौड़ती है और श्रीराम की आज्ञा से लक्ष्मण खड्ग से उसके नाक-कान काट लेते हैं, मानों उसके माध्यम से रावण को चुनौती दी हो–

लछिमन अति लाघवं सो नाक कान बिनु कीन्हि।
ताके कर रावन कहुं मनौ चुनौती दीन्हि।।[24]

घायल होकर वह घोर शब्द करती हुई खर राक्षस के पास जाकर सारा समाचार बताती है जिससे क्रोध में भरकर खर, दूषण और त्रिशिरा अन्य राक्षसों के साथ श्रीराम से युद्ध करने आते हैं और क्षण भर में भगवान् उनका संहार कर डालते हैं। तत्पश्चात् शूपर्णखा रावण के पास जाती है और अपना वृत्तान्त सुनाती हुई उसे सीता जी का अपहरण करने के लिए उकसाती है। रावण ऐसे बलशाली श्रीराम के पास जाने की योजना बनाते हुए सोचने लगता है–

सुर रंजन भंजन महि भारा। जौं भगवंत लीन्ह अवतारा।।
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ।।
होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम बचन मन्त्र दृढ़ एहा।।
जौं नररूप भूपसुत कोऊ। हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ।।[25]

इस प्रकार तामसी प्रवृत्ति से उत्पन्न काम-वासना-रूपी शूपर्णखा का प्रसंग अहंकार और लोभ-रूपी रावण द्वारा सत्य, शुचिता और शान्ति-स्वरूपिणी सीता जी के अपहरण का सूत्रपात करता है जिसका उपसंहार अधर्मी और दम्भी दशानन और उस सरीखे राक्षसों के विनाश में होता है। इस सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि भक्ति-मार्ग द्वारा भगवान् को प्रसन्न करने में समय लगता है, अतः रावण विरोध-बुद्धि से भगवान् के पास जाने का निश्चय करता है–

इत्थं विचिन्त्याखिलराक्षसेन्द्रो रामं विहित्वा परमेश्वरं हरिम्।
विरोधबुद्धियैव हरिं प्रयामि द्रुतं न भक्त्या भगवान्प्रसीदेत्।।[26]

प्रतिकार और लोभ के भंवर में फँसे हुए रावण की योजना के अनुसार मारीच स्वर्णहिरण का रूप बनाकर सीता जी को मोहित करने के लिए पंचवटी के आस-पास विचरने लगता है। इधर सर्वज्ञ भगवान् श्रीराम रावण की सारी योजना जानकर सीता जी से कहते हैं–

रावणो भिक्षुरूपेण आगमिष्यति तेन्तिकम्। त्वं तु छायां त्वदाकारां स्थवयित्वोटजे विश।।
अग्नावदृश्यरूपेण वर्षं तिष्ठ ममाज्ञया। रावणस्य वधान्ते मां पूर्ववत्प्राप्स्यत शुभे।।[27]

तद्नुसार अपनी छायामूर्ति कुटी में छोड़कर सीता जी स्वयं अग्नि में समा जाती हैं–

जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हिय अनल समानी।।
निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता। तैसइ सील रूप सुबिनीता।।[28]

श्रीराम का उपर्युक्त कृत्य भगवान् की एक लीला मात्र है जिसका उद्देश्य केवल यह है कि एक ओर अग्नि में स्थापित शक्तिस्वरूपा सीता जी सुरक्षित रहें तो दूसरी ओर उनका हरण करने की रावण की योजना यथावत् बनी रहे, जिससे अन्ततः उसका संहार हो सके तथा भगवान् के अवतरण का उद्देश्य पूर्ण हो सके।

मायावी स्वर्णमृग को देखकर सीता जी श्रीराम से उसे लाने का अनुरोध करती हैं और वह उन्हें लक्ष्मण के संरक्षण में छोड़कर वन में चले जाते हैं। प्रभु के बाण से बींधे जाते ही मारीच अपने वास्तविक स्वरूप में आकर गिर पड़ता है और योजनानुसार लक्ष्मण को पुकारता हुआ अपने प्राण त्यागता है। इधर वन में लक्ष्मण को पुकारने का कातर स्वर सुनकर सीता जी लक्ष्मण को पति की रक्षा के लिए वन में जाने का अनुरोध करती हैं किन्तु लक्ष्मण उसे मृत्यु से पूर्व किसी राक्षस द्वारा कहे हुए वचन कह कर उन्हें छोड़कर जाने से मना करते हैं। अन्त में सीता जी के हठ पर लक्ष्मण वन की ओर चल पड़ते हैं–

बन दिसि देव सौंपि सब काहू। चले जहाँ रावन ससि राहू।।[29]

इसी बीच रावण भिक्षु के वेश में पर्णकुटी में सीता जी के पास भिक्षा के बहाने आता है। वह उन्हें अपना महापर्वताकार रूप दिखलाता है और उनके पैरों की धरती को नखों से खोद कर उन्हें अपने हाथों से उठा लेता है तथा रथ में डालकर आकाश-मार्ग से चल देता है। सीता जी श्रीराम और लक्ष्मण को पुकारती हुई चीत्कार करने लगती हैं–

तद्दृष्ट्वा वनदेव्यश्च भूतानि च वतत्रसुः। ततो विदार्य धरणीं नखैरुद्धृत्य बाहुभिः।।
तोलयित्वा रथे क्षिप्त्वा ययौ क्षिप्रं विहायसा। हा राम हा लक्ष्मणेति रुदती जनकात्मजा।।[30]

मार्ग में श्रीराम भक्त गिद्धराज जटायु रावण को रोककर जनकनन्दिनी की रक्षा करने का बहुत यत्न करता है किन्तु रावण उसे घायल कर देता है–

तब सक्रोध निसिचर खिसिआना। काढ़ेसि परम कराल कृपाना।।
काटेसि पंख परा खग धरनी। सुमिरि राम करि अद्भुत करनी।।
सीतहि जान चढाइ बहोरी। चला उताइल त्रास न थोरी।।[31]

आकाश मार्ग से जाते हुए पर्वत-शिखर पर पाँच वानरों को बैठे देखकर सीता जी अपने आभूषणादि उतारकर अपने दुपट्टे में बाँध कर इस आशय से पर्वत पर फेंक देती हैं कि वे श्रीराम को उनका समाचार सुनावें–

पर्वताग्रे स्थितान्पंच वानरान्वारिजानना। उत्तरीयार्धखण्डेन विमुच्याभरणादिकम्।।
बध्वा चिक्षेप रामाय कथयन्त्विति पर्वते। ततः समुद्रमुल्लंघ्य लंकां गत्वा स रावणः।।[32]

इस प्रकार एक दैवी योजना के अनुसार सीता जी का श्रीराम से वियोग हो जाता है। यद्यपि श्रीराम और सीता जी के लिए यह एक लीला मात्र है किन्तु सांसारिक दृष्टि से इस घटना में गूढ़ आध्यात्मिक प्रतीकात्मकता निहित

है। वास्तव में स्वर्ण मृग के रूप में कपटी मारीच मनुष्य की कामनाओं के प्रति आसक्ति का प्रतीक है और यह दर्शाता है कि जिस प्रकार सीता जी का वियोग श्रीराम से हो गया था उसी प्रकार कामनाओं में आसक्ति के कारण मनुष्य भगवान् से दूर हो जाता है।

रावण सीता जी को अशोक वाटिका में बन्दिनी बनाकर रख देता है और जब-तब उन्हें अपने दुर्वचनों एवं हाव-भाव से भय दिखाता रहता है और अनेक राक्षसियाँ उन्हें जब-तब आकर धमकाती रहती हैं–

भवन गयउ दसकंधर इहाँ पिसाचिनि बृंद। सीतहि त्रास देखावहिं धरहिं रूप बहु मंद।।[33]

वास्तव में अशोक वाटिका में सीता जी का बन्दिनी के रूप में निवास चेतना, अज्ञान अथवा मोह और सम्पूर्ण ज्ञान के विषय में मनुष्य को परिचित कराने का माध्यम है जो रावण के अतुलित अहंकार और विषयासक्ति के आगे सीता जी की शुचिता और अदम्य पातिव्रत्य की शक्ति को उजागर करता है। इसी प्रसंग के माध्यम से मनुष्य के चारित्रिक दोषों पर भी प्रकाश डाला गया है। विशेषकर एकाक्षी, एक-कर्णी तथा अकर्णा जैसी राक्षसियाँ अहंकार, मोह, ईर्ष्या आदि मानवीय दुर्गुणों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

मारीच का वध करने के उपरान्त श्रीराम पंचवटी आते हैं किन्तु सीता जी को न पाकर उनके दुःख का पारावार नहीं रहता। वन में इधर-उधर सीता जी की खोज करते हुए उन्हें जटायु मरणासन्न अवस्था में मिलता है और वह उन्हें सीता जी के विषय में बताता है। जब श्रीराम उससे अपने शरीर को बनाए रखने को कहते हैं तब वह इस प्रकार कहता है–

जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा।।
सो मम लोचन गोचर आगे। राखौं देह नाथ केहि खांगे।।[34]

तदनन्तर वह प्रभु की स्तुति करता है और प्रसन्न होकर श्रीराम उसे अपना सारूप्य प्रदान करते हैं–

इति राघवभाषितं तदा श्रुतवान्हर्षसमाकुलौ द्विजः।
रघुनन्दनसाम्यमास्थितः प्रययौ ब्रह्मसुपूजितं पदम्।।[35]

जटायु-रावण युद्ध श्रीराम-कथा का एक ऐसा प्रसंग है जिसके माध्यम से यह स्थापित किया गया है कि निःस्वार्थ भाव से की गई छोटी-से-छोटी सेवा भी भगवान् सहर्ष स्वीकार करते हैं, प्रभु के दर्शन और उनकी कृपा के सिवा सच्चे भक्त की अन्य कुछ भी इच्छा नहीं होती।

सीता-हरण के प्रसंग के साथ ही भगवान् के उद्देश्य की पूर्ति का अन्तिम चरण आरम्भ होता है जिसमें हनुमान से सम्मिलन, सुग्रीव से मित्रता, जनकनन्दिनी की खोज, विभीषण की शरणागति, श्रीराम-रावण-युद्ध, रावण का वध, अयोध्या में श्रीराम का राज्याभिषेक और रामराज्य की स्थापना आदि घटनाएँ प्रमुख हैं। सीता जी की खोज करते हुए जब श्रीराम और लक्ष्मण वन-वन भटक रहे हैं तभी ऋष्यमूक पर्वत के निकट उनकी भेंट हनुमान जी से होती है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि हनुमान जी भगवान् शिव और पवन देव के साक्षात् अवतार हैं और पूर्वोक्त ईश्वरीय योजना के अन्तर्गत उनका जन्म श्रीराम के कार्य के लिए ही हुआ है। उन्हीं के माध्यम से श्रीराम और लक्ष्मण की मित्रता कपिराज सुग्रीव से होती है जो रावण के हाथों हरण के समय सीता जी द्वारा गिराए गए उनके कुछ वस्त्र एवं आभूषण दिखलाते हैं। श्रीराम सुग्रीव के भाई बालि का वध करते हैं और सुग्रीव अपने वानरयूथों को सीता जी की खोज में विभिन्न दिशाओं में भेजते हैं। हनुमान जी और उनका दल योगिनी

स्वयंप्रभा और सम्पाति की सहायता से लंका के समुद्र तट पर जा पहुँचता है और समुद्र कैसे पार करें इसी चिन्ता में पड़ जाता है। अपने बाल्यकाल में ऋषियों द्वारा दिए हुए श्राप के कारण हनुमान जी अपना बल भूल बैठे हैं किन्तु जाम्बवान उन्हें स्मरण दिलाते हुए कहते हैं–

प्राप्तेऽज्ञेनेव सामर्थ्यं दर्शयाद्य महाबलः। त्वं साक्षाद्वायुतनयो वायुतुल्यपराक्रमः।।
रामकार्यार्थमेव त्वं जनितोऽसि महात्मना। जातमात्रेण ते पूर्वं दृष्टोद्यन्तं विभावसुम्।।[36]

अतएव उन्हें सब कुछ याद आ जाता है और वह पर्वताकार होकर सिंहनाद करते हैं। जाम्बवान उनसे कहते हैं–

एतना करहु तात तुम्ह जाई। सीतहि देखि कहहु सुधि आई।।
तब निज भुज बल राजिवनैना। कौतुक लागि संग कपि सेना।।[37]

कहने का तात्पर्य यह है कि भगवान् के उद्देश्य की पूर्ति के लिए समग्र सृष्टि उनके साथ खड़ी हो जाती है और उसके मार्ग में आने वाली छोटी-बड़ी बाधाएँ क्षण मात्र में दूर हो जाती हैं। हनुमान जी द्वारा अपने प्राकृतिक बल का अस्थाई विस्मरण इस तथ्य का संकेत देता है कि शान्ति-स्वरूपिणी सीता तक पहुँचने से पूर्व समुद्र-रूपी संसार की अनेक विघ्न-बाधाओं को लाँघना अनिवार्य है तथा यह भी स्थापित करता है कि यदि मन में दृढ़ विश्वास और भक्ति है तब अज्ञानरूपी संसार में रहते हुए भी शान्ति की खोज और उससे साक्षात्कार अत्यन्त सहज हो जाते हैं। यही कारण है कि सीता जी की खोज में समुद्र को लाँघ कर लंका जाते समय समुद्र भी मैनाक पर्वत से श्रीराम भक्त हनुमान जी की थकान दूर करने को कहता है किन्तु भगवान् के कार्य को किए बिना उन्हें विश्राम कहाँ–

हनूमान तेहि परस कर पुनि कीन्ह प्रनाम। राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम।।[38]

इसी प्रकार सर्पों की माता सुरसा उनका मार्ग रोकती है किन्तु उन्हें बल और बुद्धि का निधान जान कर उन्हें आशीर्वाद देती हुई कहती है–

राम काजु सबु करिहहु तुम बल बुद्धि निधान। आसिष देइ गई सो हरषि चले हनुमान।।[39]

इसी प्रकार छायाग्राहिणी सिंहिका नामक राक्षसी उन्हें पकड़ लेती है किन्तु वह जल में कूद कर उसे लातों से ही मार डालते हैं–

तत्र दृष्ट्वा महाकायां सिंहिकां घोररूपिणीं। पपात सलिले तूर्णं तद्म्यामेवाहनद्रुषा।।[40]

मसक समान रूप धारण करके जब वह रात्रि में लंका नगर में प्रवेश करने लगते हैं तब लंकिनी नामक राक्षसी उनका मार्ग रोक लेती है। हनुमान जी के एक घूँसे के प्रहार से वह लुढ़क पड़ती है और उनसे कहती है—

प्रबिसि नगर कीजे सब काजा। हृदय राखि कोसलपुर राजा।।
गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई।।
गरुड सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा ताही।।[41]

तदनन्तर हनुमान जी की श्रीराम–भक्त विभीषण से भेंट होती है और उन्हीं की सहायता से वह सीता जी तक पहुँचते हैं। वह श्रीराम द्वारा दी हुई अँगूठी सीता जी को समर्पित करते हुए अपना परिचय देते हैं–

वानरो हं महाभागो दूतो रामस्य धीमतः। रामनामांकित चेदं पश्य देव्यंगुलीयकम्॥[42]

फिर सीता जी को धैर्य दिलाते हुए वह कहते हैं–

कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा।
निसिचर मारि तोहि लै जइहहिं। तिहुँ पुर नारदादि जसु गैहहिं॥[43]

हनुमान जी द्वारा सीता जी को भगवान् श्रीराम की निशानी अँगूठी का समर्पण गुरु द्वारा शिष्य को प्रदान की गई मंत्र-शक्ति का द्योतक है।

जब हनुमान जी के लघु-रूप को देखकर सीता के मन में अन्य वानरों के सम्बन्ध में सन्देह होता है तब वह उन्हें अपना मेरु और मन्दर पर्वत के समान और राक्षसों में भय उत्पन्न करने वाला अति विशाल रूप दिखलाते हैं। यह घटना इस तथ्य को उद्घाटित करती है कि संसार का छोटे से छोटा प्राणी अपनी अनन्य भक्ति और विश्वास के द्वारा महान से महान कार्य भी कर सकता है। तद्नन्तर माता की आज्ञा लेकर वह अशोक वाटिका में जाकर उसे नष्ट-भ्रष्ट करने लगते हैं। अन्ततः रावण के पुत्र मेघनाद द्वारा ब्रह्मास्त्र चलाए जाने पर वह स्वयं को बन्दी बनवा लेते हैं और रावण के दरबार में लाए जाते हैं। यहाँ श्रीरामदूत के रूप में वह सीता जी को वापस देने और श्रीराम की शरण लेने की रावण को सीख देते हैं। दम्भी रावण उनकी नहीं सुनता और दण्ड के रूप में उनकी पूँछ में आग लगवा देता है जिसके पश्चात् वह विभीषण के घर को छोड़कर सारी लंका जला देते हैं। लंका को जलाकर राख कर देने का हनुमान जी का संकल्प भगवान् श्रीराम की राजसिक कृपा का परिचायक है जिसके द्वारा उन्हें रावण की राजधानी का चप्पा-चप्पा छानने का अवसर भी प्राप्त हो गया जो कालान्तर में युद्ध के समय उपयोगी हुआ। तद्नन्तर वह स्वयं समुद्र के जल से आग बुझा कर माता सीता के पास जा खड़े होते हैं–

पूँछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि। जनकसुता के आगे ठाढ भयउ कर जोरि॥[44]

अपनी कोई पहचान माँगने पर सीता जी अपनी चूड़ामणि उतार कर देती हैं और कहती हैं–

दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥[45]

सीता जी की खोज करके लौटे हनुमान जी जब भगवान् श्रीराम से भेंट करते हैं तब प्रभु उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहते हैं कि उनके समान उनका उपकारी अन्य कोई नहीं है और वह उनसे कभी उऋण नहीं हो सकते। यह सुनकर भक्तराज हनुमान जी की दशा अनिर्वचनीय हो जाती है और–

सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमन्त। चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि-त्राहि भगवंत॥[46]

वास्तव में हनुमान जी द्वारा सीता जी की खोज का प्रसंग समस्त राम कथा का केन्द्र-बिन्दु है जहाँ एक ओर भक्त की अनन्य भक्ति और भगवान् के कार्य को पूर्ण करने की उसकी एकाग्रता की अजस्र धारा बहती दिखाई देती है तो दूसरी ओर उसके द्वारा की गई सेवा का प्रतिफल देने की भगवान् की व्यग्रता का उदात्त मानवीय पक्ष भी प्रदर्शित होता है।

इधर विभीषण अपने भ्राता रावण को बहुत प्रकार से समझाते हुए उसे सीता जी को वापस करने और स्वयं को श्रीराम को समर्पित करने का परामर्श देते हैं। अहंकार के मद में चूर रावण उन्हें लात मार कर अपमानित करता है जिससे दुःखी होकर वह आकाशमार्ग में जाकर सबको सुनाकर कहते हैं–

रामु सत्य-संकल्प प्रभु सभा कालबस तोरि। मैं रघुबीर सरन अब जाउँ देहु जनि खोरि॥[47]

इस प्रकार कहते हुए विभीषण भगवान् श्रीराम के पास चले जाते हैं किन्तु जब सुग्रीव उनकी निष्ठा पर सन्देह प्रकट करते हैं तब श्रीराम शरणागत की रक्षा के व्रत को दोहराते हुए कहते हैं–

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।।
आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया। विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम्।।[48]

श्रीराम के समक्ष आते ही विभीषण कहते हैं–

अहोभाग्य मम अमित अति राम कृपा सुख पुंज। देखेउँ नयन बिरंचि सिब सेब्य जुगल पद कंज।।[49]

श्रीराम लक्ष्मण जी से कलश में जल मँगवाते हैं और मन्त्रियों और विशेषकर लक्ष्मण जी से विभीषण को लंका के राज्यपद पर अभिषिक्त कराते हैं और वह प्रभु की सहायता करने का वचन देते हैं। तत्पश्चात् वानरों की सेना के साथ श्रीराम और लक्ष्मण जी लंका की ओर कूच करते हैं और समुद्र-तट पर आते हैं। जब समुद्र उन्हें राह नहीं देता तब श्रीराम उसे सुखा देने की घोषणा करते हुए अपना धनुष चढ़ाते हैं और कहते हैं–

तूणीराद्बाणमादाय कालाग्निसदृशप्रभम्। सन्धाय चापमाकृष्य रामो वाक्यमथाब्रवीत्।।
पश्यन्तु सर्वभूतानि रामस्य शरविक्रमम्। इदानीं भस्मसात्कुर्यां समुद्रं सरितां पतिम्।।[50]

और तब समुद्र भयभीत होकर श्रीराम के समक्ष उपस्थित होता है और उनके चरण पकड़ कर कहता है–

सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे। छमहु नाथ सब अवगुन मेरे।
गगन समीर अनल जल धरनी। इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी।।
प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई। उतरिह कटकु न मोर बड़ाई।।
प्रभु अग्या अपेल श्रुति गाई। करौं बेगि जो तुम्हहि सोहाई।।[51]

श्रीराम द्वारा समुद्र पार करने का उपाय पूछे जाने पर वह नल और नील की सहायता से सेतु बँधवाने का परामर्श देता है। उपर्युक्त घटना समुद्र की जड़ता का भान कराती है और इस तथ्य को स्थापित करने का प्रयास करती है कि माया के वशीभूत होने के कारण सामान्य प्राणी भगवान् को देखकर भी नहीं पहचान पाते। जैसा कि भगवान् कृष्ण कहते हैं–

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः। मूढोऽयं नाभिजानाति मामजममव्ययम्।।[52]

तदनन्तर नल, नील और अन्य वानरों के सहयोग से अनेक विशाल वृक्षों और पर्वत-खण्डों को समुद्र में डालकर एक सेतु तैयार हो जाता है–

श्री रघुबीर प्रताप से सिन्धु तरे पाषान। ते मतिमंद जे राम तजि भजहिं जाइ प्रभु आन।।[53]

इसी सेतु के माध्यम से समस्त वानर-सेना समुद्र पार कर लेती है और लंका पहुँचं जाती है।

वास्तव में लंका तक पहुँचने और तामसिक रावण के संहार से पूर्व समुद्र की बाधा भौतिक और सांसारिक माया और मोह की बाधा हैं और जो प्रत्येक प्राणी की आध्यात्मिक साधना के मार्ग में सर्वप्रथम आड़े आती है जिसे लाँघने के लिए भगवान् श्रीराम के प्रति अनन्य भक्ति और आस्था के सेतु की आवश्यकता पड़ती है। जब तक माया और मोह का बन्धन नहीं कटता तब तक तामसी प्रवृत्तियों का नाश नहीं होगा, भगवत्भक्ति का उदय नहीं होगा और शान्तिरूपी सीता जी की प्राप्ति असम्भव रहेगी।

उधर लंका में मन्दोदरी अपने पति रावण को समझाते हुए विनती करती है कि वह श्रीराम के चरणकमलों में सिर नवाकर जानकी जी को सौंप दे और पुत्र को राज्य देकर वन में श्रीरघुनाथ का भजन करे, किन्तु दम्भी रावण यह कह कर कि देव, दानव और मनुष्य सभी उसके वश में हैं, उसके भय को झुठला देता है। उसके नाना माल्यवान और उसका पुत्र प्रहस्त भी पिता को सीता जी को देकर श्रीराम से मेल करने का परामर्श देते हैं किन्तु वह अपने अभिमान में डूबा हुआ अपने निश्चय से टस-से-मस नहीं होता। युद्ध से पूर्व रावण को एक और अवसर देने के उद्देश्य से श्रीराम बालिपुत्र अंगद को उसके दरबार में दूत बनाकर भेजते हैं. जहाँ पहुँच कर वह राक्षसराज से भगवान् की शरण में जाने का विमर्श देते हैं–

प्रनतपाल रघुबंसमनि त्राहि-त्राहि अब मोहि। आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करैगो तोहि।।[54]

दम्भी रावण और अंगद के मध्य वाक्युद्ध और एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयास चलता रहता है और अन्त में अंगद सभा में अपना चरण प्रण करके रोप देता है और रावण को उसे हटा देने की चुनौती देता है। इन्द्रजीत आदि अनेक योद्धा उसके चरणों को हटा नहीं पाते। अन्त में जब रावण स्वयं उसके चरण उठाने के लिए उठता है तब–

गहत चरन कह बालिकुमार। मम पद गहें न तोर उबारा।।
गहसि न राम चरन सठ जाई। सुनत फिरा मन अति सकुचाई।।
भयउ तेजहत श्री सब गई। मध्य दिवस जिमि ससि सोहई।।[55]

वास्तव में रावण की सभा में उपस्थित राक्षस-मण्डली विषयी पुरुषों और उनके मोह की प्रतीक है एवं अंगद का चरण सन्तों के पवित्र हृदय का प्रतीक है जो एक बार भगवान् की भक्ति में लीन हो जाता है तब वह अपनी भक्ति की नीति का परित्याग नहीं करता, चाहे विषयी पुरुष उसे सांसारिक प्रलोभनों से कितना ही डिगाने का प्रयत्न करें। श्रीराम की भक्ति में तल्लीन अंगद के आन्तरिक विश्वास के प्रतीक-स्वरूप उसके चरण को राक्षस-गण के प्रयास उसी प्रकार डिगा नहीं पाते जैसे भोग-विलास के पंक में फँसा हुआ जीव अपने मोह-रूपी वृक्ष को उखाड़ नहीं पाता।

अन्ततः श्रीराम-रावण संग्राम प्रारम्भ हो जाता है, जिसकी अवधि में लक्ष्मण जी को वीरघातिनी शक्ति लगती है और वह मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ते हैं। मेघनाद और उसके सौ करोड़ योद्धा लक्ष्मण जी को उठाकर ले जाना चाहते हैं किन्तु जगत के आधार श्रीशेषावतार को कौन उठा सकता है? इस सम्बन्ध में शिव जी पार्वती जी से कहते हैं–

सुनु गिरिजा क्रोधानल जासू। जारइ भुवन चारिदस आसू।।
सक संग्राम जीति को ताही। सेवहिं सुर नर अग जग जाहीं।।[56]

लक्ष्मण जी के प्राणों की रक्षा के लिए वैद्य सुषेण के परामर्श पर हनुमान जी संजीवनी बूटी लेने जाते हैं किन्तु कालनेमि राक्षस कपटी साधु बनकर उनका मार्ग रोकता है। स्नान के लिए गए हनुमान जी पर राक्षस का भेद खुलता है और वे लौट कर उसका वध करते हैं। आगे जाने पर वह संजीवनी की पहचान नहीं कर पाते, अतः वह समूचा पर्वत ही उठा लाते हैं और इस प्रकार लक्ष्मण के प्राणों की रक्षा होती है। युद्ध में कुम्भकर्ण, मेघनाद के साथ अनेक राक्षसों का संहार होता है। श्रीराम और रावण के मध्य युद्ध में रावण द्वारा विभीषण पर

छोड़ी गई शक्ति स्वयं पर ले लेते हैं। रावण माया रचता है जिसे श्रीराम नष्ट कर देते हैं। अन्त में विभीषण श्रीराम को बताते हैं कि रावण के नाभिकुण्ड में अमृत का निवास है, जिसके बल पर ही वह जीता है। तद्नुसार कानों तक धनुष खींच कर श्रीरघुनाथ रावण पर इकतीस बाण छोड़ते हैं जिसमें से एक बाण उसके नाभिकुण्ड को सोख लेता है, शेष तीस बाण उसके सिरों और भुजाओं को लेकर पृथ्वी पर नाचने लगते हैं। उसका धड़ प्रचंड वेग से दौड़ने लगता है और तब प्रभु बाण मारकर उसके दो टुकड़े कर देते हैं और उसका अन्त हो जाता है। दयानिधान श्रीराम उसे परमगति प्रदान करते हैं और उसके अन्त से समस्त लोकों में हर्ष छा जाता है–

तासु तेज समान प्रभु आनन। हरषे देखि संभु चतुरानन।।
जय-जय धुनि पूरी ब्रह्मण्ड। जय रघुबीर प्रबल भुजदंडा।।
बरषहिं सुमन देव मुनि बृंदा। जय कृपाल जय जयति मुकुंदा।।[57]

भगवान् श्रीराम द्वारा अहंकारी और अभिमानी रावण का वध और उसे मुक्ति प्रदान करना प्रभु की तामसिक कृपा का द्योतक है।

प्रभु की आज्ञा से जब हनुमान जी माता सीता को अशोक-वाटिका से ले आते हैं तब वह लक्ष्मण जी से आग तैयार करने को कहती हैं। आग के तैयार होने पर वह अपनी लीला से कहती है–

जौं मन बच क्रम मम उर माँहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं।।
तौं कृसानु सब कै गति जाना। मो कहुँ होउ श्रीखण्ड समाना।।[58]

यह कहते हुए सीता जी चन्दन के समान हुई शीतल अग्नि में प्रवेश कर जाती हैं। तभी अग्निदेव सीता जी को लिए हुए प्रकट होते हैं तथा श्रीराम से कहते हैं–

गृहाण देवीं रघुनाथ जानकीं पुरा त्वया मय्यवरोपितां वने।।
तिरोहिता सा प्रतिबिम्बरूपिणी कृता यदर्थं कृतकृत्यतां गता।[59]

तद्नुसार प्रसन्न होकर श्रीराम जानकी जी को ग्रहण करते हैं। इसके उपरान्त लंका पर विभीषण का राजतिलक करके श्रीराम पुष्पक विमान में अयोध्या के लिए प्रस्थान करते हैं। अयोध्या पहुँचकर वह अपने गुरुजनों, माताओं, भाइयों आदि से भेंट करते हैं। उन्हें देखकर भरत भूमि पर गिर पड़ते हैं और श्रीराम उन्हें अपने हृदय से लगा लेते हैं। जब प्रजाजन एक साथ उनसे भेंट करना चाहते हैं तब कृपानिधान भगवान् अमित रूप में उनसे मिलते हैं–

अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथा जोग मिले सबहिं कृपाला।।[60]

रावण का वध और सीता जी के साथ श्रीराम का अयोध्या में पुनरागमन विषयों तथा वासनाओं से मुक्ति के फलस्वरूप भक्त का बैकुण्ठ में प्रवेश तथा प्रभु द्वारा उसकी निःस्वार्थ सेवा की स्वीकृति का परिचायक है।

भगवान् श्रीराम के राज्याभिषेक के साथ ही रामराज की स्थापना होती है जिसमें सभी प्रजाजन वर्णाश्रम धर्म के अनुसार आचरण करते हैं, दैहिक, दैविक और भौतिक ताप किसी को नहीं व्यापते, सभी में पारस्परिक प्रेम है, अकाल मृत्यु नहीं होती, सभी स्वस्थ हैं, कोई दरिद्र व दुःखी नहीं हैं, सभी धर्म-परायण हैं और रामभक्ति में लीन रहते हैं।[61] इस प्रकार श्रीराम अपने व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व के माध्यम से वर्णाश्रम व्यवस्था, राजनीति, दण्ड तथा नीति की शिक्षा देते हैं। उनका जीवन ईश्वरीय कृपा तथा करुणा के महत्त्व को रेखांकित करता है और यह बताता है कि आध्यात्मिक अन्वेषण के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा के रूप में खड़े काम और क्रोध को दूर करने

के लिए इन्हीं की आवश्यकता पड़ती है, जैसे कि श्रीराम तथा सीता जी के मध्य रावण आदि राक्षस बाधा बनकर उपस्थित हो गए थे।

बहुत समय तक अयोध्या के सिंहासन पर राज्य करने के उपरान्त एक दिन सीता जी श्रीराम से कहती हैं कि देवगण चाहते हैं कि वह पहले बैकुण्ठ चली जायँ ताकि श्रीरघुनाथ जी भी वहाँ आकर उन्हें सनाथ कर दें। श्रीराम कहते हैं–'मैं तुमसे सम्बन्ध रखने वाले लोकापवाद के विष से तुम्हें त्याग दूँगा। वहाँ श्री वाल्मीकि के आश्रम में तुम्हारे दो बालक होंगे जिसके बाद तुम मेरे पास फिर आ जाओगी और लोकों की प्रतीति के लिए आदरपूर्वक शपथ करके तुरन्त ही पृथ्वी के छिद्र द्वारा बैकुण्ठ चली जाओगी। पीछे-पीछे मैं भी वहाँ जाऊँगा।'[62] तत्पश्चात् वह अपने दूत से पूछते हैं कि उनके और सीता जी आदि के विषय में प्रजा-जन क्या कहते हैं। दूत बताता है कि प्रजा का कहना है कि उन्होंने रावण द्वारा हरी गई सीता जी को बिना किसी सन्देह के घर में वापस रख लिया है, यह ठीक नहीं किया है। यह सुनकर श्रीराम लक्ष्मण से कहते हैं–

लोकापवादस्तु महान्सीतामाश्रित्य मे भवत्। सीतां प्रातः समानीय वाल्मीकेराश्रमान्तिके।।
त्यक्त्वा शीघ्रं रथेन त्वं पुनरायाहि लक्ष्मण। वक्ष्यसे यदि वा किंचित्तदा मां हतवानसि।।[63]

तदनुसार लक्ष्मण जी सीता जी को वन में ले जाते हैं और वाल्मीकि के आश्रम पर उन्हें उतार देते हैं। दिव्य-दृष्टि वाले महर्षि वाल्मीकि सीता जी को अपने आश्रम में ले आते हैं, जहाँ वह समय आने पर कुश और लव को जन्म देती हैं। सीता जी से विलग होकर श्रीराम तपस्वी का-सा जीवन व्यतीत करने लगते हैं और सीता जी की स्वर्ण प्रतिमाएँ बनाकर यज्ञ में व्यस्त रहने लगते हैं। इधर दोनों बालक वाल्मीकि द्वारा सिखाए गए भगवान् श्रीराम के पूर्व जीवन-चरित्र का गान करते हुए रघुनाथ जी के यज्ञ में पहुँचते हैं। तभी वाल्मीकि भी सीता जी को लेकर पहुँचते हैं और श्रीराम से उन बालकों का परिचय देते हुए कहते हैं–

सीतासहायो वाल्मीकिरिति प्राह च राघवम्। इयं दाशरथे सीता सुव्रता धर्मचारिणी।।
अपापा ते पुरा त्यक्ता ममाश्रमसमीपतः। प्रत्ययं दास्यते सीतातनयाविभौ यमलजातकौ।।
सुतौ तु तव दुर्धर्षौ तथ्यमेतद्ब्रवीमि ते। प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो रघुकुलोद्वह।।[64]

श्रीराम वाल्मीकि की बात को स्वीकार करते हैं किन्तु सीता जी कहती हैं कि यदि वह भगवान् श्रीराम के अतिरिक्त अन्य पुरुष का मन से भी चिन्तन नहीं करती हों तो पृथ्वी देवी उन्हें आश्रय दें। ऐसा कहते ही सीता जी पृथ्वी में प्रवेश कर जाती हैं। कालान्तर में श्रीराम भी सरयू का जल स्पर्श करके बैकुण्ठ चले जाते हैं। श्रीराम द्वारा सीता जी का परित्याग एक ईश्वरीय योजना का अंग है, जिसके अन्तर्गत एक ओर वह अपनी निर्दोष पत्नी को स्वयं से अलग करने के लिए एक मिथ्या लोकापवाद का आश्रय लेकर स्वयं के सम्बन्ध में प्रजा में फैले कलंक को दूर करने के राजकीय दायित्व का निर्वाह करते हैं तो दूसरी ओर उसके पश्चात् अपने लिए तपस्वी जीवन को सहर्ष स्वीकार कर त्याग और निष्काम्यता का परिचय देते हैं। अन्त में सीता जी के पृथ्वी में प्रवेश कर जाने के उपरान्त उनका महाप्रयाण यह स्थापित करता है कि अवतारी पुरुष सांसारिक उद्देश्य की पूर्ति के पश्चात् संसार छोड़ने में माया-मोह से ग्रसित नहीं होते।

इस प्रकार श्रीराम कथा भगवान् के अवतरण के समस्त उद्देश्यों की पूर्ति की गौरव-गाथा प्रस्तुत करती है। वास्तव में श्रीराम के हाथों रावण का अन्त असत्य पर सत्य, अधर्म पर धर्म, पाप पर पुण्य और तामसिक प्रवृत्तियों पर सात्त्विक प्रवृत्तियों की विजय का प्रतीक है। यहाँ तक कि मारीच रावण से श्रीराम के विषय में इस प्रकार कहता है–

रामो विग्रहवान धर्मः साधुः सत्यपराक्रमः। राजा सर्वस्य लोकस्य देवानामिव वासवः॥[65]

वास्तव में मनुष्य-रूप में अपने अंशों सहित भगवान् श्रीराम के अवतरण का मूल उद्देश्य अपने मर्यादित आचरण से मनुष्य को मानवता की शिक्षा देना है, जैसा कि भागवतकार कहते हैं–

मर्त्यावतारस्तिस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं विभोः।

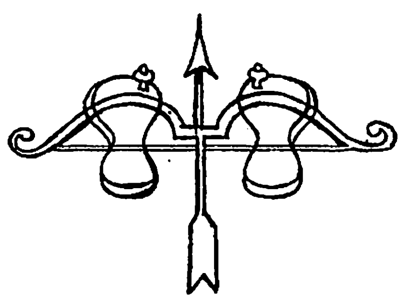
कुतो न्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य्॥[66]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि श्रीराम कथा श्रीराम और रावण के मध्य हुए युद्ध और अन्त में उसके संहार की कथा मात्र नहीं है वरन् उसमें सम्मिलित अनेक घटनाएँ ऐसे अनेक आध्यात्मिक तत्त्वों को उजागर करती हैं जिनके माध्यम से मानवीय जीवन के उन मूल्यों का सशक्त रूप से रेखांकन किया गया है जो गोस्वामी जी के तत्कालीन समाज में तिरोहित हो चुके थे। वास्तव में यह कथा अवतारवाद के उस सिद्धान्त में मनुष्य के विश्वास को सुदृढ़ करती है जिसके अनुसार समाज में अधर्म और अत्याचार की वृद्धि होने पर भगवान् साक्षात् रूप में प्रगट होते हैं और दुष्टों का नाश, सन्तों की रक्षा और धर्म की पुनर्स्थापना करते हैं। आज के समाज में जहाँ धर्म और जीवन-मूल्यों का क्षरण बहुत तीव्र गति से हो रहा है श्रीराम कथा की प्रासंगिकता और बढ़ जाती है और इसका परायण करने वाले भक्तजनों का मार्गदर्शन करने में इसकी उपादेयता द्विगुणित हो जाती है।

---

1. अध्या.रामा. 1-2, 25,26,27,28
2. वा.रामा. 1-15-31, 32
3. वही 1-17-8 से 16 तक
4. गीता 4-7-8
5. गीता 4-6
6. मानस 1-20घ-3, 4 तथा 121
7. मानस 1-186-1, 2 तथा 3
8. अध्यात्म रामा. 1-4-17 से 20 तक
9. आध्या.रामा, 1-4-30
10. मानस 1-208 ख-3
11. आध्या. रामा. 1-5-61
12. मानस 1-233-2
13. वही - 1-235-4
14. वही - 1-261-1
15. वही - 1-264
16. मानस–2-11
17. वा.रामा. 2-8-22 तथा 27
18. आध्या.रामा. 2-2-62 से 64 तक
19. वा.रामा. 2-11-26 तथा 27
20. मानस 2-22-3
21. वही 2-53
22. आध्या.रामा. 2-4-78 तथा 79
23. अध्या.रामा. 2-9-43 से 47 तक
24. मानस 3-12
25. वही 3-22-2 तथा 3
26. अध्या.रामा. 3-5-61
27. अध्या.रामा. 3-7-2 तथा 3
28. मानस 3-23-2
29. मानस 3-27-3
30. आध्या.रामा. 3-7-51 तथा 52
31. मानस 3-28-11 तथा 12
32. अध्या.राम. 3-7-63 तथा 64
33. मानस - 5-10
34. मानस - 3-30-3 तथा 4
35. अध्या रामा. 3-8-56
36. अध्या. रामा 4-9-17 तथा 18
37. मानस 4-29-6
38. मानस - 5-1
39. वही - 5-2
40. अध्या.रामा. 5-4-1 तथा 2
41. मानस - 5-4-1 तथा 2
42. वा.रामा. - 5-65-2
43. मानस - 5-15-2 तथा 3
44. वही - 5-26
45. वही - 5-26-2
46. वही - 5-32
47. वही - 5-41
48. वा.रामा. 6-18-33 तथा 34
49. मानस - 5-47
50. अध्या.रामा. 6-364 तथा 65

51. मानस - 5-58-1 तथा 4
52. गीता - 7-25
53. मानस - 6-3
54. मानस - 6-20
55. वही - 6-34 ख-1 तथा 2
56. वही - 6-54-1
57. मानस - 6-102-5 तथा 6
58. वही 108-4
59. अध्या.रामा. 6-13-20 तथा 21
60. मानस - 7-5-3
61. मानस - 7-19ग-4 से मानस - 7-31 तक तथा अध्या.रामा. 7-4-21 से 7-4-31 तक
62. अध्या.रामा. 7-4-37 से 44 तक
63. वही. 7-4-54-55
64. वही 7-7-28 से 30 तक
65. वा.रामा. - 3-37-13
66. श्रीमद्भागवत - 5-19-5



खण्ड-दो
शोध तथा अन्वेषण

मानस की रामकथा के मौलिक सन्दर्भ

डा. नन्दिता सिंह
इलाहाबाद (उ. प्र.)

रामकथा के लेखन की अनन्त एवं रामकथा के सन्दर्भों की व्याप्ति की सीमाएँ अनन्त हैं। गोस्वामी तुलसीदास स्वयं कहते हैं कि "राम अनन्त अनन्त गुन अमित कथा विस्तार" और इस प्रसंग में तुलसी ने इसीलिए लिखा है कि उनकी रामकथा पढ़कर कोई यह अविश्वास न करे कि इसका उद्भव स्थल क्या है? जिन पाठकों की प्रज्ञा निर्मल है, वे रामकथा की किसी भी प्रस्तुति को अविश्वसनीय नहीं मानते, तुलसी स्वयं कारण बताते हैं—

नाना भाँति राम अवतारा। रामायन सतकोटि अपारा।।

वैसे परम्परा में, च्यवन ऋषि ने सर्वप्रथम रामकाव्य लिखने का संकल्प लिया था, किन्तु जैसी रामकथा लोक के लिए अभीष्ट थी, उसे वे पूर्ण नहीं कर सके थे—स्वयं वाल्मीकि ने उस कथा को पूर्णता प्रदान की थी—

वाल्मीकिरादौ च ससण पद्यं। अग्रन्थ यन्न च्यवनों महर्षिणा।।

(महाकवि अश्वघोष)

महाकवि अश्वघोष वाल्मीकि की रामकथा 23 उदात्त मानवीय मूल्यों की राममयी अभिव्यक्ति है। स्वयं वाल्मीकि अपनी रामायण में बताते हैं कि उनके पूर्व **'पौलस्त्य-वध'** शीर्षक से रामकथा प्रचलित थी—जिसका मुख्य लक्ष्य 'रावण-वध' था। परवर्ती काल में रावण-वध शीर्षक से अनेक महाकाव्य रामकाव्य की परम्परा में प्राप्त होते हैं। यह कथा सम्भवतः राम वन-गमन से प्रारम्भ होकर रावण-वध या राम के अयोध्या प्रत्यावर्तन प्रसंग से समाप्त होती थी। इस सन्दर्भ में, एक प्रसंग लोक में रामकथा गायन का है। रामशौर्य की गाथा राजदरबारों में गाकर कुशीलव नामक चारण जातियाँ रामकथा का गायन करती थीं। राजाश्रय के अन्तर्गत रामशौर्य, पराक्रम एवं अन्य श्रेष्ठ राजगुणों को इन चारण जातियों ने समन्वित किया था। ये चारण रामकथा से इतनी जुड़ चुकी थीं कि 'लव और कुश' की कथा सम्भव है, इन्हीं से सम्बद्ध हुई हो। वाल्मीकि द्वारा संगीतबद्ध रामकथा का गायन सर्वप्रथम इन्हीं के द्वारा राम के दरबार में होता है। रामकथा श्रेष्ठ मुनियों तथा ऋषियों के लोकादर्शमयी रही है। वाल्मीकि द्वारा नारद से लोक में विश्रुत श्रेष्ठतम् पुरुष का सन्दर्भ जानने के प्रश्न पर उनके द्वारा उदात्त चरित्र के तेईस गुणों का उन्हें ज्ञान होता है और बाद में क्रौंच-वध के बाद उन्हें महर्षि नारद द्वारा वर्णित श्रेष्ठ पुरुष राम की कथा के लेखन का निर्देश मिलता है। रामकथा का प्रारम्भिक प्रसंग कलाओं से भी जुड़ा रहा है। मृण्मयी राममूर्तियों को बनाने का कौशल कुम्भकार नामक जाति करती थी, जो उसकी आजीविका का साधन रही है। यही नहीं, लोक-नाट्य तथा लीला-नाट्यों में रामकथा के अभिनय का संकेत ईसा की चौथी शती से ही प्राप्त होते हैं। महर्षि पतंजलि के महाभाष्य में 'राम-रावण' युद्ध के मंचन एवं अभिनय की सूचना मिलती है। इसी

प्रकार, हरिवंश पुराण में लोक नाट्य तथा लीला के रूप में रामकथा के अभिनय की कथा प्रसिद्ध है। हरिवंश पुराण के अन्तर्गत यादवगण नट-वेश धारण करके वज्रपुर नगर में रामकथा का सामूहिक अभिनय करते हैं। पुरुष पात्र यादवगण नारी वेश धारण करके अपनी लीला-क्रिया द्वारा राक्षसों को मुग्ध करके उनकी प्रशंसा के पात्र बनते हैं—

रम्भाभिसार कौबेरं नाटकं च नृस्तुततः।
शूरो रावणरूपेण रम्भावेषा मनोवती॥

यही सूचना, अब्दुर्रहमान की 12वीं शती की रचना सन्देश रासक में भी मिलती है—

'रामायण अहिणवियइ कत्थति कथयवरिहि।'

तात्पर्य यह कि भारतीय परम्परा में विश्रुत यह आदिकथा अनेक रूपों यथा—काव्य, लोक-काव्य, नाट्य, लोक-नाट्य, संगीत, गायन, वादन, चित्रकला आदि अनेक रूप में प्रचलित रही है। इन संदर्भों में प्रयुक्त होने के कारण रामकथा के वास्तविक रूप को अन्तिम रूप से बता पाना मुश्किल है, किन्तु कथा के मूल सन्दर्भों को केन्द्र में रखते हुए प्रत्येक युग के कवियों ने अपने मन्तव्यों के अनुसार इसे गढ़ा है और उस कथा को 'इदमित्थं' कहना असम्भव है। गोस्वामी तुलसीदास रामकथाश्रित काव्य की रचना के सन्दर्भ में इस तथ्य से भलीभाँति पाठकों को परिचित कराते हुए कहते हैं कि "मानस को पढ़ने के बाद इसे कवि प्रतिभा निर्मित कृति मात्र ही न कहा जाए।"

तुलसीकृत 'रामचरितमानस' की कथा रचना अद्भुत है। रामकथा के विश्रुत प्रसंग जो मानस में छूट जाते हैं, उन्हें वे गीतावली, कवितावली, जानकी मंगल जैसी रचनाओं में प्रस्तुत करते हैं, किन्तु मानस की कथा का सर्जनात्मक स्वरूप उनके द्वारा कुछ ऐसा रखा जाता है कि वाल्मीकि रामायण, हनुमन्नाटक, भुशुंडि रामायण, याज्ञवल्क्य रामायण, आध्यात्म रामायण आदि के अनेक सन्दर्भों का युगानुरूप समस्याओं के समाधान हेतु उसमें समाहार हो सके। रामकथा की परम्परा के अतिरिक्त भी तुलसी ने पुराण, आगम, निगम, साहित्य एवं अन्य अभिमतों को रामकथा के साथ जोड़ा है—

नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद्,
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा
भाषा निबद्ध मतिमंजुलमातनोति॥

यही नहीं, विविध दार्शनिक, नैतिक, परामपराबद्ध आर्ष मान्यताओं, भक्ति, ज्ञान, कर्मकाण्ड आदि भारतीय परम्पराओं ही नहीं लोक-जनों की परम्परा से चली आ रही वैचारिक तथा व्यावहारिक मान्यताओं को रामकथा से जोड़कर उसे सर्वथा ग्राह्य बनाया है। निश्चित रूप से तुलसीकृत रामचरितमानस की यह रामकथा अध्यात्म चिन्तन के वैदुष्य एवं लोकजीवन की नैतिकता से परिपूर्ण एक ऐसा सृजन है—जो सर्वथा कल्याणमयता से ओत-प्रोत है।

रामचरितमानस की कथावस्तु की रामकथा परम्परा के सापेक्ष्य में यदि मौलिकता की जाँच की जाए तो उसका स्थापत्य (Structure) सर्वथा मौलिक और परम्परा भिन्न है। परम्परा की चार कथा-वस्तुएँ मानस के कथा-स्थापत्य का निर्माण करती हैं—(1) मूलकथा या मुख्यकथा—जिसका अभिप्राय रामकथा के मूल संवेद्य

सन्दर्भ को फलागम के रूप में स्थापित करना है। (2) रामकथा की दूसरी कथाएँ पूरक हैं—जो मूलकथा की टूट जाती हुई कड़ियों को पुनः जोड़कर आगे बढ़ाती हैं। बालकाण्ड में विश्वामित्र प्रसंग, अयोध्याकाण्ड में मंथरा प्रसंग, सुन्दरकाण्ड में शूपर्णखा प्रसंग आदि-आदि। कथावस्तु के ये सन्दर्भ प्राचीन हैं, किन्तु तुलसी अपने मन्तव्य के अनुसार इन्हें नया सन्दर्भ प्रदान करते हैं। रामचरितमानस की तीसरी कथाएँ **सहकथाएँ** हैं। यद्यपि इस प्रकार के सन्दर्भ अन्यत्र भी मिलते हैं, किन्तु तुलसी ने इनका प्रयोग रामभक्ति की गहनता को स्पष्ट करने के लिए विशेष रूप से किया है। बालकाण्ड के 'धनुभंग प्रसंग में' परशुराम प्रकरण, अयोध्याकाण्ड में वाल्मीकि-राम भेंट, ग्राम वधूटियों एवं तापस प्रसंग, चित्रकूट में वनवासियों के प्रसंग आदि। सम्पूर्ण रामचरितमानस की मूलकथा के साथ ये अंश सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं ग्राह्य बनकर रामचरितमानस में प्रयुक्त हुए हैं। केवट, सुतीक्ष्ण, अहल्या, शबरी आदि से जुड़े मूलकथा के सहप्रसंग अपनी रचना सार्थकता के सन्दर्भ में कवि के भक्त व्यक्तित्व तथा श्रीराम की भक्तों पर अतिशय कृपालुता एवं उदारता के साक्ष्य बनकर हमारे सामने आते हैं। यद्यपि ये कथाएँ परम्परा सम्बद्ध हैं, किन्तु कवि अपने मन्तव्य के अनुसार उनमें पूरी तरह से परिवर्तन करके अपने मौलिक सृजन सापेक्ष्य से ढँक देता है। गोस्वामी तुलसीदास जी श्रीराम के प्रति अपनी मौलिक आस्था, भक्ति, दास्यभाव से एक ओर इन कथाओं को सम्वलित करते हैं, तो दूसरी ओर प्रभु श्रीराम की करुणा, कृपा, परित्यक्तों के प्रति आत्मीयता आदि भावों को व्यक्त कर मध्यकालीन भक्ति को सर्वथा नया मानवीय सन्दर्भ प्रदान करते हैं। सहकथाओं के साथ, इस प्रकार, परम्परा से हट कर बनी उनकी मौलिक रचना-दृष्टि श्रीरामचरितमानस में सर्वत्र दिखाई पड़ती है।

रामचरितमानस में सबसे महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ प्रस्तावना एवं समापन कथाओं के हैं। रामकथा से जुड़े तुलसी के मौलिक मन्तव्यों को स्पष्ट करने के लिए ये मुख्य हेतु हैं। बालकाण्ड का प्रारम्भ एवं रामायण के उत्तरकाण्ड का समापन सन्दर्भ इन्हीं कथाओं से ही जुड़ा हुआ है। कवि प्रस्तावना कथा की भूमिका में स्पष्ट करता है कि 'रामजन्म क्यों?' परम्परा में सामान्यतया 'रावण-वध' हेतु को केन्द्र मं रखा गया है, किन्तु तुलसी इस प्रकारण में विस्तार देते हैं। जय एवं विजय की शाप कथा के साथ-साथ लोक-जीवन एवं भक्ति के पारस्परिक साधर्म्य को जोड़ने के लिए वे **'मनु-शतरूपा'** कथा को सामने ले आते हैं। यद्यपि यह कथा परम्परा में मिलती है, किन्तु कवि उस कथा को अपने सन्दर्भों से जोड़ता है—'माता-पिता' के वात्सल्यभाव की प्रकृतभावदशा एवं ईश्वरत्व की प्रमुखता को लोकभाव में परिवर्तित करने की उसकी महती कल्पना इसके मूल में है—निर्गुण, अज, निर्लेप ब्रह्म के सन्दर्भ से जोड़कर कवि यहाँ माता-पिता के वात्सल्य को कितना ऊँचा बना देता है—

दानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कहउँ सतिभाउ,
चाहहुँ तुमहिं समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ।

और विष्णु द्वारा एवमस्तु कह देने पर दोनों अपनी शर्तें इस प्रकार रखते हैं—

सोई सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु।
सोइ विवेक सोइ रहनि प्रभु हमहिं कृपा करि देहु।।

आश्चर्य है—दोनों विष्णु को पुत्र के रूप में प्राप्त करने की स्वीकृति लेकर उसमें भक्ति के शीर्ष तादात्म्य आनन्दलाभ की भी आकांक्षा करते हैं। यहाँ वात्सल्यरति पूर्ण-भक्ति है। विष्णु इसे भी स्वीकार कर लेते हैं और इसके बाद वे दोनों अपनी लोक संसक्ति में उन्हें पुनः फँसाते हैं—

बंदि चरन मनु कहेउ बहोरी। अवर एक बिनती प्रभु मोरी॥
सुत विषइक तव पद रति होऊ। मोहि बड़ मूढ़ कहै किन कोऊ॥
मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुमहुँ अधीना॥
अस बरु माँगि चरन गहि रहेऊ। एवमस्तु करुणानिधि कहेऊ॥

प्रस्तावना कथा का यह वर प्राप्ति प्रसंग निश्चित ही बड़ा ही गूढ़ एवं रहस्यमय है और यह तुलसी की अपनी कल्पना है कि लोकभाव संसक्ति में यदि अज्ञातभाव से नशे की भाँति यदि आध्यात्मिक उन्माद मिल जाए, तो एक गृहस्थ का जीवन लोकवासना एवं आध्यात्मिक आनन्द से समन्वित होकर अद्वितीय बन उठे। प्रस्तावना कथा में इसी प्रकार नारद प्रसंग है, प्रतापभानु प्रसंग भी इसी प्रस्तावना कथा में है और इन सबके माध्यम से कवि परम्परा का स्मरण करता हुआ उन्हें अपनी मौलिक उद्भावनाओं से जोड़कर नवीन बना देता है।

रामचरितमानस कथा रचना इतने पर ही समाप्त नहीं हो उठती। इसके मूल में अभी संवादकथाओं की प्रस्तावना एवं कवि की मौलिक स्थापत्य रचना में मूल प्रयास अवशिष्ट है। रामचरितमानस का प्रारम्भ 'शिव-पार्वती' संवाद से होता है। यह संवाद आध्यात्म रामायण से सम्बद्ध है, किन्तु कथा प्रस्तुति का जो स्वरूप वह शिव द्वारा प्रस्तुत करता है, सर्वथा कवि का अपना मौलिक आत्मसृजन है। इसी के साथ भरद्वाज एवं याज्ञवल्क्य का संवाद भी शुरू होता है और कथा के समापन पर 'भुशुंडि एवं गरुण' प्रसंग आकर सम्पूर्ण कही हुई रामकथा को सर्वथा एक नवीन एवं अद्वितीय सन्दर्भ प्रदान करने लगता है। संक्षेप में 'शिव-पार्वती' एवं 'भुशुंडि-गरुण' प्रसंगों की मौलिक उपलब्धियों की ओर संकेत कर देना आवश्यक होगा।

कवि अपने कथानायक के सन्दर्भ में बड़ा स्पष्ट प्रश्न रखता है, वह प्रश्न यह है कि जिस राम के विषय में वह सम्पूर्ण प्रबन्ध काव्य लिख रहा है, वह कौन है? जिस राम की यह कथा कही जा रही है, उसकी प्रामाणिकता क्या है? यह प्रश्न वक्तागण अपने श्रेष्ठ जनों (सर्जकों) से पूछ रहे हैं। महाशिव दिन-रात राम की अराधना में लगे रहते हैं और उनकी अर्धांगिनी पार्वती यह समझ नहीं पातीं कि राम कौन हैं? यह आश्चर्य का विषय है? इससे अधिक आश्चर्य का विषय यह है कि रात-दिन अपने स्वामी विष्णु के वाहन गरुण जो उन्हें अपनी पीठ पर निरन्तर लेकर उड़ते एवं टहलते रहते हैं, नहीं समझ पाते कि राम कौन हैं? भरद्वाज तथा याज्ञवल्क्य का संवाद भी इसी सन्दर्भ से जुड़ा हुआ है। कवि गुरु नरहरिदास जी इसे समझाते हैं कि रामकथा क्या है? किन्तु बाल्यावस्था की नासमझी के कारण तुलसी भी उसे नहीं समझ पाए। तुलसी के युग का सम्पूर्ण समाज एवं सुधी संवर्ग तथा आज का समाज भी जानना चाहेगा कि राम कौन हैं? यह सर्वाधिक जिज्ञासापूर्ण एक तात्त्विक प्रश्न है और प्रत्येक देश, प्रत्येक काल तथा प्रत्येक परिस्थिति में यह प्रश्न उठता रहेगा कि राम कौन हैं? गोस्वामी तुलसीदास कृत श्रीरामचरितमानस की सम्पूर्ण कथा रचना की यह एक भूमिका ही नहीं, उनके सम्पूर्ण सृजन का मन्तव्य है। दर्शन, समाजशास्त्र, मानवविज्ञान आदि भी यदि राम को समझा नहीं पाए तो फिर उनका व्यक्तित्व मानव समाज के लिए सन्देहास्पद बन उठेगा और गोस्वामी तुलसीदास—राम कौन हैं? उन्हें समझाने के लिए मानस के प्रारम्भ तथा अन्त में शिव-पार्वती तथा गरुण-भुशुण्डि संवादों को रखते हैं। समझाने की प्रक्रिया में आध्यात्मिक चिन्तन है, लोक रचना तत्त्व है, सामाजिक विधान व्यवस्था है, कर्मकाण्ड है, भक्ति है और ये सभी मिलकर अन्ततया पार्वती एवं गरुण की ही प्रतीति के ही अन्तरात्मीय समझ एवं स्वानुभूति के ही विषय नहीं बन जाते हैं। राम लोक-मानस की अभिन्न आस्था के

रूप में दिखाई पड़ने लगते हैं। रामकथा क्या है? शिव द्वारा प्रतीति कराए जाने पर पार्वती की प्रतिक्रिया देखें—

मैं कृतकृत्य भइउँ अब तव प्रसाद विस्वेस।
उपजी राम भगति दृढ़ बीते सकल कलेस।।

ऐसी ही प्रतिक्रिया, गरुण की भी है—

आज धन्य मैं धन्य अति जद्यपि सब विधि हीन।
निज जन जानि राम मोहिं संत समागम दीन्ह।।

रामकथा कह लेने के बाद तुलसी की अपनी प्रतिक्रिया देखें—

जाकी कृपा लवलेश ते मतिमंद तुलसीदास हूँ।
पायो परम विश्राम राम समान प्रभु नाही कहूँ।।

ये सारी-की-सारी निष्कर्ष रूप में रखकर की गई मानस की प्रतिक्रियाएँ कि राम कौन हैं? उन्हें भलीभाँति जान लेने का प्रतिफल है, रामचरितमानस का समग्र पाठक समाज मानस पढ़कर इन्हीं प्रतिक्रियाओं में निरन्तर डूबता रहता है।

सम्पूर्ण रामचरितमानस के कथा स्थापत्य की संरचना किसी सामान्य महाकाव्य की चरित रचना नहीं है। तुलसी इन सबसे भिन्न मानस की कथा संरचना का एक मौलिक स्वरूप निर्मित करते हैं—प्रारम्भ से समापन तक यह कथा भूमिकाकथा, मन्तव्यकथा, प्रस्तावनाकथा, मूलकथा, पूरककथा, सहयोगीकथा आदि-आदि रूपों से जुड़ी सर्वथा अनेक से एक संरचनान्विति की ओर चलती रहती है। ये सम्पूर्ण कथाएँ सर्वत्र मूल—'राम कौन हैं?' के अंग के रूप में हैं और उनकी अपने पक्ष से पूर्ण जानकारी देकर ये उसी में विलयन कर जाती हैं। सम्पूर्ण देवलोक, ऋषिलोक, मानव जाति, पशु, पक्षी आदि-आदि अपनी-अपनी संरचना के द्वारा राम को मानस में तलाशते और प्राप्त करते हैं—

यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्री शम्भुनादुर्गमम्।
श्रीभद्राम भक्तिमनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम्।।
मत्वा तद्रघुनाथ नाम निरतं स्वान्तस्तमः शान्तये।
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्।।

राम कथा का प्रारम्भिक विकास

डा. कामिल बुल्के
पटना, बिहार

(क) राम कथा-सम्बन्धी गाथाएँ और आख्यान-काव्य

129. वैदिक साहित्य में आख्यान, इतिहास तथा पुराण मिलते हैं। ये ब्राह्मणों के अर्थवाद के एक आवश्यक अंग समझे जाते थे। प्राचीन काल से धार्मिक संस्कारों तथा यज्ञों के अवसर पर ऐतिहासिक तथा पौराणिक इन्हें सुनाते थे। अर्वाचीन वैदिक साहित्य में ये पाँचवें वेद कहे जाते हैं—

अथर्वणं चतुर्थम्, इतिहास-पुराणं पंचमम् (छान्दोग्य उप. 7, 1, 2)।

आख्यानों के गद्य के साथ जो पद्य दिया जाता था, उसे गाथा कहा गया है। प्रारम्भ से ही दानस्तुति-स्वरूप 'नारांशंसी' गाथाओं का उल्लेख मिलता है (दे. ऋग्वेद 10, 85, 6) और इसके विषय में कहा जाता है कि ये झूठी हैं ('गाथानृतं नारांशसी', दे. काठक संहिता 14, 5)। इस नारांशंसी गाथा-साहित्य के रचयिता तथा रक्षक राजदरबारों में रहने वाले सूत थे। इसके अतिरिक्त कुशीलव जन-साधारण में इन गीतों का प्रचार करते थे।

130. वाल्मीकि के पूर्व राम कथा सम्बन्धी गाथाएँ प्रचलित हो चुकी थीं। इसका प्रमाण हमें बौद्ध लिपिक में मिलता है। एक ओर रामकथा सम्बन्धी गाथाएँ **रामायण** पर नहीं निर्भर हो सकती हैं और दूसरी ओर बौद्ध गाथाओं में जो राम कथा सम्बन्धी सामग्री मिलती है, वह **रामायण** के आधार के लिए पर्याप्त नहीं है। अतः रामायण तथा राम कथा-विषयक बौद्ध गाथाएँ दोनों प्राचीन राम कथा सम्बन्धी आख्यान-काव्य पर निर्भर हैं। **दशरथ-जातक** की वर्तमान कथा में जो 'पौराणिक पण्डिता' शब्द आया है, इससे भी इस निर्णय की पुष्टि होती है। इसके अतिरिक्त हरिवंश के एक श्लोक में राम कथा के इस मूलस्रोत का उल्लेख मिलता है। राम कथा के अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन के पश्चात् इस प्रकार लिखा है—

गाथा अप्यत्र गायंति ये पुराणविदो जनाः।
रामे निबद्धतत्त्वार्था माहात्म्यं तस्य धीमतः॥

(1, अध्याय 41, 149)

इसमें अवश्य **रामायण** की ओर निर्देश देखा जा सकता है। फिर भी इसमें **रामायण** के पूर्व की प्राचीन गाथाओं का निर्देश देखना अधिक स्वाभाविक प्रतीत होता है। वाल्मीकि के दाक्षिणात्य पाठ में इसका उल्लेख किया गया है कि नारद से कथावस्तु सुनने के बाद वाल्मीकि ने इसका अन्वेषण किया—**व्यक्तमन्वेषते भूयो यद् वृत्तम्** (1, 3, 1)। अन्य पाठों (गौ. रा. 1, 3, 1 तथा प. रा. 1, 4, 1) में तत्सम्बन्धी श्लोक अधिक स्पष्ट है और लोक में प्रचलित सामग्री के संकलन की ओर निर्देश करता है—

श्रुत्वा पूर्वं काव्यबीजं देवर्षेर्नारदादृषिः
लोकादन्विष्य भूयश्च चरितं चरितव्रतः।

131. इस राम-सम्बन्धी गाथा-साहित्य की उत्पत्ति इक्ष्वाकु वंश में हुई थी। **रामायण** में लिखा है—

इक्ष्वाकूणामिदं तेषां राज्ञां वंशे महात्मनाम्।
महदुत्पन्नमाख्यानं रामायणमिति श्रुतम्।

(रा. 1, 5, 3)

राम इक्ष्वाकुवंशीय थे। अतः इक्ष्वाकुवंश के सूतों ने इनके विषय में गाथाएँ तथा व्याख्यान सुनाये होंगे। इसी तरह राम का चरित्र लेकर स्फुट आख्यान-काव्य का एक विस्तृत साहित्य बढ़ने लगा। **महाभारत** के द्रोणपर्व तथा शान्तिपर्व में जो संक्षिप्त रामचरित मिलता है, वह इस प्राचीन आख्यान-काव्य पर निर्भर प्रतीत होता है। साथ-साथ **महाभारत** में राम कथा की उपस्थिति इस बात को प्रमाणित करती है कि राम सम्बन्धी आख्यान-काव्य का प्रचार कोशल प्रदेश तक ही सीमित नहीं था, वरन् पश्चिम की ओर भी फैलने लगा था, जहाँ **महाभारत** की रचना हुई थी। पाली तिपिटक के रचनाकाल (चौथी शताब्दी ई. पू.) में इस राम कथा-सम्बन्धी आख्यान-काव्य का पर्याप्त प्रचार हो चुका था। दूसरी ओर विस्तृत वैदिक साहित्य में राम कथा सम्बन्धी गाथाओं का कहीं भी निर्देश नहीं मिलता। अतः वैदिक काल के बाद और चौथी श. ई. पू. के पहले, सम्भवतः छठी श. में इस राम कथा सम्बन्धी आख्यान-काव्य की उत्पत्ति हुई थी। वास्तव में इसका निश्चित रचनाकाल निर्धारित करने के लिए कोई आधार नहीं मिलता।

(ख) आदिरामायण की उत्पत्ति

132. जिस दिन किसी कवि ने राम कथा-विषयक स्फुट आख्यान-काव्य का संकलन कर उसे एक ही कथा-सूत्र में ग्रथित करने का प्रयास किया था, उस दिन रामायण उत्पन्न हुआ। वह कवि कौन था? प्राचीनतम् परम्परा वाल्मीकि को आदिकवि मानती है। युद्धकांड की फलश्रुति में लिखा है—

आदिकाव्यमिदं चार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम्।।105।।

(सर्ग 128)

कालिदास ने भी वाल्मीकि को आद्यकवि की उपाधि प्रदान की है—**कवेराद्यस्य शासनात्** (रघुवंश 15, 41)। वाल्मीकि द्वारा श्लोक की सृष्टि की कथा में इतना ऐतिहासिक सत्य अवश्य ही होगा कि वाल्मीकि ने इस छन्द को परिष्कृत किया है।

वास्तव में वाल्मीकि के पूर्व किसी कवि ने एक आदिरामायण की रचना की है, इसके लिए कोई तर्कसंगत प्रमाण नहीं मिलता। **बुद्धचरित** में राम कथा के प्रसंग में जो उपवन का उल्लेख हुआ है, इसके विषय में पूर्व में विचार किया गया है। पतंजलि के महाभाष्य में जिस प्राचीन गाथा का संस्कृत रूपान्तर मिलता है, इसका तात्कालिक प्रसंग राम कथा से सम्बन्ध नहीं रखता है और इसमें किसी प्राचीन **रामायण** का अवशेष देखना अनावश्यक है।

133. **आदिरामायण** के विषय में एक अन्य प्रश्न यह है कि इसमें राम के चरित्र का कितना अंश वर्णित था। पिछले अध्याय से स्पष्ट है कि **आदिरामायण** मे न तो उत्तरकाण्ड था, न बालकाण्ड और न अवतारवाद। कई विद्वान् और आगे बढ़कर मानते हैं कि राम, रावण तथा हनुमान के विषय में पहले स्वतंत्र आख्यान-काव्य

प्रचलित थे और इनके संयोग से **रामायण** की उत्पत्ति हुई है। सातवें अध्याय में यह दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि इस मत को सिद्ध करने के लिए कई समीचीन प्रमाण नहीं दिए जा सकते हैं। अतः **आदिरामायण** के लिखे जाने में जो भिन्न-भिन्न सोपान माने जाते हैं, इनके लिए भी कोई आधार नहीं मिलता। इस मत के अनुसार **रामायण** के विकास के प्रथम सोपान में राम को हिमालय प्रदेश में निर्वासित किया जाता है तथा सीता और लक्ष्मण उनके साथ जाते हैं। द्वितीय सोपान में वनवास का स्थान गोदावरी के तट पर माना जाता है और राम आदिवासियों के आक्रमणों से तपस्वियों की रक्षा करते हैं। तृतीय सोपान में दक्षिण के निवासियों को अधीन करने के आर्यों के प्रारम्भिक प्रयत्नों का वर्णन मिलता है। अन्तिम सोपान सिंहलद्वीप की जानकारी के कारण उत्पन्न हुआ। इसमें राम द्वारा सिंहल की विजययात्रा का वर्णन **रामायण** में जोड़ा गया है। राम के कारण दक्षिण अथवा लंका के निवासी आर्यों के अधीन हो गए थे, इसकी ओर **रामायण** में कोई निर्देश नहीं है। इसके अतिरिक्त लंका तथा सिंहल की अभिन्नता भी अत्यन्त संदिग्ध है।

इसी तरह **आदिरामायण** के न तो भिन्न-भिन्न मूलस्रोत और न इसके लिखने में उपर्युक्त सोपान मानने की कोई आवश्यकता प्रतीत होती है। अतः **आदिरामायण** राम-सम्बन्धी स्फुट आख्यान काव्य के आधार पर लिखा गया है और इसमें अयोध्याकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक की कथावस्तु विद्यमान थी। इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रचलित वाल्मीकिकृत **रामायण** के इन पाँच काण्डों में **आदिरामायण** का मूल रूप सुरक्षित है। इनमें भी बहुत से प्रक्षेप तथा परस्पर विरोधी बातें पायी जाती हैं। प्रक्षेप जोड़ने की प्रवृत्ति प्रारम्भ ही से विद्यमान थी, यह **रामायण** के भिन्न-भिन्न काण्डों की तुलना से स्पष्ट है और शताब्दियों तक बनी रही (यह मध्यकालीन टीकाकारों के साक्ष्य से ज्ञात है)। निबन्ध के चतुर्थ भाग में प्रत्येक काण्ड के विकास और प्रक्षिप्त सामग्री पर विचार किया जायेगा।

आदिरामायण के विस्तार के विषय में **अभिधर्म महाविभाषा** में कहा जाता है कि **रामायण** में 12000 श्लोक मिलते हैं। अतः **आदिरामायण** के विकास में एक ऐसा समय हुआ, जब इसका विस्तार आजकल प्रचलित रामायण का आधा था।

राय कृष्णदास ने रामायण के प्रक्षेपों का अध्ययन करने के बाद रामायण के विकास के ये तीन सोपान निर्धारित किये हैं—(1) 3000 श्लोक वाला आदिरामायण अर्थात् वाल्मीकि रचित रामायण का सर्वप्रथम रूप; (2) 6000 श्लोकों वाला आर्ष रामायण, जिसमें बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड की कथाएँ नहीं थीं; (3) काव्य रामायण अर्थात् रामायण का विद्यमान 24000 श्लोक वाला संस्करण। यद्यपि यह वर्गीकरण रामायण के क्रमिक विकास पर आधारित है, फिर भी वाल्मीकि द्वारा रचित काव्य की श्लोक-संख्या निर्धारित करना असम्भव-सा प्रतीत होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यह संख्या अपेक्षाकृत कम ही रही होगी।

134. **आदिरामायण** क्षत्रियों की सम्पत्ति थी। इसमें आदर्श क्षत्रिय सत्यसंघ राम की महिमा प्रतिपादित की गई थी। मोक्ष तथा वैराग्य के स्थान पर आदर्श अन्तगति स्वर्ग माना जाता था और इसे प्राप्त करने के लिए ब्राह्मणों की सहायता की आवश्यकता नहीं होती थी। बाद में सारे काव्य को ब्राह्मण ढाँचे में ढाल कर सर्वथा नवीन रूप दिया गया है। यह डॉ. रूबेन का मत है। इसके लिए कोई समीचीन प्रमाण नहीं दिया गया है। डॉ. रूबेन के उदाहरण (ऋष्यश्रृंग तथा विश्वामित्र की कथा, उत्तरकाण्ड के अश्वमेध) स्पष्टतया प्रक्षेप हैं। इनसे इतना ही ज्ञात होता है कि **रामायण** के अर्वाचीन प्रक्षेपों में ब्राह्मणों का प्रभाव स्पष्ट है। फिर भी डॉ. रूबेन के इस मत

में कुछ तत्त्व है। राम कथा सम्बन्धी आख्यान-काव्य क्षत्रिय इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुआ और इसका बहुत काल तक इन क्षत्रियों के दरबारों तथा जनता में भी प्रचार रहा था।

वाल्मीकि ने उस स्फुट आख्यान-काव्य को एक ही प्रबन्ध-काव्य में संकलित करके लगभग 300 ई. पू. में **आदिरामायण** की रचना की है। यह रचना बहुत कुछ प्राचीन आख्यान-काव्य से मिलती-जुलती रही होगी। बाद में प्रक्षेपों की भावधारा स्पष्टतया भिन्न है।

135. **आदिरामायण** की भाषा के विषय में भी सन्देह किया गया है। मूल रचना की भाषा प्राकृत रही होगी। बाद में पहली शताब्दी ई. से इसका संस्कृत रूपान्तर चल पड़ा। डॉ. याकोबी ने अकाट्य तर्कों से इस मत का खण्डन किया है। आजकल कोई भी इस मत का प्रतिपादन नहीं करता। डॉ. याकोबी के मुख्य तर्क इस प्रकार हैं—

(अ) भारत में प्राकृत **मूलरामायण** तथा इसके संस्कृत रूपान्तर के विषय में कोई उल्लेख नहीं मिलता।

(आ) यदि केवल पहली श. ई. में **रामायण** का संस्कृत में अनुवाद किया गया था, तो आर्ष प्रयोग कैसे सम्भव होते?

(इ) प्राकृत साहित्य की मुख्य विशेषता है—शृंगार तथा अद्भुत रस का बाहुल्य (दे. कथासरित्सागर)। इसके अतिरिक्त पाली तथा प्राकृत की शैली बहुत अपरिष्कृत है। अतः प्राकृत-साहित्य उपर्युक्त कारणों से संस्कृत काव्य का आधार तथा आदर्श होने के नितान्त अनुपयुक्त सिद्ध होता है।

136. आठवें अध्याय में बालकाण्ड को प्रक्षिप्त सिद्ध किया गया है। डॉ. याकोबी के अनुसार **आदिरामायण** का प्रारम्भ बालकाण्ड के निम्नलिखित श्लोकों में सुरक्षित है—

रामायण की स्तुति	सर्ग 5, 1-4
कोशल तथा अयोध्या की स्तुति	5, 5-6
दशरथ की स्तुति	5, 9; 6, 2-4
दशरथ के पुत्रों का उल्लेख	18, 16. 21 (उत्तरार्ध, 22)
पुत्रों की स्तुति	18, 25 (अथवा अयोध्या 1, 5)
राम की श्रेष्ठता	18, 24. 26. 12 (अथवा अयोध्या 1, 6, 8)

इस भूमिका के बाद काव्य की मुख्य कथावस्तु का वर्णन प्रारम्भ होता था। डॉ. याकोबी का यह अनुमान निराधार नहीं था। पश्चिमोत्तरीय पाठ के चौदहवें सर्ग की कथावस्तु इस प्रकार है—दशरथ तथा उनकी पत्नियों का परिचय; उनके चार पुत्रों का जन्म, शिक्षा तथा वयस्क हो जाने पर विवाह; चारों भाइयों का प्रेम; ननिहाल से बुलावा आने पर भरत का प्रस्थान; राम तथा सीता का बहुत समय तक विहार। सर्ग का अन्तिम श्लोक (33) बालकाण्ड के अन्तिम श्लोक से मिलता-जुलता है (प. रा. 1, 72, 16)। अतः इसके बाद अयोध्याकाण्ड प्रारम्भ होता था।

यह सर्ग अपने में पूर्ण है। इसका पिछले अथवा अगले सर्गों से कोई सम्बन्ध नहीं है। सर्ग 9 में अश्वमेध तथा सर्ग 10-13 में पुत्रेष्टि यज्ञ का वर्णन है। सर्ग 14 में पुनः कथा का प्रारम्भ मिलता है और दशरथ तथा उनकी पत्नियों का परिचय दिया जाता है। सर्ग 15 में वानरों की उत्पत्ति और सर्ग 16 में चारों भाइयों का जन्म वर्णित है।

यह सब ध्यान में रख कर इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि यह (सर्ग 14) वाल्मीकि रामायण का कोई प्राचीन आमुख है (दे. रायकृष्णदास, आर्ष रामायण का आमुख, ना. प्र., प. वर्ष 67, अंक 3, पृ. 142)।

(ग) आदिरामायण का विकास

(1) प्रक्षेप

137. **आदिरामायण** का विकास समझने के लिए उसके प्रचार की रीति को ध्यान में रखना परमावश्यक है। बालकाण्ड (सर्ग 4) तथा उत्तरकाण्ड में लिखा है कि वाल्मीकि ने अपने शिष्यों को **रामायण** सिखला कर उसे राजाओं, ऋषियों तथा जनसाधारण को सुनाने का आदेश दिया—

कृत्स्नं रामायणं काव्यं गायतां परया मुदा॥4॥
ऋषिवाटेषु पुण्येषु ब्राह्मणावसथेषु च।
रथ्यासु राजमार्गेषु पार्थिवानां गृहेषु च॥5॥

(उत्तरकाण्ड 93)

इससे ज्ञात होता है कि रामायण मौखिक रूप से प्रचलित था। कुशीलव सारे देश में उसे गाकर सुनाते थे और इस प्रकार अपनी जीविका चलाते थे। वे काव्योपजीवी ही थे; रामायण उनको कण्ठस्थ था और वे उसे अपने पुत्रों को सिखलाते थे। रामायण का कोई ग्रन्थ प्रचलित नहीं था और प्राचीन फलश्रुति श्रवणफल-स्तुति ही है—

श्रुत्वा रामायणमिदं दीर्घमायुश्च विन्दति।

(6, 128, 109)

बाद में रामायण के पढ़ने तथा लिखने का भी उल्लेख मिलता है—

रामायणमिदं कृत्स्नं शृण्वतः पठतः सदा॥116॥
भक्त्या रामस्य ये चेमां संहितामृषिणा कृताम्।
ये लिखन्तीह च नरास्तेषां वासस्त्रिविष्टपे॥120॥

(6, 128)

लेकिन फलश्रुति का यह अन्तिम अंश गौडीय पाठ में नहीं मिलता। टीकाकार कतक ने भी उसे प्रक्षिप्त माना है।

कुशीलव रामायण को गाते-गाते अपने श्रोताओं की रुचि का भी ध्यान रखते होंगे। जिन गायकों में काव्यकौशल था वे लोकप्रिय अंशों को बढ़ाते थे और इसी तरह **आदिरामायण** का कलेवर बढ़ने लगा।

138. चतुर्थ भाग में इन प्रक्षेपों का निरूपण किया जायेगा, अतः यहाँ इनकी सामान्य विशेषताओं का उल्लेख पर्याप्त है।

(1) बहुत से प्रक्षेप पुनरुक्ति मात्र से उत्पन्न हुए हैं। एक ही घटना का वर्णन दुहराया जाता है अथवा मूल घटना के समान अन्य घटनाओं की कल्पना कर ली जाती है। उदाहरणार्थ—

रावण का मारीच के यहाँ जाना (3, सर्ग 31 और 35)।

रावण के गुप्तचरों का वृत्तान्त (6, 20 और 25-30)।

सीता की गंगा तथा यमुना से प्रार्थना (2, 52 और 55)।

आश्रमों में आगमन। अत्रि, वाल्मीकि, शरभंग, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य के आश्रमों का उल्लेख **आदिरामायण** में नहीं मिलता था।

विराध, अयोमुखी आदि राक्षसों का वध।

राम के मायामय सिर का वृत्तान्त (6, 31) मायामयी सीता-वध के वृत्तान्त (6, 81) का अनुकरण मात्र है।

(2) अद्भुत रस की सामग्री—
लंकादहन, जिसमें हास्य रस का भी समावेश है।
ओषधिपर्वत का ले आना (इसका दो बार वर्णन होता है; दे. अनु. 564)।
अग्निपरीक्षा।

(3) करुणात्मक स्थलों की पुनरुक्ति—
विलाप (दे. अरण्यकाण्ड, सर्ग 60, 62 और 63)।
हनुमान का सीता से विदा लेना (5, 58-60)।
हनुमान द्वारा सीता से भेंट का वर्णन (5, 66-68)।

(4) काव्यात्मक तथा अलंकारपूर्ण वर्णन—
गंगा का वर्णन (2, 50)।
वर्षा ऋतु का वर्णन (4, 28)।
शरद् ऋतु का वर्णन (4, 30)।

(5) रामायण को ज्ञान का भण्डार बनाने की प्रवृत्ति—
नीति का उपदेश (2, 100)
जावालि का लोकायत दर्शन प्रस्तुत करना (2, 108)।
दिग्वर्णन (4, 40-43)।

(6) आदर्शवाद का प्रभाव—
राम का वालि-वध को न्यायसंगत सिद्ध करने का प्रयत्न (4, 17-18)।

(2) बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड

139. **आदिरामायण** की कथावस्तु न केवल बीच में प्रक्षेपों के कारण बढ़ने लगी वरन् राम कौन थे, सीता कौन थीं, इनका विवाह कब और कैसे हुआ आदि नितान्त स्वाभाविक प्रश्न थे। जनसाधारण की इस जिज्ञासा को सन्तुष्ट करने के लिए बालकाण्ड की रचना की गई।

यह बाद की रचना ही है, अतः इसमें एक नवीन वातावरण का आ जाना आश्चर्यजनक नहीं है। इसकी शिथिल शैली पर आदिकवि की छाप नहीं है। राम के बालचरित के अतिरिक्त उसकी मुख्य नवीन सामग्री पौराणिक कथाएँ (जिनमें ब्राह्मणों का प्रभाव स्पष्ट है) और अवतारवाद की भावना (दे. पुत्रेष्टि-यज्ञ तथा परशुराम का वृत्तान्त) है। आठवें अध्याय में दिखलाया गया है कि अवतारवाद मूल बालकाण्ड का अंश नहीं हो सकता।

उत्तरकाण्ड में यह अवतारवाद अत्यन्त व्यापक है। इससे स्पष्ट है कि यह काण्ड बालकाण्ड के बहुत बाद रचा गया है। उत्तरकाण्ड में रामायण के प्रतिनायक रावण का पूर्वचरित संकलित है और इसके बाद राम का उत्तरचरित दिया जाता है—सीता-त्याग और सीता का भूमि-प्रवेश, राम का अश्वमेध तथा स्वर्गारोहण। इस काण्ड में भी बहुत-सी पौराणिक कथाएँ उद्धृत हैं और ब्राह्मणों की श्रेष्ठता बहुत से स्थलों पर प्रतिपादित है (दे. शम्बूक वध, अश्वमेध)। चतुर्थ भाग में बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड, दोनों के विकास की रूपरेखा अंकित करने का प्रयत्न किया जायेगा।

यहाँ स्मरण दिलाना अनुचित नहीं होगा कि राम कथा के विकास में **आदिरामायण** के प्रक्षेप अर्थात् बालकाण्ड, उत्तरकाण्ड, अवतारवाद मूल **आदिरामायण** के प्रामाणिक अंशों से कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। द्वितीय अध्याय में दिखलाया गया है कि दूसरी शताब्दी ई. से लेकर **रामायण** अपना प्रचलित रूप धारण कर चुका था और उस समय से लेकर कवियों तथा जनसाधारण ने प्रामाणिक तथा प्रक्षिप्त सामग्री में कोई अन्तर नहीं माना है। इस सामग्री की सबसे महत्त्वपूर्ण भावना अवतारवाद ही है। इसकी उत्पत्ति पर किंचित् प्रकाश डालना अपेक्षित है।

(3) अवतारवाद

140. अवतारवाद की भावना हमें पहले-पहल **शतपथ ब्राह्मण** में मिलती है। प्रारम्भ में विष्णु की अपेक्षा प्रजापति को इस सम्बन्ध में अधिक महत्त्व दिया जाता था। **शतपथ ब्राह्मण** के अनुसार प्रजापति ने ही मत्स्य (दे. 1, 8, 1, 1), कूर्म (7, 5, 1, 5; 14, 1, 2, 11) तथा वाराह (14, 1, 2, 11) का अवतार लिया था। प्रजापति के **वाराह** का रूप धारण करने की तथा तैत्तिरीय संहिता (7, 1, 5, 1), तैत्तिरीय ब्राह्मण (1, 1, 3, 6), तैत्तिरीय आरण्यक (10, 1, 8) तथा काठक संहिता (8, 1) में भी प्रारम्भिक रूप में विद्यमान है। **रामायण** के दाक्षिणात्य पाठ में इसका उल्लेख है—

ततः समभवद् ब्रह्मा स्वयंभूर्दैवतैः सह॥3॥
स वराहस्ततो भूत्वा प्रोज्जहार वसुंधराम्।

(अयोध्या काण्ड, सर्ग 110)

अन्य दो पाठों में इस स्थल पर परवर्ती भावना के अनुसार विष्णु का नाम लिया गया है (दे. गौ. रा. 2, 119 और प. रा. 2, 113)।

शतपथ ब्राह्मण के अतिरिक्त तैत्तिरीय आरण्यक में भी कूर्म को प्रजापति का अवतार माना गया है (दे. 1, 23, 3)। **महाभारत** में समुद्र-मंथन के प्रसंग में कूर्मराज का उल्लेख तो हुआ है, किन्तु इसमें कहीं भी किसी देवता की ओर निर्देश नहीं मिलता। सुरासुर कूर्मराज से निवेदन करते हैं कि वे मन्दराचल के आधार बनने की कृपा करें—

ऊचुश्च कूर्मराजानमकूपारं सुरासुतः।
गिरेरधिष्ठानमस्य भवान्भवितुमर्हति॥10॥

(आदिपर्व, अध्याय 16)

रामायण के उदीच्य पाठ में समुद्र-मंथन के वृत्तान्त में कूर्म का उल्लेख नहीं है (दे. गौ. रा. 1, 46; प. रा. 1, 41) किन्तु दाक्षिणात्य पाठ के एक प्रक्षेप में इस अवसर पर विष्णु के वाराह अवतार लेने की कथा मिलती है (दे. रा. 1, 45, 27-32)।

मत्स्य अवतार तथा प्रजापति का सम्बन्ध महाभारत में उल्लिखित है—

अहं प्रजापतिर्ब्रह्मा मत्परं नाधिगम्यते।
मत्स्यरूपेण यूयं च मयास्मान्मोक्षिता भयात्।।48।।

(आरण्यक पर्व, अध्याय 185)

विष्णुपुराण में भी मत्स्य, कूर्म तथा वाराह तीनों को प्रजापति का अवतार माना गया है—

तोयान्तःस्थां महीं ज्ञात्वा जगत्येकार्णवीकृते।
अनुमानत्तदुद्धारं कर्तुकामः प्रजापतिः।।7।।
अकरोत्स्वतनूमन्यां कल्पादिषु यथा पुरा।
मत्स्यकूर्मादिकां तद्वद्वाराहं वपुरास्थिता।।8।।

(1, अध्याय 4)

किन्तु विष्णुपुराण में विष्णु तथा ब्रह्मस्वरूप नारायण की अभिन्नता का प्रतिपादन किया जाता है; अतः इसी चतुर्थ अध्याय में विष्णु के रूप में वाराह की स्तुति की गयी है तथा एक अन्य अध्याय में कूर्म को भी विष्णु का ही अवतार माना गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मत्स्य, कूर्म तथा वाराह अवतार प्रारम्भ में प्रजापति से संम्बन्ध रखते थे, किन्तु बाद में विष्णु का महत्त्व बढ़ जाने के कारण तीनों विष्णु के ही अवतार माने जाने लगे। महाभारत के नारायणीय उपाख्यान (दे. 12, 326, 72 तथा 12, 337, 36) तथा हरिवंशपुराण (दे. 1, 41) में वाराह तथा विष्णु का सम्बन्ध मान लिया गया है। आगे चलकर तीनों का नाम लेकर एक-एक महापुराण की सृष्टि हुई, जिसमें विष्णु से उनकी अभिन्नता प्रतिपादित है (दे. मत्स्य, कूर्म तथा वाराहपुराण)।

141. अन्य मुख्य अवतारों के प्राचीनतम् उल्लेख इस प्रकार हैं। **वामनावतार** तथा **नृसिंह** अवतार प्रारम्भ से ही विष्णु से ही सम्बन्ध रखते हैं। **वामनावतार** का उल्लेख तैत्तिरीय संहिता (2, 1, 3, 1), शतपथ ब्राह्मण (1, 2, 5, 5), तैत्तिरीय ब्राह्मण (1, 7, 17) और ऐतरेय ब्राह्मण (6, 3, 7) में हुआ है। यह अवतार ऋग्वेद की एक कथा से विकसित माना जाता है (दे. ऋग्वेद 1, 22 और शतपथ ब्राह्मण 1, 2, 5, 1)। नारायणीय उपाख्यान (दे. महाभारत 12, 326, 75) तथा हरिवंशपुराण (दे. 1, 41) में इसका विष्णु के अन्य अवतारों के साथ उल्लेख हुआ है। **नृसिंहावतार** की कथा पहले-पहल तैत्तिरीय आरण्यक के परिशिष्ट (10, 1, 6) में मिलती है। नारायणीय उपाख्यान (दे. 12, 326, 73 और 337, 36) तथा हरिवंशपुराण (दे. 1, 41) में इसका विष्णु के अन्य अवतारों के साथ उल्लेख हुआ है। **नृसिंहावतार** की कथा पहले-पहल तैत्तिरीय आरण्यक के परिशिष्ट (10, 1, 6) में मिलती है। नारायणीय उपाख्यान (दे. 12, 326, 73 और 337, 36) तथा हरिवंशपुराण (दे. 1, 41) में इसका उल्लेख है तथा विष्णुपुराण में नृसिंह की कथा वर्णित है (दे. 1, 16)।

परशुराम-विषयक प्रारम्भिक कथाओं में इनके अवतार होने का निर्देश नहीं मिलता (उदा. दे. महाभारत 3, 115-117), किन्तु नारायणीय उपाख्यान (दे. 12, 326, 77), हरिवंशपुराण (1, 41, 112-120) तथा विष्णुपुराण (1, 9, 143) में उनको विष्णु का अवतार माना गया है।

142. प्रस्तुत सिंहावलोकन का निष्कर्ष यह है कि ब्राह्मणों में तथा अन्य प्राचीन साहित्य में अवतारवाद विद्यमान है, किन्तु उन ग्रन्थों के रचनाकाल में न तो अवतारों की विशेष पूजा की जाती थी और न इसमें विष्णु का प्राधान्य था। **कृष्णावतार** के साथ-साथ अवतारवाद के विकास में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन प्रारम्भ हुआ—उस समय से लेकर अवतारवाद भक्तिभाव से ओतप्रोत होने लगा।

वासुदेव कृष्ण भागवतों के इष्टदेव थे। प्रारम्भ में उनका तथा विष्णु का कोई भी सम्बन्ध नहीं था। डॉ. हेमचन्द्र राय चौधरी का अनुमान है कि सम्भवतः तीसरी शताब्दी ई. पू. से वासुदेव कृष्ण और विष्णु की अभिन्नता की भावना उत्पन्न हुई थी। अवतारवाद के इस विकास का कारण प्रायः बौद्ध धर्म से जोड़ा जाता है। बौद्ध धर्म तथा भागवत सम्प्रदाय का भक्तिमार्ग, दोनों समान रूप से ब्राह्मण साहित्य के कर्मकाण्ड तथा यज्ञ-प्रधान धर्म की प्रतिक्रिया के रूप में उत्पन्न और विकसित हुए। इसके फलस्वरूप धर्म के क्षेत्र में ब्राह्मणों का एकाधिकार लुप्त हो गया था। बौद्ध धर्म का अधिकाधिक प्रसार देखकर ब्राह्मणों ने भागवतों को अपनी ओर आकर्षित करने के उद्देश्य से भागवतों के इष्टदेव वासुदेव कृष्ण को विष्णु-नारायण का अवतार मान लिया है।

इससे अवतारवाद को बहुत प्रोत्साहन मिला। साथ-साथ विष्णु का भी महत्त्व बढ़ने लगा। इस तरह अवतारवाद की सारी भावना धीरे-धीरे विष्णु-नारायण में केन्द्रीभूत होने लगी और वैदिक साहित्य के अन्य अवतारों के कार्य विष्णु में ही आरोपित किए गए।

143. एक ओर तो अवतारवाद की भावना फैलती जा रही थी; दूसरी ओर कई शताब्दियों से **राम का आदर्श** चरित्र भारतीय जनता के सामने रहा था। रामायण की लोकप्रियता के साथ-साथ राम का महत्त्व भी बढ़ता रहा। उनकी वीरता के वर्णन में अलौकिकता की मात्रा भी बढ़ने लगी। रावण पाप और दुष्टता का प्रतीक बन गया और राम पुण्य और सदाचरण का। अतः इस विकास की स्वाभाविक परिणति यह हुई कि कृष्ण की भाँति राम भी विष्णु के अवतार माने जाने लगे। राम तथा विष्णु की अभिन्नता की धारणा कब उत्पन्न हुई, इसका ठीक समय निर्धारित करना असम्भव है। फिर भी अवतारवाद उत्तरकाण्ड में इतना व्याप्त है कि इसे उत्तरकाण्ड की अधिकांश सामग्री के पूर्व का मानना चाहिए। अतः बहुत सम्भव है कि पहली शताब्दी ई. पू. से ही रामावतार की भावना प्रचलित होने लगी थी। रामायण के प्रक्षेपों के अतिरिक्त, महाभारत तथा वायु, ब्रह्माण्ड, विष्णु, मत्स्य, हरिवंश आदि प्राचीनतम् पुराणों में अवतारों की तालिका में राम दाशरथि का भी नाम आया है।

अवतारवाद के विकास में छठी या सातवीं शताब्दी ई. से महात्मा बुद्ध भी विष्णु के अवतार माने जाने लगे।[4] प्राचीन साहित्य तथा पुराणों में 800 ई. तक अवतारों की संख्या तथा नामों में भी एकरूपता नहीं मिलती। **नारायणीय उपाख्यान** में विष्णु के 6 अवतारों की सूची इस प्रकार है—वाराह, नृसिंह, वामन, भार्गव राम, दाशरथि राम और वासुदेव कृष्ण (दे. महाभारत 12, 326, 72-92)। इसी उपाख्यान के एक अन्य स्थल पर केवल चार अवतारों का उल्लेख है अर्थात् वाराह, नृसिंह, वामन तथा मत्स्यावतार (दे. 337, 36)। **विष्णुपुराण** के एक स्थल पर प्रजापति के मत्स्य, कूर्म और वाराह अवतारों का उल्लेख है (दे. 1, 4, 7-8); एक अन्य स्थल पर आदित्य, भार्गव, राम तथा कृष्ण नामक विष्णु के चार अवतारों की सूची दी गयी है

(दे. 1, 9, 143-144)। इसके अतिरिक्त उस पुराण में वाराह (1, 4, 12 आदि), कूर्म (1, 9, 88), मोहिनी (1, 9, 109), नृसिंह (1, 16), राम दाशरथि (4, 4) तथा कृष्ण (भाग 5) सब का सम्बन्ध विष्णु से ही माना गया है तथा उनकी कथाओं का न्यूनाधिक विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। **हरिवंशपुराण** में चार बार विष्णु के अवतारों की सूची मिलती है, किन्तु निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है कि उसमें एकरूपता का अभाव है—

(1) पौष्कर, वाराह, नृसिंह, वामन, दत्तात्रेय, परशुराम, राम, कृष्ण, वेदव्यास, कल्कि (दे. 1, 41)।

(2) वामन, नृसिंह, परशुराम, वाराह, मोहिनी, राम, कृष्ण (दे. 2, 22)।

(3) वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, कृष्ण (दे. 2, 48)।

(4) वाराह, नृसिंह, वामन, राम, कृष्ण (दे. 2, 71)।

भागवतपुराण में अवतारों की सूचियों में दो बार बाईस और एक बार इक्कीस अवतारों के नाम गिनाए गए हैं, किन्तु वहाँ भी न तो नामों में एकरूपता मिलती है और न क्रम में (दे. 1, 3; 2, 7; 11, 4)।

विष्णु के दस मुख्य अवतारों की भावना तथा उनके निश्चित क्रम की परम्परा (मत्स्य से कल्कि तक) 800 ई. से ही सर्वमान्य होने लगी।

(घ) राम कथा का व्यापक प्रसार

राम कथा-विषयक गाथाओं से लेकर वाल्मीकि रामायण के प्रचलित रूप तक राम कथा के प्रारम्भिक विकास की रूपरेखा अंकित करने का प्रयत्न प्रस्तुत अध्याय में किया गया है। यह उत्तरोत्तर विकास ही राम कथा की लोकप्रियता का प्रमाण है। निबन्ध के अन्तिम अध्याय में इसके समस्त विकास के सिंहावलोकन के साथ-साथ राम कथा की सामान्य विशेषताओं पर भी विचार किया जायेगा। यहाँ राम कथा के प्रारम्भिक व्यापक प्रसार की ओर संकेत करना है।

महाभारत की सामग्री से स्पष्ट है कि राम कथा न केवल कौशल प्रदेश में प्रचलित थी, वरन् इसका प्रचार पश्चिम की ओर भी हो चुका था। हरिवंश से ज्ञात होता है कि रामायण की कथा को लेकर प्राचीन काल से नाटकों का अभिनय भी हुआ करता था—

गौडीय पाठ इससे अधिक संक्षिप्त है—

यास्याम्यहमयं रामो यावन्मां नाभिभाषते।
कृतार्थमेनमचिराद् द्रष्टास्म्यहमरिंदमम्॥

(गौ. रा. 3, 9, 17)

इस वृत्तान्त से जो ध्वनि निकलती है, वह विष्णु-नारायण-अक्षर ब्रह्म के अवतार राम (6, 117) की भावना से कितनी दूर है।

रामचरितमानस में तापस प्रसंग : तापस के पूर्व जन्म की कथा

उदय शंकर दुबे
मिर्जापुर (उ.प्र.)

रामचरितमानस का 'तापस प्रसंग' एक ऐसा विवादास्पद प्रसंग है, जिसके सम्बन्ध में विद्वानों का ऐकमत्य नहीं है। कुछ लोग इस प्रसंग को स्वयं गोस्वामी तुलसीदास कृत तथा कुछ लोग क्षेपक मानते हैं।[1] यमुना के दक्षिणी तट पर श्रीराम-सीता-लक्ष्मण-निषाद के पहुँचते ही तीरवासी उनके दर्शन की कामना से अपने गृह कार्य को छोड़कर दौड़ पड़ते हैं। श्रीराम को तापस वेश में देखकर सब दुःखी हो जाते हैं। इतने में ही वहाँ एक तापस आ जाता है—**'तेहिं अवसर एक तापसु आया।'** कथा का प्रवाह इसी अर्द्धाली से ठहरकर एक नया मोड़ ले लेता है। तापस था कौन, जो एकाएक बीच में आ पड़ता है और कुछ क्षण के बाद पुनः उसका कोई वृत्तान्त ज्ञात नहीं होता। इस पर रामचरितमानस के मर्मज्ञ विद्वानों ने अपना अलग-अलग अभिमत दिया है।[2] तापस और तापस प्रसंग दोनों को लेकर विद्वानों में आज तक मतैक्य का अभाव है। इस विषय में हम मानस के अध्येता और सम्पादक मानस मराल श्री शंभु नारायण चौबे जी के मत का उल्लेख करना उचित समझते हैं, उन्होंने इस प्रसंग पर विस्तारपूर्वक विचार किया है।[3] चौबे जी ने इस प्रसंग को प्रक्षिप्त मानने के पक्ष में निम्नांकित तर्क दिये हैं—

1. यह प्रकरण अप्रासंगिक और असंगत है।
2. किसी पौराणिक कथा से इसकी पुष्टि नहीं होती।
3. सम्पूर्ण रामचरितमानस की ग्रन्थ संख्या मिलाते समय इसको ग्रहण करने से प्रामाणिक प्रतियों की ग्रन्थ संख्या में अन्तर पड़ता है।[4]

यहीं पर चौबे जी ने रामचरितमानस के अंग्रेजी अनुवादक एफ. एस. ग्राउस महोदय के मत का भी उल्लेख कर दिया है—"या तो इसे स्वयं गोस्वामी जी ने बाद को जोड़ा हो या पहले लिखा हो बाद को काट दिया हो अथवा गोस्वामी जी के बाद किसी भक्त ने क्षेपक रूप में इसकी रचना की हो।"[5] ग्राउस ने अपने द्वारा अनूदित रामचरितमानस में इस प्रसंग को छोड़ दिया है और इसे न ग्रहण करने का कारण पाद टिप्पणी में दिया है।[6] श्री शंभु नारायण चौबे ने तापस प्रसंग पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने के उपरान्त निष्कर्ष देते हुए लिखा है कि—"इस 'तापस प्रकरण' के अप्रासंगिक होने में तो कोई सन्देह नहीं... यह गोस्वामी जी के हाथ का लेख भी नहीं। अतः इस अंश को निःसंकोच निकाल सकते हैं।"[7] इतना होते हुए भी उनके द्वारा सम्पादित मानस में तापस प्रसंग

को स्थान प्राप्त है।[8] तापस प्रसंग के सम्बन्ध में डॉ. माता प्रसाद गुप्त का कथन है कि "यहाँ पर तापस का अकस्मात आ जाना और वहाँ से विदा न होना, किन्तु भगवान् के दर्शन में ध्यानमग्न हो जाना और उसी दशा में उसको छोड़कर कवि का अपने इस प्रौढ़तम अयोध्याकाण्ड में एक गम्भीर प्रसंग को अस्पष्ट रहने देना साधारण बात नहीं है। यह अंश अब तक उपलब्ध सभी प्राचीन प्रतियों में है। इससे इसे क्षेपक कहने से भी काम नहीं चल सकता।"[9] प्रसंग की अस्पष्टता के बाद भी चूँकि तापस प्रकरण मानस की प्राचीन प्रतियों में मिलता है। इसलिये श्री गुप्त जी ने स्व-सम्पादित मानस में इस प्रसंग को रखा है।[10] आचार्य सीताराम चतुर्वेदी जी ने राम कथा की संगति बैठाने की दृष्टि से तापस प्रसंग के क्रम को पलट दिया है। उनका विचार है कि साँची के पृष्ठ के उलट जाने से पंक्तियाँ नीचे-ऊपर हो गईं।"[11] श्री चतुर्वेदी जी ने तापस प्रसंग को इस प्रकार रखा है—

करि प्रनामु रिषि आयसु पाई। प्रमुदित हृदय चले रघुराई॥

इसके आगे का प्रसंग इस प्रकार उलटकर पढ़कर देखिये—

तेहि अवसर एक तापस आवा। तेज पुंज लघु वयस सुहावा॥
कवि अलखित गति वेणु विरागी। मन क्रम वचन राम अनुरागी॥

दोहा

सजल नयन तन पुलकि निज इष्ट देउ पहिचानि॥
परेउ दंड जिमि धरनितल दसा न जाइ बखानि॥

चौपाई

राम सप्रेम पुलकि उर लावा। परम रंक जनु पारस पावा॥
मनहुँ प्रेम परमारथ दोऊ। मिलत धरें तन कह सब कोऊ॥
बहुरि लखन पायन्ह सोइ लागा। लीन्ह उठाइ उमगि अनुरागा।
पुनि सिय चरन-धूरि धरि सीसा। जननि जानि सिसु-दीन्ह असीसा॥
कीन्ह निषाद दण्डवत तेही। मिलेउ मुदित लखि राम सनेही॥
पिअत नयन पुट रूपु पियूषा। मुदित सुअसन पाइ जिमि भूखा॥
ग्राम निकट जब निकसति जाईं। देखहिं दरसु नारि नर धाई॥
होहिं अनाथ जनम फल पाई। फिरहिं दुखित मनु संग पठाई॥

दोहा

विदा किए बटु विनय करि फिरे पाइ मन काम॥
उतरि नहाए जमुन जल जो सरीर सम स्याम॥

चौपाई

सुनत तीर बासी नर नारी। धाए निज-निज काज बिसारी।
लखन राम-सिय सुन्दरताई। देखि करहिं निज भाग्य बड़ाई॥

अति लालसा बसहि मन माहीं। नाउँ गाउँ बूझत सकुचाहीं।।
जे तिन्ह महुँ बय बिरिध समाने। तिन्ह करि जुगुति राम पहिचाने।।
सकल कथा तिन्ह सबहि सुनाई। बनहि चले पितु आयसु पाई।।
सुनि सविषाद सकल पछिताहीं। रानी रायँ कीन्ह भल नाहीं।।

इसके आगे प्रसंग मिलाइए—

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठए वन बालक ऐसे।।

क्या इस क्रम से कथा की संगति ठीक बैठ जाती है।''[12] यह आचार्य जी की अपनी सूझ है। आचार्य जी का यह तर्क कि साँची के पृष्ठ उलट जाने से कथा में असंगति आ गई युक्ति संगत नहीं जँचता, क्योंकि एक प्रति में मान लिया जाय कि पृष्ठ उलट गया, अन्य प्रतियों के साथ ऐसा होना सम्भव नहीं फिर कथा की संगति मात्र बैठा देने से तापस प्रकरण की समस्या का समाधान नहीं होता।

रामचरितमानस के अध्येताओं के विचारार्थ अब तक अज्ञात तापस की कथा को हम प्रस्तुत कर रहे हैं। मानस की एक अर्वाचीन हस्तलिखित प्रति में [13] तापस प्रसंग का सविस्तार वर्णन मिलता है। इसमें तापस की पूरी कथा दी हुई है और तापस था कौन, उसका नामोल्लेख भी है। प्राप्त तापस प्रसंग को पढ़कर यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी कुशल क्षेपककार ने इस प्रसंग की रचना कर उसे मानस में जोड़ दिया। प्रश्न उठता है कि क्षेपककार ने इसकी रचना क्यों की—इसका एकमात्र उत्तर है कि **'तेहिं अवसर एक तापस आवा'** की कथा को स्पष्ट करने के उद्देश्य से क्षेपककर्त्ता ने इस प्रसंग को विस्तारपूर्वक लिखा। एक कारण यह भी हो सकता है कि राम के परम भक्त तापस की कथा को तुलसी ने मानस में स्थान न दिया हो, उसकी पूर्ति क्षेपक रचयिता ने कर दी। अब तक ज्ञात रामचरितमानस की हस्तलिखित प्रतियों में यह एकमात्र प्रति है, जिसमें तापस की पूरी कथा का वर्णन हुआ है।

रामचरितमानस की हस्तलिखित प्रति का संक्षिप्त विवरण—यह प्रति बलिया (उत्तर प्रदेश) जिले में स्थित बसंतपुर गाँव के निवासी श्री मनसाराम के पुत्र श्री भगतराम के पढ़ने के लिये भृगु आश्रमवासी श्री रामप्रसाद कायस्थ के पुत्र श्री आत्माराम कायस्थ ने तैयार की थी। बालकाण्ड की पुस्पिका दृष्टव्य है—''इति श्री रामचरितमानसे सकल कलिकलुस विध्वंसने विमल विग्यान सम्पादनो नाम प्रथम सोपानम्।।1।। समाप्त।। शुभ संवत् 1851 समै नाम अस्विनि क्रीश्ना पंचम्यां रविवासरे विलीष्य श्री आत्माराम स्यात्मज रामप्रसाद कायस्थ मोकाम भृगु आश्रम पाठार्थक भगतराम सुत बाबू मनसाराम कै मा. बसंतपुर कल्यानं करोति श्री सुभमस्तु सुभम्।।[14] प्रस्तुत प्रति भारी भरकम है और ज्ञात मानस की प्रतियों से दुगुनी नहीं तो डेढ़ गुनी अवश्य है। इस प्रति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें बालकाण्ड से लेकर उत्तरकाण्ड पर्यन्त विविध क्षेपक कथाओं का समावेश है। इसमें लवकुश की कथा उत्तरकाण्ड में ही समाहित है।

मानस की यह प्रति पूर्ण है। इसका आकार 12.6 इंच लम्बाई और 9.5 इंच चौड़ाई है। पत्र संख्या 458 (916 पृष्ठ) है। लिखावट आद्यंत एक है। प्रति को सुन्दर बनाने और छंद अलगाव के लिये लाल स्याही भी प्रयुक्त है। प्रति कैथी लिपि में है।

इस प्रति के प्रत्येक सोपान में नये कथा प्रसंगों को जोड़ा गया है। इसी प्रति के प्रथम सोपान में तापस के पूर्व जन्म की कथा तथा द्वितीय सोपान में यमुना तट पर श्री राम से मिलने का प्रसंग है। यहाँ पर हम बालकाण्ड

के अन्तर्गत प्राप्त कथा को उद्धृत कर रहे हैं। अयोध्याकाण्ड में वर्णित कथा के लिये अवलोकनीय है—परिषद्-पत्रिका, वर्ष 10, अंक-1, अप्रैल, 1970 ई., पृष्ठ 68-84, मानस में तापस प्रसंग शीर्षक लेख, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।

'बिबर में प्रवेश सैना सभ राजा दसरथ कै मुनि आदि दै यत्न मुनि किहाँ'—मूल प्रति में लाल स्याही से यह शीर्षक देकर तब तापस की कथा दी गई है—

चौपाई

इहाँ वसिष्ट आदि दिज जूहा। न्हाइ-न्हाइ तप ग्यान संवूहा॥
जहां तहां करन लगे जग जापू। निरभै समुझि महीप प्रतापू॥
रव सुवरन केर सुनि काना। नभ अमरन्ह मन कीन्ह गुनाना॥
सजुग भये गहि आयुध पानी। समुझि कृपानिधि परमसुदानी॥
विर्धानन पुर के ढिग आये। सक्र आपु सो वचन सुनाये॥
आवत निसिचर कटक कराला। सपदि सजग होय महिपाला।
नृप सिरमनि सुनिनभ वर वानी। उठे तुरित हर पद उर आनी॥
नृपति सुमंतहि कहा बुझाई। सजुग होहु संजुत कटकाई॥

दोहा

दसरथ आयसु सचिव सुनि, बोले गिरा गम्भीर।
एक एक सन मरम सुनि, भए सजग सब वीर॥

चौपाई

गुर वशिष्ठ औ दिज समुदाई। नित्य क्रिया करि रविहि मनाई॥
सपदि दिज महीप पहि आये। अवधनाथ गुर दिज सिर नाये॥
जैतपत्र मुनि आसिष दैऊ। सुनि भूपाल मुदित हिय भैऊ॥
जानि मरम मुनि कहेब बहोरी। आवत दनुज कटक नहि थोरी॥
होइहि कठिन भयंकर मारी। डरिहि कौसिल्या सुनि रव भारी॥
तातैं कहौं सुनी नरनाथा। गिरि कंदर सुमंत के साथा॥
संग अपर भट जे भुजभारी। पठइअ नाथ सो कहौं विचारी॥
श्री रविकुल गुर वचन सुहावा। सुनत महीस हृदै अति भावा॥

दोहा

मंत्री भट संग कोटि दै, आपु सरिस मनु राय।
कौसिल्यादि पालकी, चले सो तुरतहिं ल्याय॥

चौपाई

मुनि वशिष्ठ संग भूसुर नाना। सचिव साथ सब किये पयाना।।
निकट सघन वन बिवर सुहाई। जहां निसिचर कुल सबै नसाई।।
ताहि बिवर महं सुनहु भवानी। करत रहे तप पल मुनि ग्यानी।।
निति निसंक रहि पूजा करहीं। ग्यान सध्यान हृदै महं धरहीं।।
नारद करै जासु गुन गाना। जासु चरन भुसुंडि धरिध्याना।।
सो कृपाल निरखे निज आंखी। रहे सो रुचि उर अंतर राखी।।
विद्रहत लोचन सरिस निहारा। हरि जजात सुत सुत सम वारा।।
प्रेम मगन मुनि जात न जाना। समुझि प्रसंग भए भगवान्।।

दोहा

दिजपति पर जुग मालया चढि श्री देव रमेस।
आये जहं तहं पाल मुनि ध्यान बिगत अंदेस।।

पल मुनि कै तपस्या

चौपाई

प्रभु अति मृदु रव जनहिं सुनावा। स्त्रुति रंध्रन्ह ताके उर आवा।।
सहसा वपु रव पीन अति भैऊ। अंबक पटल खोलि मुनि दैऊ।।
उर अनुहरत रूप अवलोकी। अधिक वेर करि रह पट रोकी।।
रूप सुधा जल नैन अघाने। दंड समा गिरि पद लपटाने।।
रीखए कृपानिधि अकम लावा। मागु मागु मुख वचन सुनावा।।
कहा पल मुनि सुर वर लीजै। निरमल मन चरनन्ह चित दीजै।।
एवमस्तु कहि लछिमी नेवासा। विसंभर पुनि वचन प्रभासा।।
पल मुनि तुम सब भांति सुजाना। सुर दुर्लभ लीन्हे वरदाना।।
सोरठा–तुम सभ भांति पुनीत भौ प्रसन्य अति तोहि पर।
अब संकर पद प्रीति, करो तात सिष मानि मम।।

चौपाई

संभु भगति बिनु मम पद नेहू। लहै न कबहु सुनो नर देहू।।
एहि विधि पल मुनि कहं समुझाई। श्री समेत तब प्रभु जलसाईं।।
गौने चढ़ि निज रथ पर सागर। सर्व रहित सब माह उजागर।।
श्रीमुख वर सिष सुनत सोहाए। पल मुनि सिव पद ध्यान लगाए।।
गुन पर व्योम चारि जो आधे। संवत् गौ हर पद औराधे।।

सर्व समुझि निज भगत अभंगा। गये निकट प्रभु गिरिजा संगा।।
तिन्हते नाथ कहा स्त्रम त्यागू। भये पूर्न अब तौ वर मांगू।।

दोहा

अचल सुअंबुज चरन गहि पल मुनि प्रीति समेतु।
कहत देहु निज भगति प्रभु, उमा सहित वृषकेतु।।

चौपाई

तासु वचन सुनि नाथ पुरारी। कहै रिषै तुम सब गुन भारी।।
मोरि भगति श्रीपति पद संगा। सदा रहै सुनु ग्यान तरंगा।।
बीचि सलिल बखानौ वेदा। लखै भिन्य सो अधम अभेदा।।
जो प्रभु भगति परम सुखदाई। सो जेहि प्रथम दीन्ह जल साईं।।
पुनि तप करि जाचेउ मुनि मोही। सकति समेत देउं मम तोही।।
मोहि श्रीनाथहिं भिन्य न जानी। संतत प्रेम भगति उर आनी।।
एहि विधि इच्छा भरि एहि थाले। रहि पुनि अैतु वरख धुअआले।।
रहिहैं जब मुनि देव खरारी। धरिहहिं वपु निज ईच्छाचारी।।

सोरठा

तब तुम गालौ बंस प्रगट होति स्त्रम थोरहीं।
हंस बंस अवतंस, सकती अनुज जुत देखिये।।

चौपाई

तब प्रभु धरिहहिं रामु उदारा। निकट प्रयाग मिलाप तुम्हारा।।
होइहीं अवसि अनुग्रह मोरें। ताकर नाम जपौं स्त्रम थोरे।।
गिरिजापति वर दीन्ह अमोला। सो सुनि हिएँ हरसि पुनि बोला।।
मम हिय हरि गुपुत रुचि होई। लखि सरवग्य दीन्ह वर सोई।।
नाथ सुभग उपदेस जो दीन्हा। सो मम चहै प्रेम जुत कीन्हा।।
प्रभु एति थल अनेक खल आवै। सठ व्रतभंग करै डेरवायै।।
इहाँ दुष्ट आवै नहिं कोई। दयासिंधु वर दीजै सोई।।
प्रेम भगति निज हृदय विचारी। फिरि तिनके वर दीन्ह पुरारी।।

दोहा

एहि गिरिजा जन जुगल ते नहि आवै जेहि अंत।
आवत ही हरि हर सकल, अस कहि सुचि अवतंस।।

चौपाई

सिवा सहित निज पुर पगु धारे। पल पुनि रहि तहं सोच विसारे।।
जाप करत सर्वोपरि नामा। हृदै ध्यान लोचन अभिरामा।।
सिव पन समुझि-समुझि हरषाहीं। मनहुँ कीन्ह बहुत स्त्रम नाहीं।।
मन प्रसन्न तन अति रुचिराई। अहोरात्रि तिन्ह भग्ति दिढाई।।
महामंत्र जपु सहित विचारा। तापर अवर न आव संसारा।।
अष्टौ सिधि निकट नित आवैं। सुर दुर्लभ संपदा देखावैं।।
बहु विनती करि दल फल लेहीं। विसै भोग पर नहि चित देहीं।।
एहि विधि मन भावत वर तहवां। रहि पुनि गै सिउ आयसु जहवां।।

सोरठा

रंभा रुचि घर लोक जहाँ वसि सुमिरत हरि चरन।
गोदिज संत विसोक, कारन प्रभु जब प्रगटिहै।।

चौपाई

तब मुनि गालव के कुल आई। प्रगट होइहैं पल मुनि भाई।।
प्रभु दरसन हित सुनु उरगारी। पुनि करिहो सो तप अधिकारी।।
वन मग महं लछिमन श्रीरामा। जेहि विधि ताहि मिलै सुखधामा।।
सो प्रसंग अति रुचिर सोहाई। आगे सब सन कहब बुझाई।।
नाम अभै थल परम पुनीता। कानन होइन दल-फल रीता।।
थल महिमा अरु पल मुनि करनी। पुर्व प्रसंग जथामति वरनी।।
तथा तात तौ मन रुचि जानी। गुर प्रसाद मैं कहौं बखानी।।
बहुरि सुमिरि श्रीनाथ सुखाकर। नाथ वरन जे जवन दिवाकर।।

सोरठा

अब सो कहौ प्रसंग परम रुचिर संसय हरन।
श्री दसरथ रन रंग, ताहि समौ मैं कीन्ह जस।।[15]

इस प्रकार ज्ञात प्रति में बालकाण्ड के अन्तर्गत तापस के पूर्व जन्म की कथा पाँच दोहे, चार सोरठे और बहत्तर चौचाइयों में दी गई है। इससे ज्ञात होता है कि परम शिवभक्त पल मुनि अगले जन्म में गालव के पुत्र हुए और जमुना तट पर पहुँचकर राम-लक्ष्मण-सीता का दर्शन कर वरदान प्राप्त किया। अयोध्याकाण्ड में तापस का प्रसंग नौ दोहे, पाँच सोरठे, चार छंद और एक सौ बारह चौपाइयों में है। आश्चर्य इस बात का है कि मानस की प्रतियों में तापस प्रसंग **''सुनि सविवाद सकल पछिताहीं। रानी राए कीन्ह भल नाहीं।''** के पश्चात् शुरू होता है—**''तेहिं अवसर एक तापस आवा।''** से **''पियत नयन पट रूप पियूषा।''** तक आठ चौपाई और एक दोहा है, किन्तु हस्तलिखित प्रति में केवल तीन चौपाई।

सुनि सविवाद कहहिं पछिताहीं। रानी राए कीन्ह भल नाहीं।।
तेहि औसर एक तापस आवा। तेज पुंज लघु वैस सोहावा।।
कवि अलखित गति वेष विरागी। मन क्रम वचन राम अनुरागी।।
पिअत नयन पुट रूप पिऊखा। मुदित सुअन जिमि पाएउ भूषा।।
तासु प्रीति लखि कृपानिकेता। सीअ लखन औ गुहा समेता।।
वट छाआ सीतल सुचि जाने। बैठे तेहि सुर रूष सोहाने।।

दोहा

प्रभु रुख पाई निषादपति लहि अति परमानंद।
पत्र साल भरि ल्याये, अमीअ सरिस फल कंद।।

चौपाई

गालवसुत कहं रघुकुल दीपा। बैठारे निज परम समीपा।।
रिपुहन लखन सरिस अनुमानी। विविध भाँति सन मानि बषानी।।[16]

× × ×

क्षेपककार ने पता नहीं क्यों एक दोहा और पाँच चौपाई को छोड़ दिया है। उसने छंदों में तुलसी का ही नाम रखा है। पूरे प्रसंग में 'गालव सुत' शब्द का ही प्रयोग है। गालव सुत (पुत्र) का नामोल्लेख नहीं है। श्रीमानस अभिप्राय दीपक के रचयिता श्री शिवलाल पाठक ने भी गालव सुत ही लिखा है।[17]

दोहा

गालव सुवन मिलाप, पुर आदिक तजि चलन लखि।।

श्री पाठक जी ने तापस का नाम स्पष्ट नहीं किया। गालव सुत लिखकर आगे बढ़ गये। ज्ञात मानस की प्रति से दिये गये विवरण से यह तो स्पष्ट है कि पूर्व जन्म में उसका नाम पल पुनि था। वह शंकर और राम का परम भक्त था। त्रेता युग में वह गालव का पुत्र हुआ। अपनी वन यात्रा के समय यमुना के दक्षिणी तट पर उसे राम, लक्ष्मण और सीता के दर्शन का सौभाग्य मिला। राम ने प्रसन्न होकर तापस को वरदान दिया कि—"द्वापर युग में मैं यदुवंश में जन्म धारण करूँगा, तब आप मेरे उपरोहित होंगे—

दोहा

नाथ कहा सुनु विमल जन मम पुनि गो द्विज हेतु
द्वापर प्रगट बंधु जुत जदुबंसिनि के हेतु।।

चौपाई

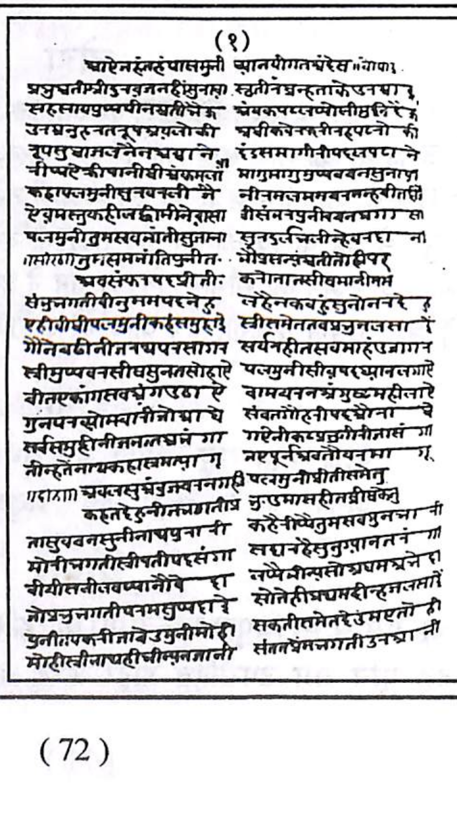
जहं मम भग्ति विपुल एक संगा। करिहहिं निति नव प्रेम-उमंगा।।[18]
तहं पुनि मम उपरोहित होई। करेहु केलि मन भावत जोई।।

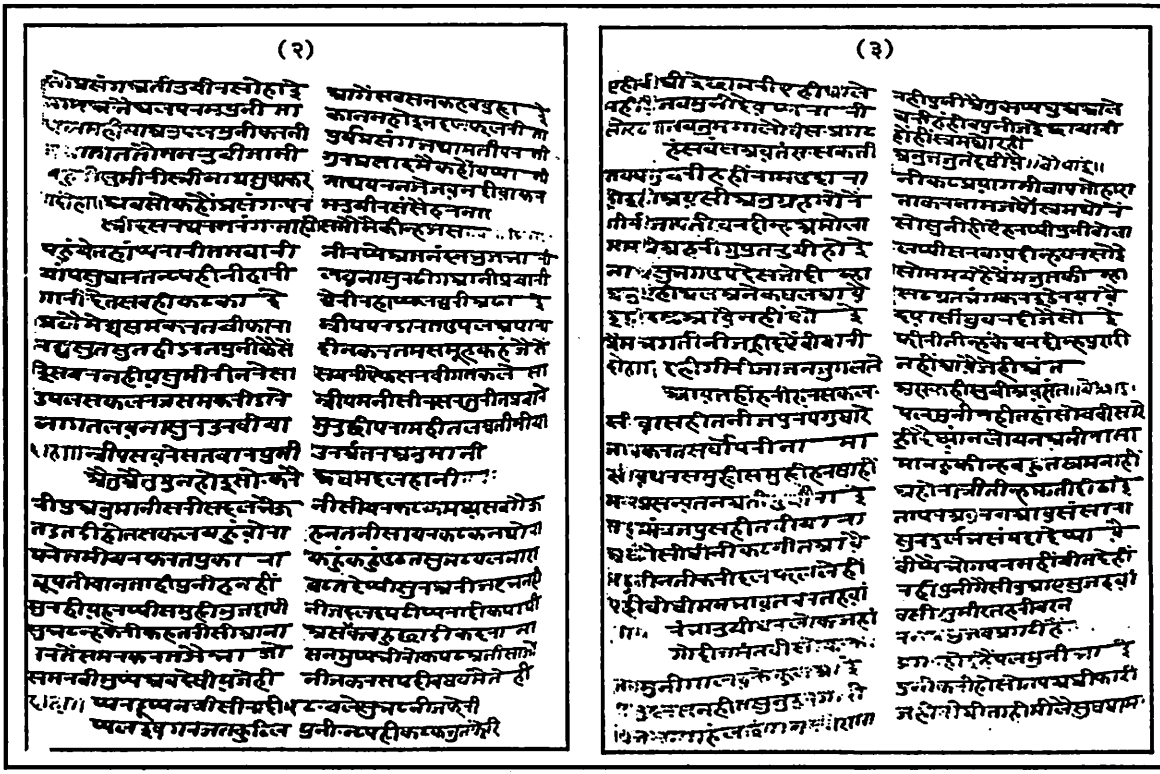
इस विस्तृत प्रसंग से यह निश्चित हो जाता है कि तापस प्रसंग क्षेपक है। तुलसीदास के साकेत गमन के बाद किसी क्षेपककार ने एक राम-भक्त के विषय में कुछ अर्द्धाली लिखकर अयोध्याकाण्ड में मिला दिया। राम-भक्त की कथा होने के कारण वह चल पड़ा और किसी प्रतिलिपिकार ने उसे छोड़ा नहीं। पूरी कथा न होने से तापस प्रसंग रहस्य बन गया।

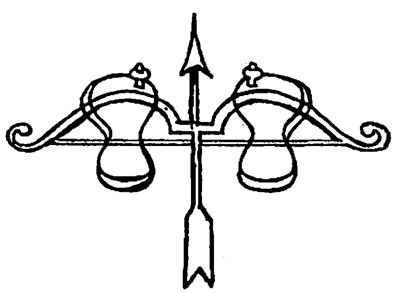
---

1. प्रष्टव्य-मानस अनुशीलन, पृष्ठ 176-177, संपादक–सुधाकर पण्डेय, ना.प्र.सभा–काशी।
2. वही, पृष्ठ-174।
3. वही, पृष्ठ 176।
4. मानस अनुशीलन, पृष्ठ-177, ना.प्र.सभा, काशी।
5. दि रामायण ऑव तुलसीदास : एफ.एस. ग्राउस, पंचम संस्करण, प्रथम खण्ड–भूमिका भाग।
6. दि रामायण ऑव तुलसीदास, ग्राउस महोदय की पृष्ठ 213 की पाद टिप्पणी संख्या -1।
7. मानस अनुशीलन, पृष्ठ-174।
8. रामचरितमानस, संपादक–मानस मराल श्री शंभुनाथ चौबे, पृष्ठ-229-230, ना.प्र.सभा, काशी।
10. श्रीरामचरितमानस, पृष्ठ 225-226, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण।
11. तुलसी ग्रंथावली और मानस का पाठ, पृष्ठ 3-4, अखिल भारतीय विक्रय परिषद, काशी।
12. वही, भूमिका अंश, पृष्ठ 4-5।
13. प्रस्तुत प्रति लेखक के संग्रह में सुरक्षित है। मानस के अध्येता प्रति के अध्ययन हेतु आमंत्रित हैं।
14. रामचरित मानस की हस्तलिखित प्रति–बालकांड पद संख्या-181।
15. वही, पत्र संख्या 100-102।
16. परिषद् पत्रिका-वर्ष-10, अंक-1, अप्रैल-1970 ई., पृष्ठ 74-75, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।
17. श्रीमानस अभिप्राय दीपक सटीक (श्रीमानस अभिप्राय - दीपक चक्षु, टीकाकार–मानस मार्त्तण्डकार, महात्मा श्री जानकीशरण जी (स्नेहलता)–अयोध्या हनुमन्निवास, पृष्ठ 153-154, सुलेमानी प्रेस, काशी–संवत–2003 वि.।
18. परिषद् पत्रिका, पृष्ठ-79, वर्ष-10, अंक-1, सन् 1970 ई.।

रामचरितमानस की हस्तलिखित प्रति के पृष्ठ जिसमें तापस के पूर्व जन्म की कथा का वर्णन है।


(१)


(२)
(३)



आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य में रामकथा परम्परा

डा. सौमित्र शर्मा
कानपुर (उ. प्र.)

राम कथा से सन्दर्भित आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य में अनेक अच्छीं कृतियाँ प्रकाश में आईं, जिनमें आधुनिक युगबोध का संस्पर्श भली-भाँति हुआ है। सन् 1955 में आ. चतुरसेन शास्त्री विरचित 'वयं रक्षामः' कृति हिन्दी कथा जगत में विशेष चर्चित हुई। लेखक के अनुसार—"इस उपन्यास में प्राग़वेदकालीन नर, नाग, देव, दैत्य-दानव, आर्य, अनार्य आदि विविध नृवंशों के जीवन के वे विस्मृत-पुरातन रेखाचित्र हैं, जिन्हें धर्म के रंगीन शीशे में देखकर सारे संसार ने अन्तरिक्ष का देवता मान लिया था। मैं इस उपन्यास में उन्हें नर रूप में आपके समक्ष उपस्थित करने का साहस कर रहा हूँ। आज तक कभी मनुष्य की वाणी से न सुनी गई बातें, मैं आपको सुनाने पर आमादा हूँ।"

सन् 1960 के कालखण्ड में पं. रामानन्द शर्मा की लेखनी से 'वन्दनीया', 'कैकेयी की कुटिलता', 'कीर्तिराका कौशल्या' जैसी पात्र आधारित कृतियाँ अवतरित हुईं।

सन् 1980 के कालखण्ड में विश्वनाथ लिमए कृत 'सत्याग्रही राम' तथा 'शस्त्राग्रही राम' नामक दो ग्रंथ उपलब्ध हुए। इसी कालखण्ड में नागार्जुन कृत 'मर्यादा पुरुषोत्तम' नामक रचना समुपस्थित हुई।

सन् 1990 के दशक में प्रणवकुमार वंद्योपाध्याय लिखित 'अमरपुत्र', 'पदातिक', डॉ. नरेन्द्र कोहली प्रणीत 'अभ्युदय' (दो भाग में) नामक विशाल आयामी कृति तथा डॉ. रामप्रसाद मिश्र कृत 'राम' जैसी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृतियाँ दृष्टिगत हुईं। यद्यपि आगे के कालखण्ड में वंद्योपाध्याय कृत 'अरण्य काण्ड' तथा डॉ. मोहन गुप्त कृत 'सुराज राज' भी प्रकाशित हुईं।

इसी कालखण्ड में मदनमोहन शर्मा 'शाही' कृत 'लंकेश्वर' नामक वृहद उपन्यास चर्चा में आया। यह कालांतर में राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली से सन् 2011 में एक जिल्द में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में लेखक की मुख्य दृष्टि यह रही कि रामायण काल में वैज्ञानिक आविष्कार चरमोत्कर्ष पर था। इस उपन्यास को ही आधार बनाकर 'रावण' नामक धारावाहिक का प्रसारण जी टी. वी. पर किया गया था, जिसमें राम और रावण के चरित्र को सामान्य मनुष्य की तरह विकसित होते दिखाया गया। लंका उस युग में सम्पन्न देशों में अन्यतम था तथा रावण के पास लड़ाकू वायुयानों और जल-पोतों के बेड़े थे। साथ ही प्रक्षेपास्त्र और ब्रह्मास्त्रों का अटूट भण्डार था तथा अनेक वेधशालाएँ और दूरसंचार यंत्र भी भरपूर थे। राम-रावण युद्ध दो संस्कृतियों के अस्तित्त्व की स्थापना के लिए लड़ा गया भीषण आणविक युद्ध था, जिसमें विश्व की समस्त शक्तियों ने भागीदारी की थी।

सन् 1998 में अन्तर्राष्ट्रीय राम साहित्य मर्मज्ञ एवं शोधकर्त्ता विद्वान डॉ. रमानाथ त्रिपाठी प्रणीत 'रामगाथा' नामक कृति प्रकाश में आई। डॉ. त्रिपाठी ने राम कथा को युगीन परिस्थितियों के मध्य प्रासंगिक, तर्कसंगत, विश्वसनीय और ऐतिहासिक रूप में प्रस्तुत करने की सफल चेष्टा की है। यह कृति वाल्मीकि रामायण, महाभारत जैसे अमर ग्रंथों की अक्षय परम्परा की प्रसूति है। डॉ. रमानाथ त्रिपाठी हिन्दी, संस्कृत, बांग्ला, ओडिया, असमिया, भाषा साहित्य और इन प्रदेशों के लोक साहित्य के सुविज्ञ विद्वान हैं तथा राम कथा उनके शोध, स्वाध्याय और शिक्षण का मुख्य विषय होने के कारण, उन्होंने देश-विदेश में प्रसारित राम कथा को उपन्यास की परिधि में संकलित किया है।

आपने तुलसी के 'राम' को देवत्व वाले प्रभामण्डल से हटाकर उन्हें इतिहास और सहज मानवीयता के मध्य खोजने का सफल व सार्थक प्रयास किया है। उनका यह भी उपक्रम रहा है कि पाठक को राम के युग में पहुँचा दिया जाए न कि राम के युग को खींचकर आधुनिकता में ढाला जाए।

डॉ. त्रिपाठी कृत 'रामगाथा' में राम को वनवासियों के मध्य प्रतिष्ठित करने का सार्थक प्रयास किया गया है। राम दस वर्ष तक दण्डकारण्य में विचरण करते रहे। इस कालावधि का वर्णन वाल्मीकि रामायण में नहीं है। दण्डकारण्य का अधिकांश क्षेत्र मध्यप्रदेश (अविभाजित) के अन्तर्गत आता है। तद्नुसार चित्रकूट से आगे सतना, पन्ना, जबलपुर आदि स्थान होते हुए राम शहडोल (अमरकण्टक) की ओर गए। छोटा नागपुर ही 'दक्षिण कोसल' है। कौशल्या यहाँ की राजकुमारी थीं। पूरे दण्डकारण्य में कोल, किरात, बिहार, मुंडा, बैगा, कोरबा, भुइंहार, उरांव आदि तथा इससे कुछ आगे संथाल, हो, जुआंग, बोंडा, कंध आदि वनवासी जन रहते हैं। इनकी अनेक प्रजातियों में आज भी राम कथा के तत्त्व विद्यमान हैं। इनकी रहन-सहन पद्धति और दण्डकारण्य के जीव, प्रकृति (वनस्पतियों) आदि का विस्तृत उल्लेख 'रामगाथा' में हुआ है।

'रामगाथा' में वाल्मीकि की 'ऐतिहासिकता' तथा तुलसीदास की 'मर्यादा' का समन्वय कर देश-विदेश की राम कथाओं का अध्ययन-सार प्रस्तुत हुआ है। अन्यान्य ग्रन्थों के मार्मिक व रोचक प्रसंगों को स्वीकार कर 'रामगाथा' को सुरुचिसम्पन्न बनाया है। इस प्रकार तुलसीदास के राम कथा-कार्य को गति प्रदान करते हुए युवा जनमानस के उदासीन मन को राम कथा-रस से भरने का अनुपम कार्य किया गया है। आधुनिक रामकथापरक उपन्यासों में 'रामगाथा' एक प्रामाणिक और युगानुरूप चिन्तन का कलात्मक रूप है, जिससे भारतीय समाज की एकात्मता दृढ़ हो सकती है।

'मानस' का एक मौलिक रेखाचित्र

डा. रमेश चन्द्र शर्मा
कानपुर (उ. प्र.)

'वेद वेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत साक्षात् रामायणात्मनः।।'

यह तो सर्वमान्य है कि गोस्वामी तुलसीदास प्रणीत रामचरितमानस स्मृति एवं पुराणों की तरह वेदोपवृंहण है। धर्मशास्त्रों में मानव के लिए विधि निषेधात्मक जो भी कर्म वर्णित हैं, उनमें अधिकांश के क्रियात्मक उदाहरण 'मानस' के पात्रों द्वारा संघटित हो गए हैं। वेद मानव समाज को जो करणीय आदेश प्रदान करते हैं, तो पुराण, महाकाव्य जैसे ग्रंथ उनका परिपालन सोदाहरण स्वरूप सुनिश्चित करते हैं।

भारत की यही विशेषता रही कि यहाँ चरित्र को प्रधानता दी गई। अनादि काल से आचरण के द्वारा समाज को शिक्षित और संस्कारित करने का कार्य हमारे मनीषी साहित्यकार, लोकनायक व श्रेष्ठ जन करते रहे हैं। मनुस्मृतिकार का कथन है कि—

एतद्देशप्रसूतस्य सकासाद अग्र जन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन पृथिव्याः सर्वमानवाः।।

इसी भावना के अनुरूप भारतीय वाङ्मय विशेषकर नाटक, महाकाव्य, पुराणादि एक-एक पात्र के चरित्रांकन में सजग रहे। यथा—कालिदास कृत 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' में दुर्वासा के शाप के कारण दुष्यंत प्रदत्त अँगूठी का सरोवर में शकुन्तला की अँगुली से गिर जाना, मछली द्वारा उसे निगल लेना और कालांतर में मछुआरे द्वारा मछली के पेट से निकली राज मुद्रांकित मुद्रिका को राज दरबार में प्रस्तुत करना। राजा की स्मृति जाग्रत होना। तब शकुन्तला की खोज और वरण आदि घटनाओं का नियोजन करने के पीछे नाटककार की यही इच्छा थी कि समाज को गलत कार्यों से बचाना। क्योंकि, **'यत् यत् आचरति श्रेष्ठस्त तवत देवे तरो जनः'।**

गोस्वामी तुलसीदास के कालखण्ड में भी परकीयदासता के कारण समाज व्यवस्था विशृंखलित हो गई थी। अतः उन्होंने 'मानस' के माध्यम से समाज व्यवस्था सुनिश्चित व सुव्यवस्थित करने का बीड़ा उठाया। राम और उनके पारिवारिक जनों का चरित्र, उनके कर्त्तव्य, समाज के सामने मर्यादित रूप में प्रस्तुत किए। उनके राम 'मर्यादा पुरुषोत्तम' कहलाए। व्यक्तिगत जीवन से लेकर समाजगत जीवन के विविध पक्षों से सम्बन्धित उनके विचार व कृत्य उदाहरणार्थस्वरूप उपस्थित कर लोक-जीवन को संस्कारित करने का मार्गदर्शन किया।

आज जब कन्याभ्रूण हत्या एवं वधु हत्या जैसे अनेक अपराध भारतीय समाज को कलंकित कर रहे हैं, नव-विवाहिता वधुओं के प्रति अत्याचार समाज को शर्मसार कर रहे हैं, तब भी 'मानस' हमारा मार्गदर्शन करने को तैयार है कि हम वधुओं के प्रति किस प्रकार व्यवहार करें। इसी आशय से हम उल्लेख कर रहे हैं मानस का एक विशेष प्रसंग। गो. तुलसीदास जी ने एक मौलिक रेखाचित्र का रेखांकन किया है। कतिपय रेखाएँ निम्नलिखित हैं—

सब विधि सबहिं समदि नरनाहू। रहा हृदय भरिपूरि उछाहू।।
जहँ रनिवास तहाँ पगु धारे। सहित वधूटिन कुँअर निहारे।।
लिए गोद करि मोद समेता। को कहि सकइ भयउ सुख जेता।।
वधू सप्रेम गोद बैठारी। बार बार हिय हरषि दुलारी।।
देखि समाज मुदित रनिवासू। सब के उर आनँद कियो बासू।।
कहेउ भूप जिमि भयउ बिवाहू। सुनि सुनि हरष होइ सब काहू।।
बहुविधि भूप भाँट जिमि बरनी। रानी सब प्रमुदित सुनि करनी।।

दोहा

सुतन समेत नहाइ नृप, बोलि विप्र गुरु ग्याति।
भोजन कीन्ह अनेक विधि, घरी पंच गइ राति।।

× × ×

अँचइ पान सब काहूँ पाए। स्त्रक सुगंध भूषित छबि छाए।।
रामहिं देखि रजायसु पाई। निज निज भवन चले सिर नाई।।

× × ×

नृप सब भाँति सबहि सनमानी। कहि मृदु बचन बोलाई रानी।।
वधू लरिकिनीं पर घर आईं। राखेउ नयन पलक की नाईं।।

दोहा

लरिका श्रमित उनींदबश। शयन करावहु जाइ।।
अस कहि गे विश्रामगृह। रामचरन चित लाइ।।

× × ×

सुंदर वधुन सासु लै सोईं। फनिकनि जनु सिरमनि उर गोईं।।

महाराज दशरथ अपने चारों पुत्रों का विवाह कर अयोध्या आए। निगम-नीति व कुल-रीति के अनुसार वैवाहिक औपचारिकताएँ सम्पन्न हुईं। अतिथिगण विदा हुए। महाराज अपने कर्त्तव्य का निर्वहन कर सब दायित्वों

से निवृत्त होकर निश्चिंत भाव से अन्तःपुर (रनिवास) पधारे। **'जहँ रनिवास वहाँ पगुधारे, सहित वधूटिन कुँअर निहारे।'** जीवन के चौथेपन में पुत्र प्राप्त हुए थे। आज पुत्रवधुओं के साथ उनके सामने उपस्थित हैं। उन्हें निहारते ही पिता का वात्सल्य उमगने लगा। फलस्वरूप पुत्रों को गोदी में बैठाकर लाड़-दुलार कर आनंद अनुभव किया—**'लिए गोद करि मोद समेता, को कहि सकइ भयउ सुख जेता'**। पुत्रों को गोद में बैठाकर दुलराने के बाद वधुओं को गोद में बैठाया। उन्हें भी पुत्रों की भाँति दुलारा। **'वधू सप्रेम गोद बैठारी, बार बार हिय हरषि दुलारी।'** महाराज को इस प्रकार वात्सल्यपूरित हर्ष विभोर पाकर सम्पूर्ण रनिवास (समस्त रानियाँ, सखियाँ और दासियाँ) भी प्रमुदित हुआ। ऐसा अवसर पाकर महाराज पिता ने सबके समक्ष जनकपुर के विवाहोत्सव का आँखों देखा हाल सविस्तार वर्णन किया—**'कहेउ भूप जिमि भयउ विवाहू, सुनि सुनि हरष होत सब काहू।' जनकराज गुन शील बड़ाई, प्रीत रीत संपदा सुहाई। बहु विधि भूप भाँट जिमि बरनी, रानी सब प्रमुदित सुनि करनी।** चक्रवर्ती महाराज दशरथ जनकराज अर्थात् बहुओं के मायके वालों का, उनकी प्रीति-रीति समृद्धि, कार्यशैली अ ादि का चारण भाट शैली में खूब प्रशंसा अतिश्योक्ति भाव में करते हुए रनिवास को सुना रहे हैं। क्योंकि वरयात्रा में रनिवास तो गया नहीं था। अतः महाराज रनिवास की जिज्ञासा का समाधान कर रहे हैं। रनिवास की जिज्ञासा व कौतूहल का सम्यक् समाधान व परितोष कर महाराज ने भोजन का समय जानकर पुत्रों सहित स्नान किया। स्वाभाविक है कि दिन भर के थके हारे प्रस्वेद सिक्त वरयात्रा से लौटे हुए समस्त पारिवारिक जनों ने स्नान किया। स्नानोपरांत भोजन किया—**'सुतन समेत नहाइ नृप, बोलि विप्र गुर ग्याति। भोजन कीन्ह अनेक विधि, घरी पंच गई राति।।'** भोजनोपरांत महाराज ने विप्र, गुरु व ज्ञातिजन को सम्मानपूर्वक शयनार्थ विदा किया। तब अपनी रानियों को स्नेहपूर्वक बुलाया और कहा—'वधू लरिकिनीं पर घर आईं, राखेउ नयन पलक की नाईं। तत्पश्चात् निर्देश किया—

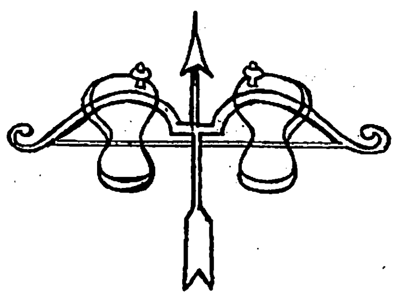
'लरिका श्रमित उनींद बस शयन करावहु जाइ' और स्वयं भी विश्राम/शयन करने को उद्यत हुए। उपर्युक्त रेखाचित्र में गोस्वामी जी ने जो निर्देश व संकेत किए हैं उनका प्रथम दृष्ट्या अवलोकन करते हैं।

- महाराज दशरथ जैसे अपने पुत्रों का दुलार करते हैं, वैसे ही पुत्रवधुओं का भी दुलार करते हैं।
- सम्पूर्ण रनिवास के समक्ष बहुओं के मायकेवालों की भरपूर प्रशंसा करते हैं। अर्थात् बहुओं के मायकेवालों की आलोचना नहीं करनी चाहिए।
- भोजन करने के पूर्व स्नान आवश्यक है। पर्यावरण व शारीरिक स्वच्छता का पालन करने से शुचिता का संस्कार दृढ़ होता है।
- समय पर भोजन करना चाहिए। निषिद्ध काल में भोजन न करे। भोजन समय पर करने के लिए ही कहा गया—'शतंविहाय भोक्तव्यम्'। साथ ही रात्रिकालीन भोजन प्रथम प्रहर में करने का शास्त्रीय विधान है। **'सवा पहर में निसि भोजन है, आगे असुर अहार।'** धर्मसिंधु आदि आचारग्रन्थ निर्देश करते हैं कि सूर्यास्त के पश्चात् डेढ़ पहर के भीतर ही भोजन कर लेना चाहिए।
- भोजनोपरान्त रानियों को सस्नेह बुलाकर महाराज पुत्रवधुओं के प्रति सहृदयतापूर्ण व्यवहार करने का संकेत करते हैं तथा समय पर निद्रा कराने का आग्रह करते हैं। पुत्रवधुओं को 'लरिकिनीं' कहकर महाराज संकेत करना चाहते हैं कि वधुओं के साथ बेटी जैसा व्यवहार करो। बेटी तो फिर भी घर में रची-बसी

होती है पर वधुएँ नई-नई आईं हैं। उन्हें यहाँ का वातावरण अनचीन्हा लगेगा। अतः धीरे-धीरे संवेदना व सहृदयता से ढालो तथा माता जैसी आत्मीयता के साथ व्यवहार करना ही समुचित होगा। बाद में यह भी ध्यान दिलाया कि पुत्र व पुत्रवधुएँ दिन भर के थके-माँदे हैं। अतः समय से स्वयं जाकर उनके शयन की व्यवस्था करें।

- सास-माताओं ने महाराज के प्रबोधन के अनुरूप ही व्यवस्था की तथा प्रथम आत्मीयता का परिचय देते हुए **'सुन्दर वधुन्ह सासु लै सोईं'।**

इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास जी ने भारतीय समाज को चेताया कि वधू गृह की शोभा हैं। उन्हें अपनेपन (आत्मीयतापूर्ण) से ही अपना बनाया जा सकता है। उनकी सुख-सुविधा का भी यथोचित ध्यान रखना चाहिए। ससुराल में सबके यथोचित लाड़-दुलार, वात्सल्यपूर्ण व्यवहार से ही उन्हें 'अपना घर' जैसा वातावरण देना चाहिए। ताकि वे कुण्ठा-रहित समरस जीवन जी सकें और घर को 'घर' समझें व उसमें आनंदपूर्वक रमें।



रामु अमित गुन सागर

डा. त्रिलोकी सिंह
इलाहाबाद (उ. प्र.)

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम के परम भक्त गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने लोकविश्रुत ग्रंथ 'श्रीरामचरितमानस' के माध्यम से श्रीराम-भक्ति की जो दिव्य ज्योति प्रज्ज्वलित की, उससे आज पूरा मानव-समाज आलोकित है। यही नहीं उनके द्वारा राम कथा की जो पावन धारा प्रवाहित की गई, उसमें अवगाहन कर भक्तगण आज भी शान्ति और तृप्तता की अनुभूति कर रहे हैं। उन्होंने परब्रह्म श्रीराम के दिव्य गुणों एवं उच्चादर्शों का जो भावग्राही व मनोहारी चित्रण अपनी राम कथा कृतियों में किया है, उसका दर्शन अन्यत्र दुर्लभ है। 'श्रीरामचरितमानस' में **'राम अनन्त अनन्त गुन'**, **'राम अनन्त अनन्त गुनानी'**, **'रामु अमित गुन सागर थाह कि पावइ कोइ'** (मानस 7/92-क) एवं **'सारद कोटि कोटि सत सेषा'। 'करि न सकहिं प्रभु गुन गन लेखा'**।। (मानस 2/199/4) के उद्घोषक गोस्वामी तुलसीदास जी के अनुसार श्रीराम के सद्‌गुणों की कोई गणना नहीं की जा सकती तथापि प्रभु-कृपा से उन्होंने उनके जितने गुणों का दिग्दर्शन कराया है, वे गुण मनुष्य के लिए अनुकरणीय तो हैं ही, उनके लौकिक-आध्यात्मिक उत्कर्ष में भी सहायक हैं।

महर्षि वाल्मीकि ने भी अपनी रामायण में श्रीराम के शताधिक गुणों का उल्लेख किया है। ये गुण भिन्न-भिन्न प्रसंगों में अवलोकनीय हैं। अयोध्या की प्रजा कहती है कि 'क्रूरता का अभाव, दया, विद्या, शील, दम (इन्द्रिय-संयम) और शम (मनोनिग्रह)—ये छः गुण नरश्रेष्ठ श्रीराम को सदैव सुशोभित करते हैं—

आनृशंस्यमनुक्रोशः श्रुतं शीलं दमः शमः।
राघवं शोभयन्त्येते षड्गुणाः पुरुषर्षभम्।।

(वा. रा. 2/33/12)

महाराज दशरथ श्रीराम में स्थिर रूप से रहने वाले नौ गुणों—सत्य, दान, तप, त्याग, मित्रता, पवित्रता, सरलता, विद्या और गुरुशुश्रूषा का उल्लेख करते हुए 'वाल्मीकि रामायण' (2/12/30) में कहते हैं—

सत्यं दानं तपस्त्यागो मित्रता शौच मार्जवम्।
विद्या च गुरुशुश्रूषा ध्रुवाण्येतानि राघवे।।

स्वयं भगवती सीता जी अनन्त गुणागार भगवान् श्रीराम में परमश्रेष्ठ सात प्रधान गुणों की सम्पन्नता से अवगत कराती हुई कहती हैं कि श्रीराम में उत्साह, पुरुषार्थ, धैर्य, अक्रौर्य, कृतज्ञता, पराक्रम और प्रभाव—ये गुण सहज ही विद्यमान हैं (द्रष्टव्य, वा. रा. 5/37/14-15), इतना ही नहीं वा. रा. (5/35) में श्री हनुमान जी

ने भगवती सीता जी से प्रभु श्रीराम के सैकड़ों गुण बतलाये हैं। संस्कृत के नाटककार लक्ष्मण सूरि ने अपनी 'पौलस्त्य वध' कृति में श्रीराम के स्वाभाविक गुणों के बारे में लिखा है—

दानं करे पादतलेन तीर्थं बाहौ जयश्रीर्वचने च सत्यम्।
लक्ष्मी प्रसादे प्रतिघे च मृत्युरेतानि रामस्य सिर्गजानि॥

अर्थात् हाथ में दान, पैरों से तीर्थयात्रा, भुंजाओं में विजयश्री, वचन में सत्यता, प्रसाद में लक्ष्मी, संघर्ष में शत्रु की मृत्यु—ये श्रीराम के स्वाभाविक गुण हैं।

सिक्खों के दसवें और अन्तिम गुरु गोविन्द सिंह जी ने श्रीराम के आदर्श चरित्र और सद्गुणों का जो दिग्दर्शन अपनी निम्नांकित पंक्तियों के माध्यम से कराया है, वह कम महत्त्वपूर्ण नहीं है—

दीनन को प्रतिपाल करै नित, संत उबार गनी भन गारैं।
पच्छि-पसू, नग-नाग, नराधिप, सर्व समै सबको प्रति पारैं॥
पोषत है जल में, थल में, पल में, कल के नहिं कर्म विचारैं।
दीन दयाल दया निधि दोष न देखत हैं, पर देत न हारैं॥

(अकालस्तुति 1/243)

प्रभु श्रीराम के अनन्त गुणों में 'शरणागत वत्सलता' या 'भक्त वत्सलता' एक महान गुण है। उनका आश्रय जिस किसी ने भी लिया है, उसको किसी अन्य का आश्रय ग्रहण करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। 'हनुमन्नाटक' में भी कहा है—**'द्विःस्थापयति नाश्रितान्'** (श्लोक-48) अर्थात् 'श्रीराम आश्रितों को दो बार स्थापित नहीं करते, एक ही बार में उन्हें अभय कर देते हैं। जब रावण ने विभीषण को पद-प्रहार से अपमानित कर लंका से बहिष्कृत कर दिया, तब विभीषण जी श्रीराम की शरण में आ गये। भगवान् ने तुरन्त उनकी रक्षा का संकल्प लेते हुए कहा—**जौं सभीत आवा सरनाईं। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं॥** (मानस 5/43/4)। इसका निर्वाह प्रभु ने उस समय किया, जब रावण ने विभीषण को मारने के उद्देश्य से शक्ति का संधान किया। उस समय प्रभु ने उन्हें पीछे कर उस शक्ति-प्रहार को स्वयं सह लिया और विभीषण के प्राणों की रक्षा की—

आवत देखि सक्ति अति घोरा। प्रनतारति भंजन पन मोरा॥
तुरत बिभीषन पाछें मेला। सन्मुख राम सहेउ सोइ सेला॥

(मानस 6/93/1)

तभी तो गोस्वामी जी मनुष्य को प्रबोधित करते हुए कहते हैं—

तुलसी अजहूँ राम भजु, छाँड़ि कपट छल छाँह।
सरनागत की राम ने, कब नहिं पकरी बाँह॥

श्रीराम सच्चे अर्थों में मर्यादापुरुषोत्तम थे। मर्यादा का पालन करना उनके जीवन का एक स्थायी भाव था। उनके जीवन में स्वप्न में भी कभी मर्यादा का भंग नहीं होने पाया। इसके लिए राम कथा का एक प्रसंग अवलोकनीय है। रावण का वध होने पर विभीषण जब अपने भाई की अन्त्येष्टि करने में उदासीनता बरतने लगे, तब उस समय प्रभु ने उनसे कहा—हे विभीषण! तुम निस्संकोच होकर अपने बड़े भाई का अन्तिम संस्कार करो, क्योंकि वैर-भाव की परिसीमा तो मरण तक ही है। प्रयोजन की पूर्ति के साथ ही वैर-भाव की समाप्ति हो जानी चाहिए। अब तो यह जैसा तुम्हारा आत्मीय है, वैसा ही मेरा भी है—

मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम्।।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव।

(वा. रा. 6/111/100-101)

मर्यादा-पालन की तत्परता श्रीराम में देखते ही बनती है। गुरु से पहले जागना और उनके सो जाने के बाद ही सोना, नित्य संध्यावन्दन करना तथा गुरु-सेवा के प्रति सहज प्रवृत्ति श्रीराम के मर्यादित स्वरूप को इंगित करता है। उनकी मर्यादा की पराकाष्ठा तो उस समय देखी जा सकती है, जब परशुराम के क्रोध करने के बावजूद भी वे विनम्र भाव से उनसे कहते हैं—

नाथ सम्भु धनु भंजनिहारा। होइहिं कोउ एक दास तुम्हारा।।

(मानस 1/271/1)

श्रीराम की विनम्रता तो उस समय देखते ही बनती है, जब क्रोधित परशुराम से वे **'अपराधी मैं नाथ तुम्हारा'** कहकर उनसे यह विनय करते हैं कि हे स्वामी! कृपा, क्रोध, वध और बन्धन जो कुछ करना हो, दास की तरह मुझ पर कीजिए। जिस प्रकार से आपका क्रोध शीघ्र ही दूर हो जाये, बताइए; मैं वही उपाय करूँ। अन्ततः कर्म, ज्ञान और भक्तिरूपी त्रिवेणी की धारा प्रवाहित करने वाले श्रीराम के प्रत्येक आचरण में शील, शान्त, गाम्भीर्य और सौजन्य आदि गुणों के अद्भुत प्रभाव के कारण परशुराम जी का कुलिश-कठोर हृदय भी द्रवित हो गया।

श्रीराम द्वारा मैत्री के निर्वाह की पराकाष्ठा उनके महानतम् गुणों में से एक है, जिसे बालि-सुग्रीव युद्ध के प्रसंग में देखा जा सकता है। आपद्ग्रस्त सुग्रीव के साथ मैत्री कर श्रीराम उसकी कामना-पूर्ति के प्रयोजन से अन्यायी-अत्याचारी बालि को एक ही बाण से मारने की प्रतिज्ञा करते हैं—

'बाणेनैकेन तं हत्वा राज्ये स्वामभिषेचये।'

(अध्यात्म रामायण, किष्किन्धा काण्ड 2/5)

प्रभु की कृपालुता और दीनबन्धुता को रेखांकित करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं—जो सुग्रीव दिन-रात बालि के भय से व्याकुल रहता था, जिसके शरीर में बहुत से घाव हो गये थे और जिसकी छाती चिन्ता के मारे जला करती थी, उसी सुग्रीव को कृपालु और सहृदय स्वभाव वाले प्रभु श्रीराम ने वानरों का राजा बना दिया—

बालि त्रास व्याकुल दिन राती। तन बहु ब्रन चिन्तां जर छाती।।
सोइ सुग्रीव कीन्ह कपिराऊ। अति कृपालु रघुबीर सुभाऊ।।

(मानस 4/11/2)

प्रभु श्रीराम की पतित-पावनता एक ऐसा सद्गुण है, जो उनके रोम-रोम में व्याप्त है। श्रीराम के चरणस्पर्श से पत्थर की शिला अहल्या शाप-सन्ताप से मुक्त हो गयी और प्रभु ने उसे सद्गति दे दी। इस बात का तो उनके मन में कुछ भी हर्ष नहीं हुआ, वरन् इस बात का पश्चात्ताप अवश्य हुआ कि ऋषि-पत्नी के शरीर से मेरे चरण का स्पर्श हो गया—

सिला साप-संताप बिगत भई, परसत पावन पाँउ।
दई सुगति सो न हेरि हरष हित, चरन छुये को पछिताउ।।

(विनय पत्रिका 100/4)

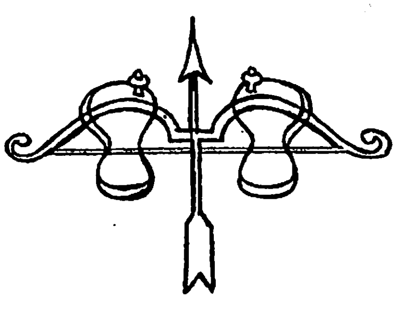
श्रीराम ने अधमाधम पक्षी गीधराज जटायु की अपने हाथों से अपने पिता के समान अंन्त्येष्टि क्रिया कर उसे मुक्ति प्रदान की। गोस्वामी तुलसीदास जी अपनी विनय पत्रिका (166/5) में लिखते हैं—

बिहंगयोनि आमिष अहार पर, गीध कौन व्रतधारी।
जनक समान क्रिया ताकी निज कर जब भाँति सँवारी॥

इतना ही नहीं श्रीराम ने तो ताड़का, मारीच, कुम्भकर्ण और रावण का भी उद्धार कर दिया। वे ऐसे स्नेही हैं कि जो कोई किसी भी भाव से उनसे मिला, उसका कल्याण हो गया। राम कथा में ऐसे अनेक प्रसंगों को देखा जा सकता है।

साक्षात् धर्म के मूर्तिमान स्वरूप होने के कारण श्रीराम ने अपने कर्त्तव्य-निर्वाह में कभी किंचित् भी प्रमाद नहीं किया। पिता की अचेतावस्था, भ्राताओं की असहनीय व्यथा, स्वजनों के आर्त्तनाद एवं प्रजा की गम्भीर शोकावस्था में भी वे अपने कर्त्तव्य-पथ से विचलित नहीं हुए और वन में मुनियों से मिलने का अवसर, माता-पिता की आज्ञा-पालन का अवसर और भ्राता भरत के राज्याभिषेक को अपने परम कल्याण का सुअवसर मानते हुए यह विचार कर कि **'जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिय मोहिं मूढ़ समाजा॥'** वे प्रभु वन में सहर्ष चले गये।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह सहज ही कहा जा सकता है कि **'मंगल भवन अमंगल हारी'** श्रीराम के परम मंगलमय एवं कल्याणकारी गुणों का कोई पार नहीं है, फिर भी धर्म में तत्परता, मुख में माधुर्य, दान में अत्यन्त उत्साह, मित्रों के साथ निष्कपटता, गुरुजनों के प्रति नम्रता, चित्त में अत्यन्त गम्भीरता, आचार में पवित्रता, गुणीजनों के प्रति रसिकता, शास्त्र में अत्यन्त निपुणता, वैराग्य में तत्परता, शिव-स्मरण में निष्ठा आदि असंख्य गुण भगवान् श्रीराम में हैं। धर्मपरायण धनुष्य को यह चाहिए कि वह राम कथामृत का पान कर भगवान् श्रीराम के गुणों को यथासम्भव अपने जीवन में उतार कर आत्म-कल्याण की ओर अग्रसर हो ताकि वह भगवत्कृपा से भक्ति-मुक्ति को सहज ही प्राप्त कर सके।



कंबन और तुलसी के नारी-पात्रों की तुलना

विद्यावाचस्पति प्रोफ़ेसर (डा.) आदित्य प्रचण्डिया
अलीगढ़ (उ. प्र.)

प्रो. एम. शेषन द्वारा लिखित सन् 2011 में हर्ष पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली द्वारा प्रकाशित और राम कथा के मर्मज्ञ, तुलसी के भक्त, हिन्दी के प्रबल समर्थक रेवरेण्ड फ़ादर कामिल बुल्के को समर्पित प्रस्तुत शोधकृति में रामचरितमानस एवं तमिल कवि कंबन द्वारा तमिल में रचित रामायण के नारी-पात्रों की तुलना के बहाने दो भिन्न कालखण्डों के महाकवियों संत तुलसीदास एवं कवि कोविद कंबन के नारी विषयक दृष्टिकोणों के तुलनात्मक विश्लेषण को संतुलित एवं तटस्थ दृष्टिकोण से प्रशंस्य प्रस्तुति हुई है। विभिन्न कालखण्डों में यद्यपि मान्यताओं में पर्याप्त अन्तर है तथापि कतिपय ऐसे तथ्य हैं जिन पर काल और परिवेश का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। युग-युग से नारी-समुदाय भी एक ऐसा ही चिरस्थाई सत्य रहा है, जिसके मूल्यांकन में कोई विशेष एवं तात्त्विक परिवर्तन परिलक्षित नहीं है। इतना होते हुए भी दोनों महाकाव्यकारों के विचारों में पर्याप्त अन्तर दृष्टिगत है। जहाँ एक ओर संत तुलसीदास आदर्श की संस्थापना करते हैं, वहाँ दूसरी ओर कवि कोविद कंबन आदर्शपरक होते हुए यथार्थपरक अधिक दिखते हैं। हिन्दी और तमिल साहित्य के सुधीजनों की मान्यताओं और विचारों का गहनता से अध्ययन करने वाले सुविज्ञ लेखक डॉ. एम. शेषन ने कंबन रामायण एवं मानस के नारी-पात्रों का संतुलित स्वरूप प्रकट किया है। ये दोनों ही महाकाव्य भारतीय भाषा एवं संस्कृति के महनीय काव्य ग्रंथ हैं। धार्मिक दृष्टि से और साहित्यिक मूल्य से ये दोनों काव्य-ग्रंथ प्रतिमान बन गये हैं।

पुरुष की सम्पूर्णता बिना नारी के अपूर्ण है। महादेव शंकर ने भी अपने को अर्धनारीश्वर के रूप में प्रकट कर इसको पुष्टता प्रदान की है। नारी का बहुमुखी स्वरूप दया की प्रतिमूर्ति है। इसका आशय यह नहीं है कि इन काव्य-ग्रंथों में पुरुषों को गौण कर दिया गया है। सृष्टि के निर्माण और विकास में नारी और पुरुष का समान अधिकार है। सृजन शक्ति का उत्स काम भावना है, तो उसकी अन्तिम परिणति नारी संयोग ही है। कंबन रामायण और मानस की नारियों को कहीं पुत्री तो कहीं प्रिया, कहीं पत्नी तो कहीं वधू, कहीं माता तो कहीं महारानी और पटरानी, कहीं आराध्या तो कहीं राक्षसी, कहीं सौत तो कहीं सास, कहीं समधिन आदि रूप में चित्रित कर उनका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। दोनों महाकाव्यकारों की केन्द्र-बिन्दु माता सीता ही हैं। इनके इर्द-गिर्द माता कौशल्या इत्यादि पात्राएँ घूमती नजर आती हैं। मानस की नारी-पात्र अलौकिक हैं, जबकि कंबन रामायण की नारी-पात्र लौकिक हैं। कंबन रामायण और मानस की नारी-पात्रों—अहिल्या, अनुसूया, शबरी, अरुंधती, अदिति आदि के चित्रण में काफी वैषम्य परिलक्षित है। इसी प्रकार राक्षस कुल की महत्त्वपूर्ण महिलाएँ—मंदोदरी, त्रिजटा, सूपर्णखा, ताड़का, लंकिनी, तारा, सुरसा आदि के चरित्र-चित्रण में भी दोनों ग्रंथों में पर्याप्त अन्तर या

विषमता देखने को मिलती है। समग्रतः डॉ. शेषन ने कंबन रामायण एवं मानस के नारी-पात्रों की तुलना अपनी ज्ञान-गरिमा और शोध-कौशल-महिमा से इस कृति को मण्डित किया है।

डॉ. शेषन इस कृति के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि "सीता के चरित्र के साथ-साथ इन कवियों ने अन्य नारी-पात्रों का भी जो चित्रण प्रस्तुत किया है उनसे भारतीय संस्कृति के सामान्य जीवन मूल्यों का तथा प्रादेशिक संस्कृतियों के विशिष्ट मूल्यों का ज्ञान होता है। दोनों कवियों की सृजन-प्रतिभा और व्यक्तियों के कुछ महत्त्वपूर्ण पहलुओं का उद्घाटन करना तथा दो संस्कृतियों के द्वारा स्वीकृत जीवन मूल्यों का निर्णय करके उनके भारतीय विशिष्ट तत्त्वों को खोज निकालना प्रस्तुत शोध अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है" (पृष्ठ 15)। पाँच अध्यायों में विभक्त इस शोधकृति के प्रथम अध्याय 'भारतीय वाङ्मय में नारी का चित्रण' में लेखक ने 'जीवन में नारी', 'काव्य में नारी चित्रण' और 'तुलसीदास और कंबन के पूर्व नारी का चित्रण' नामक बिन्दुओं पर पाँच शोध ग्रंथों के संकेतों से विवेचन किया है। लेखक की मान्यता है कि संगम काल से लेकर लगभग बारहवीं शताब्दी तक के तमिल साहित्य में चित्रित नारी जीवन से स्पष्ट विदित है कि आरम्भिक काल में उसे विवाह, विचरण, शिक्षा, धार्मिक अनुसरण आदि से सम्बन्धित जो अधिकार प्राप्त थे, उनमें कालान्तर में विशेष परिवर्तन नहीं आ पाया है। राजनीतिक विपत्तियों के विपरीत प्रभाव यहाँ के नारी जीवन पर कम पड़ा था। सती प्रथा, परदा प्रथा आदि प्रथाओं का कट्टर अनुसरण इस काल में यहाँ न होना भी इस दृष्टि से विचारणीय है। संगम काल में प्रणीत 'अहम्' अथवा अन्तर्जगत चित्रण की परम्परा परवर्ती महाकाव्यकार एवं भक्त कवियों ने अक्षुण्ण रूप से अनुसरण किया है। तुलसीदास से पूर्व के हिन्दी साहित्य तथा कंबन से पूर्व के तमिल साहित्य की काल सीमा एवं क्षेत्र सीमा यहाँ विचारणीय है।

राम कथा के नारी-पात्र मानव स्वभाव की विविधताओं एवं जीवन की वास्तविकताओं तथा आदर्शों को प्रस्तुत करने वाले हैं। कथा में स्थान, चारित्रिक बल, इन दोनों दृष्टियों से रामायण के नारी-पात्रों में सीता का चरित्र सर्वाधिक महत्त्व का है। सीता के पश्चात् कथा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नारी-पात्र शूपर्णखा तथा कैकयी हैं। अपने चारित्रिक बल के आधार पर व्यक्तिगत महत्त्व रखने वाले नारी-पात्र कौशल्या, सुमित्रा, मंथरा, तारा, मंदोदरी, अनुसूया, शबरी, स्वयंप्रभा, त्रिजटा, अहल्या, ताड़का आदि हैं। इनके अतिरिक्त भरत की पत्नी मांडवी, लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला, शत्रुघ्न की पत्नी श्रुतकीर्ति आदि के नामोल्लेख हैं। राम के कार्य में बाधक अथवा सहायक नारी-पात्रों में सुरसा, लंकादेवी, रावण की पत्नी धान्यमालिनी के नाम लिये जा सकते हैं। कंबन रामायण की सीता की नीलमालै नामक एक सहेली तथा तुलसी रामायण की सुनयना, सती, उमा, मैनावती आदि इन काव्य-द्वय के मौलिक पात्र हैं। विशेष कार्य संचालन न करते हुए भी मूकरूप में उपस्थित अनेक दासियाँ, सखियाँ, पुरनारियाँ आदि भी कथा के नारी-पात्रों में सम्मिलित हैं। 'कंब-रामायण तथा तुलसी रामायण के नारी पात्र' नामक द्वितीय अध्याय में डॉ. एम. शेषन का मानना है कि कंबन तथा तुलसीदास के नारी-पात्र अपने मूल प्रारूपों के निकट होते हुए भी कुछ अंशों में उनसे भिन्न है।। दोनों काव्यकारों ने इन पात्रों को अधिक आदर्श रूप में प्रस्तुत किया है। तुलसीदास के चित्रण में वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त अध्यात्म रामायण का भी प्रभाव परिलक्षित है।

सांस्कृतिक मूल्यों के कारण राम कथा यहाँ के जनजीवन के लिए एक आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित है। इसके अनेक सद्गुण सम्पन्न नारी-पात्र भारत की नारियों के लिए अनुकरणीय निदर्शन हैं। दुष्पात्रों के रूप में चित्रित

नारियाँ एक चेतावनी के रूप में सामने आती हैं। रामायण के मूल-पात्रों को कंबन तथा तुलसीदास ने जो रूप दिये हैं, उनमें भारतीय संस्कृति के सामान्य तत्त्व भी मिलते हैं और दोनों कवियों की अपनी-अपनी परम्पराओं के द्वारा अनुमोदित सांस्कृतिक मूल्यों का प्रतिष्ठापन भी हुआ है। ऐसे सामान्य एवं प्रादेशिक संस्कृतियों के आदर्श तथा मूल्यों का समावेश पारिवारिक, सामाजिक एवं धार्मिक जीवन के सन्दर्भ में देखा जा सकता है। डॉ. शेषन ने तृतीय अध्याय में बारह सन्दर्भ संकेतों के साथ दोनों काल-कृतियों के नारी-पात्रों का सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। दोनों कवियों ने वाल्मीकि रामायण से गृहीत पात्रों के मूल प्रारूप का परिष्करण एवं आदर्शीकरण करके इन पात्रों के द्वारा पारिवारिक सम्बन्धों का अधिक ग्राह्य एवं उज्ज्वल चित्र उपस्थित किया है। कंब-रामायण में नारी-पात्रों के सामाजिक जीवन का जो रूप उभर आया है, उससे समकालीन समाज में सुखी-सम्पन्न जीवन के लिए नारी को प्राप्त अवकाश एवं उसकी स्वतंत्रता के लक्षण परिलक्षित हैं। तुलसीदास के द्वारा सीता के चित्रण में उनके युग की वस्तुस्थितियों का परोक्ष प्रभाव है। डॉ. शेषन शास्त्रोक्त संस्कारों का अधिक प्रकाशन तुलसीदास के नारी-पात्रों के द्वारा हुआ है, ऐसा मानते हैं।

रामायण बाह्य घटना प्रधान ऐतिहासिक महाकाव्य है। आदर्श स्थापना की ओर अधिक उन्मुख इसकी कथा में बाह्य जीवन के यथार्थ का चित्रण जितनी मात्रा में हुआ है लगभग उतनी ही मात्रा में मानव अन्तर्जगत के तत्त्व भी उभर आये हैं। बलदेव प्रसाद मिश्र रामायण की कथा को 'निकृष्ट काम-क्रोध पर उत्कृष्ट काम-क्रोध की विजय की कथा' मानते हैं। डॉ. शेषन का कहना है कि राम कथा के विकास क्रम में पड़ने वाले अनेक मार्मिक स्थल कितनी ही बार पढ़ने पर अथवा सुनने पर भी हर बार रसविभोर करने वाले हैं। तभी तो विभिन्न कालों एवं देशों में अपनी-अपनी भाषा में स्थानीय संस्कृति के अनुसार लिखित राम कथा बालकों से लेकर वृद्धों तक में प्रख्यात है। इस शोध कृति का पंचम अध्याय दोनों काव्यकृतियों के नारी-पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन दो सन्दर्भ संकेतों के साथ निरूपित है। विद्वान लेखक की मान्यता है कि कंबन तथा तुलसीदास की पात्र संरचना का आधार मनोविज्ञान सम्बन्धी अनुभव सिद्ध सामान्य तथ्य है। इनके नारी-पात्रों द्वारा प्रतिपादित मनोवैज्ञानिक यथार्थ इन्हीं सामान्य आधारों पर स्थित है। कंबन तथा तुलसीदास के नारी-पात्रों का यह मनोवैज्ञानिक अनुशीलन मानव मनोविज्ञान एवं नारी मनोविज्ञान सम्बन्धी सामान्यतः प्रचलित मान्यताओं की दृष्टि से किया गया है। कंबन तथा तुलसीदास ने नारी-पात्रों की मनोदशाएँ, चिन्तन, प्रक्रिया, जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में मानसिक प्रतिक्रियाएँ आदि के चित्रण में अंशतः वाल्मीकि का आधार लिया है तथा अंशतः मौलिक कल्पनाओं से काम लिया है। इन नारी-पात्रों के भाव-व्यापारों के चित्रण में वाल्मीकि की भाँति दोनों कवियों ने मानव-मन के सामान्य यथार्थपरक आचरण को तथा स्वभावतः नारी में अधिक पायी जाने वाली उसकी भावपरकता को अधिक प्रदर्शित किया है। कंबन तथा तुलसीदास के द्वारा कन्याओं एवं पत्नियों के आचरण तथा उनकी मानसिक धारणाएँ वाल्मीकि रामायण की भाँति नारी जीवन सम्बन्धी भारतीय संस्कृति की प्रचलित मान्यताओं से आबद्ध है। कंबन तथा तुलसीदास के द्वारा विवाहोन्मुख पूर्वरागिनी सीता की मनःस्थिति का उद्घाटन हुआ है। कंब-रामायण में शूर्पणखा के द्वारा तथा तुलसी रामायण में पार्वती के द्वारा भी इस तत्त्व पर प्रकाश पड़ा है। ये कवियों की अपनी विशेषताएँ हैं। कंबन तथा तुलसीदास के द्वारा उनके काव्यों में स्रोतकाव्य तथा नारी स्वभाव एवं मानसिक आचरण सम्बन्धी उनके लोकानुभव के आधार पर नारी-पात्रों के द्वारा नारी की मनोदशाओं, उसकी मनोवैज्ञानिक मान्यताओं, प्रतिक्रियाओं तथा उसकी बौद्धिक योग्यताओं की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है।

डॉ. शेषन ने विवेच्य शोधकृति के पंचम अध्याय 'उपसंहार' में अपने समग्र अध्ययन का मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। डॉ. शेषन का मानना है कि उदात्त युगचेतना से सम्पन्न महाकवि कंबन तथा महाकवि तुलसीदास भारतीय सांस्कृतिक धारा के अन्तर्गत दो भिन्न भाषा-क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये दोनों भिन्न युग एवं परिस्थितियों में पले हुए कवि हैं। कंबन चोलों के शासन काल (नौवीं-दसवीं शताब्दी) के स्वावलम्बी एवं स्वतंत्र तमिल प्रदेश के समाज के वासी थे। तुलसीदास का समकालीन हिन्दू समाज मुगलों के अधीन परतंत्र एवं विषादग्रस्त था। उनके समकालीन जीवन की राजनीतिक एवं धार्मिक दशाएँ भिन्न थीं। कंबन का काल चोल साम्राज्य के उत्थान युग का था, धार्मिक अशान्तियाँ उस काल में कम थीं। शैव एवं वैष्णव धर्म का वह उत्थान काल माना जाता है। तुलसीदास के काल में राजनीतिक एवं धार्मिक स्थितियाँ दुर्बल थीं। युगीन जीवन एवं संस्कृतियों के कारण एवं अपने व्यक्तित्व स्वभाव के अनुरूप इन दोनों कवियों की मानसिक प्रवृत्तियों से भिन्नता है। तुलसीदास संत स्वभाव से युक्त मर्यादावादी भक्त कवि थे। कंबन समृद्ध सामन्तीय जीवन के अधिक अभ्यस्त, लौकिक रुचि से अधिक सम्पन्न कवि थे। दोनों अपने-अपने भाषा-क्षेत्र के रामचरित के कवियों में मूर्धन्य हैं। दोनों की प्रेरणा-स्रोत राम कथा है। कंबन ने वाल्मीकि से प्रेरणा ली थी, जबकि तुलसीदास ने वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त अध्यात्म रामायण से भी प्रेरणा ली थी। इन दोनों के कवि-मानस एक ही राष्ट्र व्यापक भारतीय संस्कृति से प्रभावित हैं। दूसरी ओर भिन्न-भिन्न काल एवं क्षेत्र के इन कवियों पर अपने समकालीन समाज की वस्तुस्थितियों एवं स्थानीय संस्कृति का भी प्रभाव पड़ा है। कथानक के विविध भागों के विकास में पात्रों को रूप देने में और विचार तथा संवेदनाओं को सम्प्रेषित करने में यह प्रभाव द्रष्टव्य है।

कंबन तथा तुलसीदास के द्वारा नारी-पात्रों के उद्घाटन से आदर्श की ओर उनकी उन्मुखता एवं उनकी परिष्कृत अभिरुचि अभिव्यंजित है। नारी के प्रति कंबन तथा तुलसीदास के दृष्टिकोण की भूमिका में उनका व्यक्तिगत स्वभाव, परिस्थितियाँ, पूर्ववर्ती मान्यताएँ आदि तत्त्व निहित हैं। इस विषय में इन दोनों की सामान्य दृष्टि भारतीय जन-जीवन में प्रचलित पातिव्रत्य सम्बन्धी विचारों से प्रेरित है। पातिव्रत्य की उत्कृष्टता अथवा निकृष्टता के आधार पर नारी कवियों की दृष्टि में व्यक्तिगत रूप में सम्माननीय अथवा निन्दनीय है। कंबन तथा तुलसीदास दोनों ने नारी के पातिव्रत्य को समाज-सापेक्षित धर्म के रूप में माना है, अर्थात् सतियों के बल से समाज टिकता है अथवा उजड़ता है। कंबन का कथन है कि "स्त्रियों के पातिव्रत्य पर काल वृष्टि भी टिकी हुई है" (1-2-59)। उनकी दृष्टि में पातिव्रत्य तपोबल से भी उत्कृष्ट है। तुलसीदास का कहना है कि—**"सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभगति तहई। जस गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसि का हरिहि प्रिय।"** (3-5-8)। नारी के प्रति कंबन की दृष्टि सामान्यतः सम्मानपरक ही नहीं वरन् कुछ सीमा तक विलासितापरक भी है। उनकी दृष्टि में काम के साधन रूप में नारी निंदनीय नहीं है। नारी सौन्दर्य के प्रति कंबन की चेतना विशेष उल्लेखनीय है। संत एवं साधक तुलसीदास की दृष्टि इससे एकदम भिन्न थी। काम के पोषक के रूप में उन्हें नारी से चिढ़ थी। नारी सौन्दर्य के प्रति कंबन की दृष्टि रसिकतापरक है, जबकि तुलसीदास की दृष्टि शील, संयम की मर्यादाओं से आबद्ध है। इस प्रकार यह शोधकृति इन दोनों काव्यकारों के नारी-पात्रों का यह तुलनात्मक अध्ययन उन मूल्यों को तथा काव्यकारों के दृष्टिकोण को समझने में सहायक है।

अथ ऋषि शुक कथायां

डा. सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव
इलाहाबाद (उ.प्र.)

श्रीराम को बानर सेना के विषय में जानकारी लेने के लिये जो गुप्तचर रावण ने भेजे थे उनका वर्णन करते हुए गोस्वामी जी कहते हैं–

जबहि विभीषण प्रभु पँह पाये। पाछे रावण दूत पठाये।।
सकल चरित तिन्ह देखे धरे कपट कपि देह।।
प्रभुगुन हृदय सराहँहि सरनागत पर नेह।।

(रा.च.मा. सु. का. दो. 5)

जब वानरों ने इन गुप्तचरों को पहचान लिया तो उन्हें बाँधकर सुग्रीव के पास ले गये और बाद में सभी वानरों ने रावण के उन दूतों की मारपीट कर बड़ी दुर्दशा की, किन्तु बाद में लक्ष्मण ने दया करके उन्हें मुक्त कराया और उन्हें रावण के नाम एक पत्र देते हुए वापस भेज दिया। लक्ष्मण के उक्त पत्र में सन्देश था कि–

कहेहु मुखागर मूढ़ सन मम सन्देश उदार।
सीता देहु मिलहु न त आवा काल तुम्हार।।

(सु.का. रा.च.मा. दो. 52)

रावण के दूत जब वापस रावण के दरबार में पहुँचे तो रावण ने उनसे पूछा–

विहँसि दसानन पूँछी बाता। कहसि न शुक आपन कुसलाता।।

यही नहीं, रावण ने माखौल उड़ाते हुए कहा–

की भई भेंट कि फिर गये भवन सुजसु सुनि मोर।
कहसि न रिपु दल तेज बल बहुत चकित चित तोर।।

श्रीराम की सेना में शुक आदि दूतों की जो दुर्दशा हुई थी उसका स्मरण करते हुए सारा वृत्तान्त कह सुनाया और यह भी बताया–

नाथ कटक मह सो कपि नाहीं। जो न तुम्हहि जीतै रन माहीं।।
परम क्रोध भींजहिं सब हाथा। आयसु पैन देहिं रघुनाथा।।

शुक का उक्त अभिकथन सुनकर रावण और भी कुपित हो गया और शुक को सम्बोधित करते हुए हुए बोला–

मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई। रिपु बल बुद्धि थाह मैं पाई।।
सचिव सभीत विभीषन जाके। विजय विभूति कहाँ जग ताके।।

अर्थात् जिसको मन्त्रणा देने वाला विभीषण है, उसको भला जग में विजय कैसे मिल सकेगी।

रावण के गर्व भरे उक्त वचन सुनकर दूत शुक ने रुष्ट होकर लक्ष्मण द्वारा रावण को सम्बोधित पत्र देते हुए कहा–

रामानुज दीन्हीं यह पाती। नाथ बचाइ जुड़ावहु छाती।।
बिहँसि बाम कर लीन्ही रावन। सचिव बोल शठ लाग बचावन।।

रावण के दुर्वाद से दुःखी शुक श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में प्रणाम करके अपने आश्रम को चला गया। यथा–

ऋषि अगस्त्य की साप भवानी। राक्षस भयउ रहा मुनि ज्ञानी।।
बंदि राम पद बारहिं बारा। मुनि निज आश्रम को पग धारा।

पूर्वजन्म में शुक चारों वेदों का ज्ञाता और ब्रह्मज्ञानी था। यह ब्रह्मज्ञानी मनुष्यों और देवताओं के कल्याण के लिये बराबर यज्ञादि में तत्पर रहता था। देवयोग से शुक का एक भयंकर राक्षस वज्रदंष्ट्र से विरोध हो गया और वह शुक का अनिष्ट करने को उद्यत हो गया। संयोग से एक दिन अगस्त्य ऋषि शुक के पास पधारे। शुक ने उनसे भोजन का आग्रह किया जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया और स्नान के लिये चले गये। इस बीच वज्रदंष्ट्र राक्षस ने अगस्त्य मुनि का वेश बनाकर शुक से बकरे का मांस खाने की इच्छा व्यक्त की। शुक ने अगस्त्य मुनि की आज्ञा को सही मानकर उसे शिरोधार्य किया और उसने मांसाहार तैयार किया।

दुष्ट राक्षस वज्रदंष्ट्र ने शुक की पत्नी का सुन्दर रूप बनाया और शुक-पत्नी को मूर्च्छित कर दिया। मांसाहारी भोजन अगस्त्य मुनि के सम्मुख परोसकर वज्रदंष्ट्र राक्षस अन्तर्ध्यान हो गया, यथा–

उपविष्टे मुनौ भोक्तुं राक्षसोऽतीव सुन्दरम्।
शुक भार्यावर्पुधृत्वा तां चान्तर्मोह्यनखलः ।।
नर मांसं ददौ तस्मै सुपक्वं बहुबिस्तरम्।
दत्त्वैवार्न्तदधे रक्षस्ततोदृष्टवा चुकोपसः।।

(युद्ध काण्ड 12-13 अध्यात्म रामायण)

अगस्त्य मुनि ने जब अपने सामने परोसा गया मांसाहारी भोजन देखा तो उन्होंने कुपित होकर शुक मुनि को शाप दिया–"हे दुर्भते मुनि, तुमने मुझे नर मांस परोसा, अतः तुम मनुष्यभोजी राक्षस बनकर वास करो।" अगस्त्य मुनि को क्रोधित देखकर शुक ने भयभीत होकर कहा–"मुनिवर, आपने ही स्वयं मुझे नर मांस का भोजन देने को कहा था, मुनिवर मैंने तो आपके आदेश का पालन किया है, फिर मुझे आपने शाप क्यों दिया।" यथा–

अमेध्यं मानुषं मांसमगस्त्यः शुकमब्रबीत। अभक्ष्यं मानुसं मांसं दत्तवानसि दुर्मते।।
मह्यं त्वं राक्षसो भूत्वा तिष्ठ त्वं मनुपाशनः। इति शप्तः शुको भीत्या प्राग्हागस्त्यं मुने त्वया।।
इदानी भाषितम् मेऽद्यं मांस देहीति विस्तरम्। तथैव दत्तं भो देव किं में शाप प्रदास्यसि।।

(युद्ध काण्ड 14-16 अध्यात्म रामायण)

शुक के उक्त वचन सुनकर मुनिवर अगस्त्य को विस्मय हुआ और उन्होंने नेत्र बन्द करके ध्यान किया और राक्षस वज्रदंष्ट्र के कपट करतूत का बोध हो गया। ऋषिवर ने शुक से यह स्वीकार किया कि सारी कपट करतूत वज्रदंष्ट्र की थी किन्तु शाप तुम्हें दे दिया, उन्होंने यह भी कहा कि उनके वचन तो सत्य होंगे, किन्तु शाप से मुक्ति का उपाय यही है कि तुम राक्षस का शरीर धारण करके रावण के अधीन रहोगे और उसके सहायक के रूप में कार्य करोगे। जब श्रीरामचन्द्र वानर सेना के साथ लंका विजय हेतु पधारेंगे तो तुम रावण के दूत के रूप में उनके पास जब जाओगे और रावण का सन्देश कहोगे तथा श्रीराम का भी सन्देश लौटकर रावण को सीख के तौर पर बताओगे तो उसके बाद ही राम के प्रताप से शाप-मुक्त हो जाओगे और पुनः शुक मुनि का स्वरूप पा जाओगे, यथा–

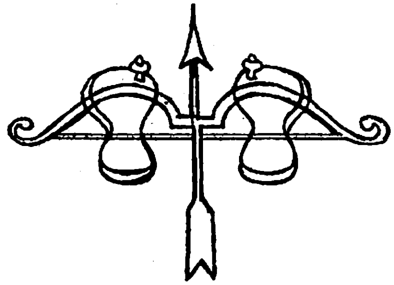
श्रुत्वा शुकस्य वचनं मुहूर्तं ध्यानमास्थितः। ज्ञात्वा रक्षः कृतं सर्वं ततः प्राह शुकं सुधीः।।
त्वापकारिणा सर्वं राक्षसेनं कृतंत्विदम्। अविचार्यैव में दत्तः शापस्ते मुनि सत्तम।।
तथापि में वचोऽमोघमेव मेव भविष्यति। राक्षसं व पुरास्थाय रावणस्य सहाय कृत।।
तिष्ठ तावद्यदा रामो दशानन बधाय हि। आगमिष्यति लंकायाः समीपं वानरैः सह।।

(युद्ध काण्ड अध्यात्म रामा. 17-20 दो.)

मुनिवर अगस्त्य ने फिर शुरू से कहा—"तुम राक्षस रूप में ही रावण के पास रहोगे और रावण के सन्देश से श्रीराम के पास जाओगे और लौटकर उनका प्रताप रावण से बताओगे। श्रीराम के दर्शन-मात्र से तुम शापमुक्त हो जाओगे।" मुनि अगस्त्य के आदेशानुसार शुक मुनि राक्षस वेश में रावण के पास रहने लगे। रावण के दूत के रूप में श्री राम के दर्शन करके उनका प्रताप रावण से बताकर शाप मुक्त हो गये, यथा–

प्रेषितो रावणेनत्वं चारो भूत्वा रघूत्तमम्। दृष्ट्वा शापाद्विनिर्मुक्तो बोधयित्वा च रावणं।।
तत्त्वज्ञानं ततो मुक्तः परमपदमवाप्स्यसि। इत्यक्तोऽगस्त्य मुनिना शुको ब्राह्मणसत्तमः।।
वभूव राक्षसः सद्यो रावण प्राप्य सस्थितः। इदानी चार रूपेण दृष्ट्वा रामं सहानुजम्।।
रावणं तत्त्वविज्ञानं बोधयित्वा पुनर्द्रुतम्। पूर्ववद् ब्राह्मणो भूत्वा स्थितो वैखानसै सह।।

तदनन्तर शुक शाप-मुक्त होकर पुनः ऋषि रूप भगवद्भक्ति व तपस्यारत होकर अपने आश्रम में पूर्ववत् रहने लगे।



मलयालम साहित्य में राम-काव्य का उत्स और विकास

डा. चक्रधर नलिन
लखनऊ (उ.प्र.)

श्रीराम कथा और श्रीकृष्णकथा भारत की सभी भाषाओं में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। संस्कृत में वाल्मीकि-रामायण श्रीराम कथा का आदि ग्रन्थ है जिसका प्रभाव राष्ट्रवाणी हिन्दी सहित समस्त भारतीय साहित्य में मिलता है। मलयालम भाषा में श्रीराम कथा प्राचीन काल से उसकी विविध विधाओं में लिखी गयी है।

भाषा विज्ञानी यह तथ्य स्वीकार करते हैं कि मलयालम का उद्भव तमिल से हुआ है। मलयालम में लिखित राम-काव्य पर तमिल और संस्कृत काव्य-धारा का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। तमिल से प्रभावित बारहवीं सदी की 'पाटटु' शाखा की प्रथम प्रमुख काव्यकृति 'रामचरितम् पाटटु' है जिसके रचनाकार चीरामन हैं। मलयालम में राम कथा को लेकर लिखे गये काव्य-ग्रन्थों में श्रीरामचरितम् के अतिरिक्त 'कण्णश्श रामायण', 'राम कथा पाटटु', 'भाषा रामायण चंपु', 'अध्यात्म रामायण किलिप्पाटटु', 'इरुपत्तिनाल वृत्तम', 'केरल वर्मा रामायणम्', 'पाताल रामायणम्', 'राम नाट्टम', 'रावण विजयेम अट्ट कथा', 'ताटका वधम' प्रमुख हैं। आधुनिक काल की महत्वपूर्ण कृतियों में 'अषकत्तु पद्मनाभ कुरुप्यकृत रामचन्द्र विलासम' और 'कुमार नारायन कृत चिंतविष्टयाया सीता' आदि मुख्य हैं।

'रामचरितम्' चीरामन कवि रचित आदि मलयालम कृति में करुण रस का सम्यक् परिपाक हुआ है। इसके द्वितीय भाग में वायु भगवान् के सुझावानुसार हनुमान लंका में प्रवेश करते हैं। वह सीता-प्रसंग की चर्चा सीता जी से करते हैं। यह प्रसंग अत्यधिक हृदयस्पर्शी तथा रोचक है। कवि ने बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से रावण के सीता जी पर क्रुद्ध और धमकियाँ देने का वर्णन किया है। सीता विलाप जैसे दृश्य कवि ने बड़े मनोयोग से लिखे हैं। इस कृति में सम्पूर्ण रूप से 164 'पटल' और 1814 'पाटटु' समावेशित हैं।

मलयालम काव्य की दूसरी प्रमुख पुस्तक भाव प्रधान काव्य के प्रणेता कवि राम पणिक्कर रचित 'कण्णश्श रामायण' है। इसमें 3059 शील (दोहा छंद) हैं जो सरलता से गेय हैं। राम कथा गायन परम्परा की यह महत्त्वपूर्ण कृति है। सुन्दर वाङमय चित्रों की इसमें अभिव्यक्ति सराहनीय है। इस कृति में सीता-स्वयंवर काल में श्रीराम द्वारा शिव धनुष तोड़ने का अति प्रभावपूर्ण वर्णन मिलता है। यह वाल्मीकि की रामायण से प्रभावित रचना है।

'राम कथा पाटटु' को मलयालम काव्य में उच्च स्थान प्राप्त है। इसकी भाषा विषिअम प्रदेश के नायरों की तमिल मिश्रित देशी भाषा है। कृतिकार अय्यपिल्ली आशान रचित युद्ध-वर्णन पठनीय है तथा पाठकों में वीरोचित भाव भरने में सफल है।

'भाषा रामायण चंपु', पुनम नपूतिरि की मणि प्रवाल और चंपुशाखा का प्रथम राम-काव्य है जिसमें कवि का चातुर्य और रचना-कौशल दृष्टव्य है। कवि ने पूर्वाग्रह से दूर राम को एक आदर्श राजा और रावण को खलनायक के रूप में प्रस्तुत किया है। इसमें रावण द्वारा कैलाश पर्वत को गिड़गिड़ाने तथा माता पार्वती को भयभीत करने, अशोक वाटिका में दुःखी सीता से रावण संवाद आदि के रोचक वर्णन हैं।

इसमें बीस प्रबन्ध खण्ड प्रतिपादित हैं। वे प्रबन्ध खण्ड इस प्रकार हैं—रावणोद्भव, रामावतार, ताटकावध, अहल्या मोक्ष, सीता स्वयंवर, परशुराम विजय, विछिन्नाभिषेक, खर वध,सुग्रीव सख्य, बालि वध, उद्यान प्रवेश, अंगुलिया क, लंका प्रवेश, रावण वध, अग्नि-प्रवेश, अयोध्या-प्रवेश, पट्टाभिषेक, सीता परित्याग, अश्वमेध और स्वर्गारोहण।

तुंचत्त रामानुजन एषुन्तच्छन मलयालम साहित्य के पुरोधा हैं। राम कथा सम्बन्धी इनके 'अध्यात्म रामायणम्' (16वीं शताब्दी) तथा 'उत्तर रामायणम्' दो काव्य ग्रन्थ हैं। वह मलयालम काव्य के युगान्तरकारी रचनाकार हैं। कुछ विद्वानों का अभिमत है कि अध्यात्म रामायणम् किलिप्पाट्ट' वाल्मीकि रामायण का भाषान्तर है। उन्होंने रामायण की मूल कथा को तोड़ने-मरोड़ने का काम नहीं किया वरन् सही रूप से उसे प्रस्तुत किया है। बालकाण्ड के आरम्भ में उन्होंने इष्ट देवता राम की वन्दना की है :

"वेद सम्मितमाय मुंपुल्ला श्री रामायणम्
वोधहीनन्मार्करियान वण्णम् चोलिल्लटुन्नेन"

अर्थात् इसके पूर्व रामायण की रचना हो चुकी है और वह वेद सम्मत भी है। जिन लोगों को इससे ज्ञान लाभ नहीं हुआ है उनके प्रयोजन के लिए मैं इसका प्रतिपाद्य सुनाता हूँ। यह कृति काव्य, संस्कृति और दर्शन की त्रिवेणी है। एषुत्छन ने श्रीरामचन्द्र को साक्षात् परमात्मा के अवतार के रूप में चित्रित किया है। श्रीराम की विशेषताएँ उनके कवि मन को भक्तिभाव प्रवण बनाती हैं। निश्चय ही यह कृति अमर है और वह मलयालम भाषा के सौभाग्य हैं।

'दूरूपत्तिनालु वृत्तम' रसपूर्ण कीर्त्तन कृति है। इसमें पच्चीस छन्द और आठ सौ से अधिक पद्य हैं। इसका उपजीव्य वाल्मीकि रामायण है। इसके प्रणेता के सम्बन्ध में एक मत नहीं है। कुछ विद्वान इसे एषुत्तछन की रचना मानते हैं।

'केरल वर्मा रामायण' मलयालम काव्य की उल्लेखनीय कृति है। इन्होंने श्रीराम को परमात्मा के अवतार के रूप में चित्रित किया है। श्रीराम वनवास प्रसंग का चित्रण बहुत भावनात्मक तथा मार्मिक है। 'पाताल रामायण' केरल वर्मा की महत्त्वपूर्ण श्रीराम सम्बन्धी काव्य रचना है।

'रामनाट्टम' कवि कोटटारक्करा तंपुरान की उल्लेखनीय राम कथा काव्य कृति है। 'इसमें आठ आट्ट कथाएँ' हैं—पुत्र कामेष्ठि, सीता स्वयंवर, विच्छिनाभिषेक, खर वध, बालि वध, तोरण युद्ध, सेतुबंध और युद्ध। इस काव्य कृति का मुख्याधार वाल्मीकि रामायण है। 'तोरण युद्ध' कृति का सर्वश्रेष्ठ भाग है।

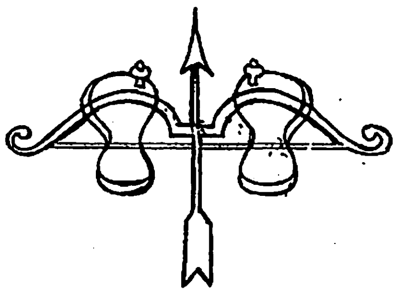
'रावण विजयम' रामायणोपजीवी आट्ट कथाओं की एक प्रमुख कृति है। यह रावण कथा पर आधारित एक उत्तम कृति है।

'रामचन्द्र विलासम' मलयालम के ख्यातिलब्ध कवि अषकत्तु पद्‌मनाभ कुरूप्य का महाकाव्य है। इसका मुख्य आधार विश्वकवि वाल्मीकि की रामायण है। विद्वान इसे मलयालम का प्रथम महाकाव्य मानते हैं। इसमें काव्य की प्रतिभा की व्यापक विवृत्ति हुई है।

कविश्री कुमारनाशान की 'बाल रामायण' और 'चिंताविष्टयाया सीता' दो उदाहरणीय राम कथा सम्बन्धी काव्य हैं। 'बाल रामायण' कवि की प्रारम्भिक रचना है। 'चिंताविष्टयाया सीता' में उनकी कवित्त्व सिद्धि की पराकाष्ठा के दर्शन होते हैं। इसमें एकाकिनी सीता द्वारा वाल्मीकि आश्रम में उपेक्षित जीवन व्यतीत करने का रोचक वर्णन मिलता है। सीता पाठकों में पर्याप्त संवेदना और सहानुभूति जगाने में सफल हैं। इस कृति के सम्बन्ध में डॉ. सुकुमार अषीक्कोड़ ने सही कहा—'आदि काव्य का बीज लेकर आशान ने आदि काव्य का फल काट लिया।'

'ताटका वधम आट्ट कथा' कवि वी. कृष्णन तंपी की महत्त्वपूर्ण रचना है। इसमें कवि की मर्मज्ञता, पाण्डित्य और नवोन्मेषी प्रतिभा के दर्शन होते हैं।

संक्षेप में मलयालम में राम कथा पाटट्टु, चंपु, किलिप्पाटट्टु, आट्ट कथा, महाकाव्य, खण्ड काव्य आदि अनेक विधाओं में महत्त्वपूर्ण लेखन हुआ है। अधुनातन काल में मलयालम में बराबर राम कथा सम्बन्धी कविताएँ लिखी जा रही हैं जिससे इस भाषा और साहित्य की दिनानुदिन समृद्धि हो रही है।



खण्ड-तीन

लीला तथा चरित

रामलीला का सर्वाधिक लोक-प्रिय प्रसंग : धनुषयज्ञ

डा. किशोरीलाल
इलाहाबाद (उ.प्र.)

लोक-नाटकों की परम्परा में रामलीला का सर्वाधिक स्पृहणीय, सरस एवं लोक-मान्यता प्राप्त प्रसंग धनुषयज्ञ है। धनुषयज्ञ के पश्चात् रामलीला दर्शकों की भीड़ शनैः-शनैः घटने लगती है और रावण-वध तक तो इसका आकर्षण प्रायः बहुत कम हो जाता है। इसी से उत्तर प्रदेश के इस लोक-प्रिय नाट्य रचना के लेखकों ने धनुषयज्ञ लीला के लिखने में जितनी रुचि प्रदर्शित की है और प्रतिभा का जितना उपयोग किया है, वह अन्य लीलाओं में विरल है। स्वयं कानपुर के रसिक-समाज के सभापति पं. ललिता प्रसाद त्रिवेदी 'ललित' ने 'सुमति मनरंजन नाटक' की रचना केवल धनुषयज्ञ लीला की ही दृष्टि से की थी। इसके पूर्व बन्दीदीन दीक्षित ने 'धनुषयज्ञ नाट्य' की रचना की थी जो वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई से सन् 1905 ई. में मुद्रित हुआ था। भदरस (कानपुर) में होने वाली धनुषयज्ञ लीला के लिए स्वयं ब्रजभाषा के श्रेष्ठ कवि राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने लोक-गीतों में धनुषयज्ञ लीला की रचना की थी। किसी समय मेरे संग्रह में यह पुस्तक थी, पर अब अप्राप्य है। इसमें ऐसे-ऐसे सरस और लोक-रुचि के संवर्द्धक लावनी आदि छन्द देखने को मिले थे–जिनसे लगता था कि राय साहब ने जन-मानस रंजनी-वृत्ति को खूद समझा था। आज भी मेरे मानस में उसके छन्द एक लम्बी अवधि बीत जाने पर भी गुंजरित होते रहते हैं! शिवशंकर लाल वाजपेयी कृत 'रामयश दर्पण' में भी धनुषयज्ञ लीला ही की प्रधानता है। कानपुर की रामलीला में इसका उपयोग अधिक होता है। किसी समय कैलाश मन्दिर में उक्त ग्रन्थ मिलता था पर बहुत समयों से यह अनुपलब्ध है। रींवा नरेश महाराज रघुराज सिंह के 'राम स्वयंवर' से भी इस बात का स्पष्ट साक्ष्य मिलता है कि इसमें धनुषयज्ञ लीला का विस्तार अधिक हुआ है, अन्य लीलाओं का कम। काशी में होने वाली रामलीला के लिए स्वयं महाराज उदितनारायण सिंह ने, महाराज रघुराज सिंह से इस ग्रन्थ को लिखवाया था क्योंकि धनुषयज्ञ जैसी लीला के लिए मानस में रोचक और जनरुचि के संवाद नहीं मिलते थे। धनुषयज्ञ लीला का जादू भारतेन्दु के मानस पर भी छाया हुआ था, फलतः उन्होंने भी रामलीला विषयक कई छन्द बनाए थे जिनमें धनुषयज्ञ लीला विषयक छन्द बड़े ही सरस और हृदयग्राही हैं। इस ग्रन्थों के अतिरिक्त दरभंगा निवासी वैष्णव जानकीदास के 'रामलीला सर्वसंग्रह' में भी धनुषयज्ञ लीला के ही छन्द संकलित हैं। मुंशी राम गुलाम के 'रामचरित्र दर्पण' और माता बदल गिरि-कृत 'राम रहस्य नाटक' में भी धनुषयज्ञ का ही लालित्य लक्षित होता है। 'वसुनायक रामायण' में भी धनुषयज्ञ लीला के छन्द अधिक रोचक हैं। धनुषयज्ञ लीला के जिस चार आकर्षक बिन्दुओं की चर्चा की जाती है, वे इस प्रकार हैं—

(1) जनक-बाजार,
(2) फुलवारी लीला,
(3) धनुष मखशाला,
(4) लक्ष्मण-परशुराम संवाद।

जनक-बाजार में नागरिक जीवन का उल्लासमय वातावरण ऐसे ढंग से प्रस्तुत होता है कि उससे दर्शकों की कौतूहल वृत्ति को विकसित होने का एक अच्छा अवसर मिलता है। अनेक दुकानदारों की संवाद योजना और तरह-तरह की वस्तुओं के परिगणन से सचमुच लोग आनन्द के प्रवाह में बहने लगते हैं। जनक-बाजार की वर्णन-शैली में कहीं सवैयों और कवित्तों की भरमार होती है और कहीं दादरा, ठुमरी लावनी, खेमटा और ग़ज़ल आदि की कलात्मक एवं मधुर ध्वनियों से कान भर जाते हैं। आइए, जनक-बाजार के हलवाई से आपकी भेंट कराएँ–

मोदक, जलेबी, सूतफेनी अरु कलाकन्द,
बर्फ़ी, दूध, जामुन, गुलाब के सुहाये हैं।
पट्टी और पिड़ाक माठ खुटिया औ खिलौना सबै,
सुन्दर कड़ाकदार गट्टा मन भाये हैं।।
खाँड़ और बतासा, खाजा, सेबढ़ू, सुपेड़ा भले,
खुरचन और लाची के दाना बनवाये हैं।
टुर्रा औ गोझावटी सबै भाँति-भाँतिन के,
हनूमान किंकरं भेंट आपके दिखाये हैं।।

हलवाई के पार्श्व में गन्धी की भी दुकान है–अब गन्धी 'ठुमरी ताल कहरवा' लय में क्या कह रहा है, उसे सुनिये–

''आओ-आओ जी हमारे प्यारे गन्धी की दुकान, हिना, चमेली, जुही, केवड़ा और इतरों की खान।
नर्गिस चम्पा और पामड़ी कीजै सब पहचान।।
।।आओ.।। खस, गुलाब, अम्बर अरु बेला मोतिया लीजै जान।''

इस बाज़ार में पान-विक्रेता भी दूर नहीं था। दशरथ राजकुमारों को देखकर वह भी चुप नहीं रहा और कहने लगा–

''ए हो अवधेश लाल!
आइके दुकनियाँ, मोहूँ काँ तनक निहाल किये जाव—नाथ मोहूँ काँ०
मगही, कपूरी, ककेर ओर महेवा, सेंउढ़ा टिकरी के पान खाय जाव।
—नाथ मोहूँ काँ० ''

इसके साथ ही माली द्वारा वर्णित उनके पुष्पों का विवरण भी प्रस्तुत है, जिसमें कवि की अनुप्रासप्रियता की एक अच्छी झलक मिलती है–

कमल, करंज, कुन्द, कुमुद, कचनार, केला,
कदना, कदम्ब, केसर, केतकी के भाये हैं।

गेंदा और गुलाब, गुलदावरी, सुगुलेनार,
गुलबहार गुड़हर, गुलजाफ़री सुहाये हैं।
गुलखस, गुलफिरंग, खैरा, गुलशब्बो अहै,
सुर्रा, गुलमेंहदी, गुल लाची चुन लाये हैं।
चाँदनी, चमेली, चम्पा, चोप चीनी, चन्द्रकान्ति,
चोवा, कनक चम्पा नाथ हित लाये हैं।

माली के निकट रहने वाला ग्वाला भी अपने सामान को बेचने में कम कुशल नहीं है—लोकगीतों की शैली में प्रस्तुत उसका यह कथन कितना सरस है—

सुनि-सुनि नउँआँ तुम्हार रघुरैया, आजु अइलीं बीच बजार।
जनम सुफल भइले देख के चरनवाँ, लै लेव दहिया हमार॥

इसी प्रकार जनक बाजार लीला के अन्तर्गत ठठेर, कुँजड़ा, जौहरी, बिसाती, पुस्तक-विक्रेता, सर्राफ, बजाज आदि दुकानदारों की सुष्ठु संवाद योजना से समस्त वातावरण आनन्द एवं आह्लाद में परिणत हो जाता है।

फुलवारी-लीला के अन्तर्गत मालियों का संवाद, राम-लक्ष्मण का संवाद, राम का पुष्प-चयन, गौरी पूजन, राम और जानकी की शोभा का वर्णन राम के सौन्दर्य से अभिभूत सखी की दशा का उल्लेख तथा बगीचे के नाना प्रकार के पुष्पों आदि का विस्तृत एवं काव्योचित कथन आता है। फुलवारी-लीला का आरम्भ राम और लक्ष्माण की वार्ता से होता है। जनक की फुलवारी को देखकर लक्ष्मण जी का भी मन मोहित हो जाता है और वे राम से कहते हैं—

लखो बाग अनुराग जुत, अति सुखमा को जाल।
लखो ताल छबि माल यह, बिहरत विविध मराल॥

ऐसा कहते हुए उन्हें लगा कि 'श्री मिथिलाधिप के बर बाग में बारहु मास बसन्त बिराजै।' फुलवारी लीला का सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें वर्णित अनेक सुरभित पुष्पों की चर्चा के साथ ही प्रेम-तत्व की मार्मिक अभिव्यक्ति दर्शकों के मानस को झकझोर देती है। सचमुच जनक-बाग सुरेश के नंदन-वन से बढ़कर था तभी तो ललित कवि ने कहा है—'जनक सों राजत जनक जू को बाग ताके नन्दन सों लागै बन नन्दन सुरेश के।' इसी बाग में माली से भेंट होती है। माली समस्त बगीचे को आलोकित करने वाली जनक-नंदिनी का जो चित्र खींचता है, उसका वर्णन मेरे द्वारा रचित एक छन्द में देखें—

इन्दु, कुन्द, कुन्दनारु चम्प, चाँदनी सों शुभ्र,
कनक लता की सुषमा की प्रतिमा-सी है।
कास-भास कलित कपूर कल्प वृक्ष राज
कीरत मयंक दुति छन-छन नासी है।
बासी भयो सारदा कौं सकल सिंगार आज,
रती, रम्भा, मेनकाहू भई सब दासी हैं।

सखिन सहेलिन में चली जात सीता चारु,
बादर दरी में ज्यों चमक चपला-सी है।

इसी बीत राम फूल तोड़ने की इच्छा प्रकट करते हैं और इसके लिए माली का आदेश लेना चाहते हैं। कुल की मर्यादा भंग न हो, इसीलिए वे बिना पूछे बिरानी वस्तु नहीं लेना चाहते—महाराज रघुनाथ सिंह का तद्विषयक एक छन्द लें—

एहो महीपति माली सुनो गुरु पूजन के हित फूल उतारन।
आये इतै हम बन्धु समेत उतारैं प्रसून जो होई न बारन॥
कैसे कहे बिन फूल चुनै मिथिलेश की वाटिका के मनहारन।
वस्तु बिरानी को पूछे बिना रघुराज जू लेव न वेद उचारन॥

भगवान् राम की ऐसी कोमल और मर्यादाबद्ध वाणी को सुनकर माली गद्गद हो जाता है और कहता है कि 'रघुराज कहूँ गड़ि जैहे लला पुहपान की पाँखुरी पायन में।' इसी समय बगीचे में दूसरी तरफ़ से आवाज़ आती है—'गिरिजा पूजन चलो सिया प्यारी।' इसी के बाद सखियों के समवेत स्वर में यह गीत मुखरित हो उठा—

बगिया में देखो बहार-बहार सिया प्यारी।
गेंदा, गुलाब, जैत, नरगिस फूले,
केला कदम कचनार-कचनार सिया प्यारी।
बगिया की देखो बहार-बहार सिया प्यारी॥

बगीचे में ही राम की अलौकिक शोभा देखकर सीता की एक सखी मोहित हो गयी। सखियाँ परेशान हैं और पूछती हैं कि तुम्हें क्या हो गया? अभी तो तुम फुलवारी में गयी थी। पर प्रेम विह्वला सखी के लिए तो 'गिरा अनैन नैन बिनु बानी' जैसी स्थिति हो गयी, वह बड़ी दबी जुबान से कहती है—

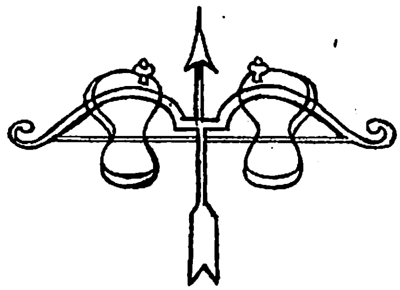
पूछति कहा है उतै कौतुक कहा है नहिं,
जात सो कहा है अबै जौन लखि पाई री।
विधि के सँवारे राजकुँवर पधारे प्यारे,
विश्व मनहारे धारे विश्व सुन्दराई री॥
साँवरे सलोने दूजे द्युति के दिमाकदार,
दृग तें न टारे टरैं मति सकुचाई री।
कहे न सिराई देखे ही जु बनि आई सखि,
आजु लौं न देखी जौन आजु देखि आई री॥

फुलवारी लीला के साथ ही 'धनुष मखशाला' इस लीला का एक विशिष्ट अंग है। यहाँ का राज-समाज और विभिन्न प्रकृति वाले आमन्त्रित राजाओं के परस्पर संवाद की वाक्पटुता अपने आप में बहुत ही बेजोड़ मानी जाती है। कम-से-कम रावण और बाणासुर का संवाद इस सन्दर्भ में बहुत प्रसिद्ध है। छोटे-छोटे छन्दों में कथन लाघव सचमुच सारहनीय है। एक नमूना लें–**'बाण न बात तोहीं कहि आवै', 'सोई कहौ जिय जोहि सो भावै।' 'का करिहौ हम योंही कहैंगे', 'हैहयराज करी सो करैंगे'** इसी से जुड़ा हुआ सखियों और सुनैना

रानी का संवाद भी है जिसमें **'रावण बाण छुआ नहिं चापा'** कहकर आत्मव्यथा का वह अनुभव करती है। सीता-जी की दशा तो और भी दयनीय है, वह राम के प्रेम में इतनी जकड़ गई हैं कि–आवेश में यहाँ तक कह उठती हैं कि धनुष टूटे या न टूटे वरण उन्हीं को करूँगी—देखें, एक छन्द–

मो मन मैं निहचै सजनी यह तातहुँ तें, प्रन मेरो महा है।
सुन्दर स्याम सुजान सिरोमनि मो हिअ मैं रमि राम रहा है।
रीति पतिव्रत राखि चुकी मुख भाखि चुकी अपने दुलहा है।
चाप निगोड़ौ अवै जरि जाहु चढ़ौ तो कहा न चढ़ौ तो कहा है।।

धनुष-यज्ञ का अन्तिम प्रभावशाली प्रकरण लक्ष्मण-परशुराम संवाद है जिसे देखने के लिए गाँवों और नगरों से आई हुई जनता आधी रात तक जागती रहती है। क्रोध की मूर्ति परशुराम को देखकर जनता इनके संवाद को सुनने के लिए बड़े उत्कण्ठित भाव से बैठी रहती है। **'तेहि अवसर सुनि कर धनुभंगा। आये भृगुकुल कमल पतंगा।'** से सारी सभा में खलबली-सी मच जाती है। उस समय डरपोक राजाओं की मुखाकृति देखने योग्य होती है। लक्ष्मण का व्यंग्य-विनोद और काट-छाँट वाले उत्तर-प्रत्युत्तर से आनन्द और विनोद का एक अजीब वातावरण पैदा हो जाता है। और परशुराम का रह-सहकर मारने को दौड़ना और लकड़ी के तख्त पर अपनी खड़ाऊँ को पटकना आदि दर्शकों को आनन्द से झंकृत कर देता है और वह धनुषयज्ञ लीला ही क्या जिसमें एकाध लकड़ी का तख्त परशुराम की खटाऊँ से टूट न जाए। निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि धनुषयज्ञ लीला अपने कई मार्मिक प्रसंगों के कारण आज भी जन-मानस में अपना स्थान बनाए हुए है। अतः चल-चित्रों और मनोरंजन के विविध साधनों के होते हुए भी इस लीला का संस्कार आज भी जन-मानस से मिट नहीं सका है।



सूर्पणखा का प्रसंग एवं खरदूषण-वध

रामदेव प्रसाद सोनी
इलाहाबाद (उ.प्र.)

सूर्पणखा का असली नाम बज्रमणि था। सूप की भाँति बड़े-बड़े नाखूनों के कारण इसे लोग सूर्पणखा कहते थे (वयंरक्षामः, सूर्पणखा खण्ड-54 देखें)। इसका विवाह कालखंजवंशी विद्युज्जिह्व नामक राक्षस से हुआ था। (देखें अध्याय रा. 7/2/38-39)। ब्रह्मचक्र के अनुसार यह अपनी दो पुत्रियों के साथ लंका व किष्किन्धापुरी की सीमाओं की रक्षा करती थी।

वाल्मीकि रामा./7/9/6-35 के मध्य आई कथा के अनुसार सुमाली नामक राक्षस की पुत्री कैकसी और विश्रवा मुनि से रावण, कुम्भकर्ण, सूर्पणखा व विभीषण का जन्म हुआ था। इस प्रकार सूर्पणखा रावण की सगी बहन हुई।

परन्तु विश्रामसागर रामायण खण्ड अध्याय एक के अनुसार सूर्पणखा के पिता तो विश्रवा मुनि थे परन्तु माता का नाम 'माया' था। इसके अतिरिक्त महाभारत, वनपर्व, अध्याय-275 के अन्तर्गत यह कथा प्राप्त होती है कि विश्रवा मुनि को प्रसन्न करने के लिए कुबेर ने तीन अत्यन्त सुन्दरी राक्षस कन्याओं क्रमशः पुष्पोत्कटा, राका व मालिनी को नियुक्त किया। विश्रवा मुनि जब इनकी सेवा से प्रसन्न हुए तो इन्हें महापराक्रमी पुत्र होने का वरदान दिया। तब पुष्पोत्कटा से रावण व कुम्भकर्ण तथा मालिनी से विभीषण जी व राका से खर व सूर्पणखा उत्पन्न हुए।

पद्म पुराण, पाताल खण्ड के अनुसार कैकसी विद्युन्माली दैत्य की पुत्री थी और इसी से रावण, कुम्भकर्ण व विभीषण हुए। कुछ स्थानों पर विभीषण की माता का नाम 'केसी' भी बताया गया है।

जब सूर्पणखा का पति एक युद्ध में भ्रमवश रावण द्वारा ही मारा गया तो सूर्पणखा बहुत रोयी। इस पर रावण ने खर-दूषण व त्रिशिरा के साथ 14000 महापराक्रमी राक्षसी सेना प्रदान कर इसे दण्डकारण्य का राज्य दिया। यह स्वेच्छाचारिणी अपने स्वाधीन बल से सर्वत्र घूमती रहती थी। एक दिन सूर्पणखा ने पंचवटी के पास गौतमी नदी के किनारे श्रीराम जी के चरणों के चिह्न जिनमें कमल, वज्रादि अंकित थे, को बालू में बना हुआ देखा। ऐसे विचित्र चिह्नांकित चरण देखकर वह प्रभु के स्वरूप का आकलन कर मोहित हो गयी और उन्हीं चरण चिह्नों को देखते-देखते श्रीराम के आश्रम तक पहुँच गयी। देखें—अध्यात्म रामायण के निम्न श्लोक–

तस्मिन् काले महारण्ये राक्षसी कामरूपिणी।
विचचार महासत्त्वा जनस्थाननिवासिनी॥

एकदा गौतमीतीरे पंचवट्याः समीपतः।
पद्मवज्रांकुशांकानि पदानि जगतीपते॥
दृष्टा कामपरीतात्मा पादसौन्दर्यमोहिता॥
पश्यन्ती सा शनैरायाद्राघवस्य निवेशनम्॥

(अध्यात्म रा./3/5/1-3)

मानस पीयूष अरण्यकाण्ड में उल्लिखित एक कथा के अनुसार सूर्पणखा को विवाह के छठें दिन ही एक पुत्र हुआ। विद्युज्जिह्व को मारने के बाद रावण ने इस पुत्र को एक लोहे के पिंजड़े में बन्द कर दिया। एक बार जब पुष्प लेने गये लक्ष्मण जी पर यह राक्षस (सूर्पणखा का पुत्र) हँसा तो लक्ष्मण जी ने इसे अग्निबाण मारकर भस्म कर दिया। जब पुत्र के भस्म होने की सूचना नारद के माध्यम से सूर्पणखा को मिली, तो वह क्रोधित होकर श्रीराम के आश्रम पर गयी, परन्तु राघव का सौन्दर्य देखकर उन पर मोहित हो गयी।

श्री रामचरितमानस में वर्णित कथा इन कथाओं से मेल भले ही न खाये परन्तु उसकी अलौकिकता अन्य सभी ग्रन्थों में अत्यन्त सुन्दर है। गोस्वामी जी इस विवाद में नहीं पड़े कि सूर्पणखा किसकी पुत्री है? किसकी पत्नी है अथवा किसकी माता है, क्योंकि स्त्री का परिचय, जन्म होने पर अमुक व्यक्ति की पुत्री है, बड़ी होने पर विवाहोपरान्त अमुक व्यक्ति की पत्नी है, पुत्र होने पर अमुक की माता है, यही दिया जाता है। जैसे पार्वती जी का परिचय क्रमबद्धता से सीता जी ने स्तुति करते समय सबसे पहले उनके पिता का नाम लेकर दिया **'जय जय जय गिरिराज किसोरी।'** यहाँ पार्वती जी को पर्वतराज की पुत्री कहा गया, फिर **'जय महेस मुखचन्द चकोरी'** भोलेनाथ की पत्नी होने का संकेत है, फिर **'जय गजबदन षडानन माता'** कहकर पुत्रों से पार्वती का परिचय मिला। परन्तु गोस्वामी जी ने सूर्पणखा का परिचय इन सबसे न देकर एक नयी बात लिख दिया कि जो स्वेच्छाचारिणी हो, जो किसी के प्रतिबन्ध में नहीं हो, जिस पर किसी का नियन्त्रण नहीं है वह किसी की पुत्री, पत्नी और माँ कैसे हो सकती है, पुत्री पिता के, पत्नी पति के, माँ बेटे के देखरेख में रहती है परन्तु इस पर तो इनमें से किसी का भी नियन्त्रण नहीं है क्योंकि यह किसी का कहना नहीं मानती इसलिए यह कौन है? गोस्वामी जी लिखते हैं—

सूपनखा रावन कै बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी॥
पंचबटी सो गइ एक बारा। देखि बिकल भइ जुगल कुमारा॥

(मानस 3/16-3-4)

सूर्पणखा रावण की बहन है, इसलिए स्वभाव भी रावण के अनुसार ही होगा। रावण भी **'देव जच्छ गंधर्ब नर किंनर नाग कुमारि। जीति बरी निज बाहुबल बहु सुन्दर बर नारि।'** अर्थात् रावण ने भी अनेकों स्त्रियों को जबरदस्ती अपनी पटरानी बनाया था, इसी प्रकार यह सूर्पणखा भी है, जहाँ सुन्दरता देखी, वहीं रीझ गयी। इसका स्वभाव रावण की तरह ही है इसलिए यह रावण की बहन कही गयी। **'पंचवटी सो गइ एक बारा'** पंचवटी कैसे पहुँची इसका वर्णन पूर्व में किया जा चुका है।

सूर्पणखा जब प्रभु के पास गयी तो गोस्वामी जी लिखते हैं कि **'देखि बिकल भइ जुगल कुमारा'** अर्थात् राम-लक्ष्मण दोनों को देखकर मोहित हुई। कैसी विचित्र स्थिति है, एक समय में एक ही व्यक्ति पर आकर्षित

होने की बात समझ में आती है परन्तु वह दोनों भाइयों पर एक साथ मोहित हो गयी, इसी कारण उसे **'माया मिली न राम'** राम-लक्ष्मण में से कोई भी नहीं मिल सका।

आध्यात्मिक दृष्टि से भी व्यक्ति तब तक प्रभु तक नहीं पहुँच सकता, उन्हें नहीं पा सकता जब तक मायावी संसार के जीवों से उसका मोह भंग न हो जाय। सूर्पणखा जीवाचार्य लक्ष्मण को भी चाहती है, उन पर भी मुग्ध है और ब्रह्म श्रीराम पर भी। ब्रह्म की प्राप्ति के लिए जीव के प्रति आकर्षण समाप्त ही करना होगा। जब तक परमात्मा के प्रति स्थिर एकांगी स्नेह उत्पन्न नहीं होगा उसकी प्राप्ति असम्भव है। इसलिए पूर्ण समर्पण भाव से जब **'मन क्रम बचन छाड़ि चतुराई'** उस प्रभु का स्मरण करोगे तो **'भजत कृपा करिहहिं रघुराई'**। परमात्मा की प्राप्ति में जीव बाधक है, इसलिए सूर्पणखा का एक साथ दोनों (राम-लक्ष्मण) पर मोहित होना ही उसके लिए भारी पड़ा।

सूर्पणखा प्रभु के पास गयी भी तो नकली रूप लेकर। प्रभु को वेष नहीं, भाव चाहिए **'भाव बस्य भगवान'**। आप जानते हैं कि प्रभु के पास नकली रूप लेकर जानेवाले प्रत्येक पात्र को येन-केन-प्रकारेण दण्ड मिला। जयन्त की आँख फूटी तो मारीच के प्राण गये और सूर्पणखा की स्थिति क्या हुई? बताने की आवश्यकता नहीं, आप सब जानते हैं कि उसे भी नाक-कान कटवाना पड़ा, भला मायापति से किसी की माया चल सकती है क्या? प्रभु का उद्घोष है कि **'निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट-छल-छिद्र न भावा।'** फिर प्रभु से छल करनेवाले की खैर कैसे रहे। सूर्पणखा ने भी अपना रूप बदला और–

रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई। बोली बचन बहुत मुसुकाई।।

(मानस-3/16/7)

सूर्पणखा प्रभु के पास जाकर अनायास ही बहुत हँसती है, उसने अपनी मुस्कान से अपने हृदय की बात व्यक्त करने का प्रयास भी किया, फिर बोल ही पड़ी और कहा–

तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी। यह सँजोग बिधि रचा बिचारी।।
मम अनुरूप पुरुष जग माहीं। देखेउँ खोजि लोक तिहु नाहीं।।
तातें अब लगि रहिउँ कुमारी। मनु माना कछु तुम्हहि निहारी।।

(मानस-3/16/8-10)

आगे सूर्पणखा ने यह भी कहा कि आप जैसा पुरुष और मेरी जैसी स्त्री संसार में कहीं नहीं है। यह संयोग विधाता ने बहुत ही विचार कर रचा है। प्रभु सुनते गये। परन्तु सूर्पणखा ने जो बात आगे कही उससे ही प्रभु को यह निश्चय हो गया कि यह राक्षसी है। सूर्पणखा ने कहा कि मैंने तीनों लोकों में खोज डाला परन्तु मेरे अनुरूप कोई पुरुष न दिखा इसीलिए मैं अभी तक कुआँरी ही रही, आज तुम्हें देखकर मेरा मन कुछ-कुछ तुम पर आसक्त हुआ है। सूर्पणखा का कहना है कि आज तक तीनों लोकों में मुझे ऐसा कोई भी नहीं मिला जिस पर मेरा किंचित् भी मन रमता, परन्तु तुम पर मेरा मन कुछ-कुछ आसक्त हो रहा है, इसलिए अब कहाँ तक खोजती रहूँ? सोचती हूँ तुम्हीं से सम्बन्ध कर लूँ **'मनु माना कछु तुम्हहि निहारी।'**

जो **'कोटि मनोज लजावनि हारे'** हैं, जिन्हें देखकर जनक जी का ब्रह्म सुख उनसे छूट गया **'बरबस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा'** और जिन्हें देखकर विश्वामित्र जी जैसे **'मुनि बिरति बिसारी'** उनके लिए सूर्पणखा कहती है **'मनु माना कछु तुम्हहि निहारी'** प्रभु पर एहसान लादना चाहती है।

श्रीराम तो सूर्पणखा के यह कहते ही कि **'देखेउँ खोजि लोक तिहु नाहीं'** यह समझ गये कि राक्षसों के अतिरिक्त इतनी शीघ्रता में तीनों लोकों का भ्रमण भला कौन करेगा? यद्यपि सूर्पणखा ने दोनों बातें असत्य कहीं, न तो वह तीनों लोकों में घूमी और न ही वह अविवाहित थी। वह तो विधवा थी, परन्तु इस झूठ के माध्यम से प्रभु को प्रसन्न करना चाहती है। सूर्पणखा की बात पर श्रीराम ने पहले तो सीताजी की ओर देखा कि तुम्हारा मन मेरे ऊपर आ गया है और मेरा मन तो सदैव इन्हीं (सीता जी) के पास रहता है **'सो मन सदा रहत तोहि पाहीं'** (राम का सन्देश जो हनुमान जी ने सीता से कहा)। इसलिए प्रभु ने सीताजी की ओर देखकर यह संकेत किया कि तेरा मन भले ही इधर-उधर भटकता हो परन्तु मेरा मन तो इनके पास से कहीं जा ही नहीं सकता। दूसरी बात राघव ने यह भी संकेत किया कि मेरे पास तो मेरी स्त्री है, इसलिए मैं तो तुझे स्वीकार नहीं कर सकता। हाँ, यदि तू चाहे तो जाकर लक्ष्मण से पूछ ले क्योंकि वे भी तो कामदेव को लज्जित करनेवाली सुन्दरता के स्वामी हैं–

सीतहि चितइ कही प्रभु बाता। अहइ कुआर मोर लघु भ्राता।

(मानस-3/16/11)

सीता की ओर देखकर प्रभु ने सूर्पणखा को यह भी संकेत दिया कि तू माया के रूप से मायारूपिणी सीता के पति, अर्थात् मायापति को पाना चाहती है, प्रभु का संकेत यह भी है कि जिसके पति को तू पाना चाहती है। वह राक्षस वंश के नाश का मूल है। प्रभु ने तो सूर्पणखा को देखा तक नहीं, सूर्पणखा की बात सुनकर राघव सीता की ओर देखने लगे, मानों वे जानकी का भाव भी देखना चाहते हों।

जब श्रीराम ने सूर्पणखा से यह कहा कि **'अहइ कुआर मोर लघु भ्राता'** (कुछ प्रतियों में कुआर के स्थान पर 'कुमार' शब्द पाया जाता है) तो सूर्पणखा ने इसका यह अर्थ लगाया कि श्रीराम ने यह कहा कि मेरा छोटा भाई लक्ष्मण अविवाहित है, प्रायः यही भाव सामान्य पाठक भी लगा लेते हैं और फिर इस पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं कि श्रीराम ने झूठ बोला? परन्तु गोस्वामी जी की शैली व भाव तथा अर्थगाम्भीर्य को बिना सन्त व सत्संगति के नहीं जाना जा सकता। ईश्वर ही सत्य है और सत्य ही ईश्वर है, राघव तो कभी झूठ बोले ही नहीं, वे झूठ बोलते भी क्यों? झूठ तो असमर्थ बोलते हैं सर्व समर्थ श्रीराम को झूठ बोलने की कभी आवश्यकता ही नहीं हुई। राजाओं के यहाँ पुत्रों को राजकुमार या कुमार विवाह के बाद भी कहा जाता है, यही नहीं, श्रीराम व लक्ष्मण को विवाह के बाद कई स्थानों पर 'कुअँर', 'कुमार' कहा गया है। जैसे–**एहि बिधि सबही देह सुखु आए राज दुआर। मुदित मातु परिछनि करहिं बधुन्ह समेत कुमार'** यहाँ विवाद के बाद श्रीराम व अन्य भाइयों को 'कुमार' कहा गया। यही नहीं, आगे भी देखें–**'तिन्ह पर कुँअरि कुअँर बैठारे'** (मा.-1/349/2) और भी देखें– यह शब्द तो राजा के पुत्रों के लिए प्रयुक्त ही किया जाता है। दूसरी बात प्रभु ने यह कहा कि जिसकी सुन्दरात से **'मार'** (कामदेव) भी (कुकुत्सित) लल्जित हो जाय, ऐसा मेरा छोटा भाई है, उससे जाकर पूछ लो।

तीसरी बात प्रभु भी तो **'शठे शाठ्यं समाचरेत'** की नीति अपना सकते हैं, क्षत्रिय हैं, नरलीला कर रहे हैं। जब सूर्पणखा विवाहित होकर अपने को कुआरी (कुआँरी) कह सकती है तो प्रभु ने यदि उसको उसी के अनुसार जवाब देकर लक्ष्मण को, (जिनके पास इस समय स्त्री नहीं है) कुआँरा कह दिया तो क्या गलत किया? प्रभु ने कहा जैसे तुम कुआँरी हो वैसे ही मेरा भाई भी कुआँरा है जाकर उससे पूछ लो। **'सबके उर अंतर बसहु जानहु भाउ कुभाउ'** वे तो सब के हृदय की जानते हैं।

जब सूर्पणखा ने देखा कि श्रीराम तो मेरी ओर देख तक नहीं रहे हैं और जो बात कह भी रहे हैं वह सीता की ओर देखकर रह रहे हैं तो उसने सोचा कि चलो इनकी इच्छा नहीं है तो न सही, छोटा भाई तो जैसा कि ये स्वयं कह रहे हैं कि कुआँरा है तो वह तो मान ही जायेगा। सूर्पणखा को प्रभु ने लक्ष्मण के पास इसलिए भी भेजा कि तेरा चयन गलत है, तू दुष्ट हृदया है, तेरा हृदय सर्पिणी की तरह है **'दारुन जसि अहिनी'** तो सर्पिणी की शोभा सर्प के ही पास है इसलिए मेरा भाई एक हजार फणवाला सर्प है (लक्ष्मण शेषनाग के अवतार थे) तू वहीं जा तेरा संयोग वहीं अच्छा रहेगा। राम की बात पर सूर्पणखा लक्ष्मण के पास गयी–

गइ लछिमन रिपु भगिनी जानी। प्रभु बिलोकि बोले मृदु बानी।।
सुंदरि सुनु मैं उन्ह कर दासा। पराधीन नहिं तोर सुपासा।।
प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा। जो कछु करहिं उनहि सब छाजा।।

(मानस-3/16/12-14)

सूर्पणखा जब लक्ष्मण जी के पास गयी तो लक्ष्मण जी तो सूर्पणखा के व्यवहार से ही यह समझ गये कि यह किसी सभ्य घर की स्त्री नहीं हो सकती, यह निश्चित रूप से राक्षस की ही पत्नी होगी। राक्षस प्रभु राम व लक्ष्मण के शत्रु हैं इसलिए लक्ष्मण ने सूर्पणखा को अपने शत्रु की बहन समझकर, बिना सूर्पणखा को देखे राघव की ओर देखते हुए 'प्रभु बिलोकि' लक्ष्मण जी बोले। श्रीराम की ओर देखने का कारण यह था कि, माया से बचना है तो प्रभु को देखते रहो। तुमसे प्रभु ही बचा सकते हैं। इसलिए लक्ष्मण जी श्रीराम की ओर देखकर सूर्पणखा से बोले–'सुन्दरी!' सूर्पणखा ने सोचा कि चलो इस छोटे कुमार ने मुझे सुन्दरी तो कहा। सूर्पणखा 'सुन्दरि' शब्द सुनकर प्रसन्न हुई। लक्ष्मण जी ने कहा–सुन्दरि! मैं तो प्रभु का दास हूँ, और तुम्हारा भाव दासी बनकर रहने का है नहीं, मेरे साथ तुम रानी या महारानी बनकर नहीं रह सकती। मैं तो प्रभु का दास हूँ अर्थात् सेवक हूँ, उनका नौकर हूँ इसलिए मेरे साथ संयोग बनाने से तुम्हें नौकरानी बनना पड़ेगा। मैं स्वयं प्रभु के अधीन हूँ और तुम स्वाधीन व स्वेच्छाचारिणी हो इसलिए हमारा तुम्हारा संयोग नहीं बन सकता। हाँ, प्रभु समर्थवान हैं वे जो चाहें कर सकते हैं। लक्ष्मण जी की यह बात सुनकर सूर्पणखा फिर प्रभु के पास गयी तो प्रभु ने उसे फिर लक्ष्मण के पास भेज दिया–

पुनि फिरि राम निकट सो आई। प्रभु लछिमन पहिं बहुरि पठाई।।

(मानस-3/16/17)

अब की बार तो लक्ष्मण जी ने सीधे-सीधे मना ही कर दिया और थोड़े स्पष्ट शब्दों में यह कह दिया कि–

लछिमन कहा तोहि सो बरई। जो तृन तोरि लाज परिहरई।।

(मानस-3/16/18)

इधर से उधर, उधर से इधर जा-जाकर सूर्पणखा का धैर्य टूट गया और उसे क्रोध आ गया, वह खिसिया गयी और अपने असली रूप में श्रीराम के पास पहुँची तथा भयंकर रूप रखकर सीता की ओर झपटी कि इसी के कारण राम ने मुझे वरण नहीं किया। जब यह नहीं रहेगी तब तो मुझे स्वीकारेंगे।

तब खिसिआनि राम पहिं गई। रूप भयंकर प्रगटत भई।।

(मानस-3/16/19)

अध्यात्म रामायण के अनुसार सूर्पणखा ने श्रीराम से कहा–

तच्छुत्वा पुनरध्यागाद्राघवं दुष्टमानसा।
क्रोधाद्राम किमर्थं मां भ्रामयस्यनवस्थितः।।
इदानीमेव तां सीतां भक्षयामि तवाग्रतः।।
इत्युक्त्वा विकटाकारा जानकीमनुधावति।।

(अध्यात्म रामा./अर.का./5/17-18)

अर्थात्–यह सुनकर यह दृष्टचित्ता राक्षसी फिर श्रीराम के पास आयी और क्रोधपूर्वक बोली–'हे राम! तुम बड़े चंचल चित्त हो, मुझे क्यों इधर से उधर घुमा रहे हो! मैं अभी तुम्हारे सामने ही इस सीता को खाये जाती हूँ।' ऐसा कहकर वह विकट रूप धारण कर सीता की ओर दौड़ी।

सीता को खाने इसलिए दौड़ी क्योंकि श्रीराम ने सूर्पणखा से कहा था कि–

रामः सीतां कटाक्षेण पश्यन् सस्मितमब्रवीत्।
भार्या ममैषा कल्याणी विधते ह्यनपायिनी।।
त्वं तु सा पत्न्यदुःखेन कथं स्थास्यसि सुन्दरि।
बहिरास्ते मम भ्राता लक्ष्मणोऽतीव सुन्दरः।।
तवानुरूपो भविता पतिस्तेनैव संचर।।

(अध्या. रा./3/5/12-13-14)

अर्थात्–(राम ने सूर्पणखा से कहा) तब रामचन्द्र जी ने नेत्रों से सीता जी की ओर संकेत करके मुस्कारकर कहा–'हे सुन्दरि! मेरी तो यह भार्या मौजूद है जिसको त्यागना असम्भव है। (इसके रहते) तुम जीवनपर्यन्त सौत की डाह से जलती हुई कैसे रह सकोगी? बाहर मेरा अत्यन्त सुन्दर भाई लक्ष्मण विराजमान है, वह तुम्हारे योग्य पति होगा, तुम उसी के साथ (वन-पर्वत आदि में) विहार करो।

श्रीराम ने सीता जी के लिए जो यह कह दिया कि यह मेरी भार्या है और इससे तुम्हें सौत का डाह होगा! यही सुनकर सूर्पणखा सीता को खाने के लिए दौड़ी। जब श्रीराम ने देखा कि यह तो हम दोनों की उपस्थिति में सीता पर आक्रमण कर रही है, इतनी निडर है तब **'सीतहि सभय देखि रघुराई। कहा अनुज सन सयन बुझाई।'** सीता को भयभीत देखकर श्रीराम ने लक्ष्मण जी को संकेत किया–क्या संकेत किया? इसका उल्लेख गोस्वामी जी ने वरवै रामायण में किया है–

वेद नाम कहि अँगुरिन खंडि अकास।
पठयो सूपनखहि लखन के पास।।

(बरवै रामा./3/28)

अर्थात् श्रीराम ने चारों अँगुलियों को आकाश की ओर उठाया और फिर खण्डित करने का संकेत किया। अर्थात्–चार अँगुलियों से चार वेद (श्रुति) का संकेत करने पर लक्ष्मण ने श्रुति से कान (कान को श्रुत्येन्द्रिय या श्रवणेन्द्रिय अथवा श्रवण भी कहते हैं) की ओर संकेत है यह समझा, और जब प्रभु ने आकाश की ओर उँगली उठायी तो शरीर में आकाश (शून्य) नाक का संकेत होता है, अस्तु शून्यवाचक आकाश से नाक का

संकेत लक्ष्मण को मिला। तब लक्ष्मण जी ने नाक व कान खण्डित करना है ऐसा संकेत समझकर सूर्पणखा के नाक-कान काट लिये। कैसे काटा यह उल्लेख नहीं किया, क्योंकि एक ही बाण से नाक व कान दोनों कटना सम्भव प्रतीत नहीं होता। श्रीमद्भागवत पुराण, 9/10/9, गरुड़ पुराण, एवं पद्म पुराण पातालखण्ड, अध्याय 36 व उत्तरखण्ड अध्याय—269, तथा देवी भागवत अध्याय 3/28 के अनुसार राम ने स्वयं सूर्पणखा के नाक-कान काटे थे।

परन्तु अध्यात्म रामायण में रामाज्ञा से लक्ष्मण ने बड़ी फुर्ती से तलवार से सूर्पणखा के नाक-कान काट लिये ऐसा उल्लेख मिलता है–

ततो रामाज्ञया खड्गमादाय परिगुह्यताम्।।
चिच्छेद नासां कर्णौ च लक्ष्मणो लघुविक्रमः।

(अध्या. रामा./3/5/19-20)

अर्थात्–जब लक्ष्मण जी ने रामचन्द्र जी की आज्ञा से उसे पकड़कर बड़ी फुर्ती से खड्ग लेकर उसके नाक-कान काट डाले। इससे स्पष्ट होता है कि सूर्पणखा के नाक-कान लक्ष्मण जी ने तलवार से काटे। कुछ आधुनिक विद्वान् सूर्पणखा का नाक-कान एक मर्यादा पुरुषोत्तम द्वारा काटने को अनुचित मानते हैं। उनका तर्क होता है कि वह तो विवाह प्रस्ताव लेकर गयी थी, राम उससे विवाह भले ही न करते परन्तु उसके नाक-कान क्यों काटे? परन्तु यह प्रश्न करते समय वे यह भूल जाते हैं कि सूर्पणखा का नाक-कान तब कटा जब वह खीझ कर सीता को ही खाने दौड़ी। दूसरी बात यदि वह वास्तव में राम पर आसक्त होती तो राम के कहने पर लक्ष्मण के पास जाकर प्रणय निवेदन क्यों करती? वास्तव में वह व्यभिचारिणी स्वेच्छाचारिणी थी, उसके अभीष्ट राम नहीं वरन् उसकी वासनात्मक वृत्ति थी। राम तो एक पत्नीव्रत हैं, उन्हें सूर्पणखा आकर्षित कर ही नहीं सकती थी। दूसरे, उसने छल से राम को नकली स्वरूप दिखाकर पाने का प्रयत्न किया। उसे यह नहीं मालूम कि श्रीराम को छल बिल्कुल ही स्वीकार्य नहीं **'मोहि कपट छल छिद्र न भावा।'**

एक सन्त ने तो यहाँ तक भाव दे दिया कि सूर्पणखा के नाक-कान राम या लक्ष्मण ने नहीं काटे वरन् उसने स्वयं ही अपने हाथों अपना नाक-कान काट डाला, कैसे? भाव है कि जब सूर्पणखा लक्ष्मण से विवाह का हठ करने लगी तो लक्ष्मण ने कहा कि यहाँ विवाह का उपयुक्त स्थान व सामग्री नहीं है। पहनाने के लिए वरमाला तक नहीं है यदि तुम्हें विवाह की जल्दी है तो आओ हम क्षत्रिय है और अस्त्र-शस्त्र ही हमारे आभूषण हैं, हम तुम्हें बाणों का एक माला पहनाकर गन्धर्व विवाह सम्पन्न कर लेते हैं। सूर्पणखा विवाह के लिए उतावली तो थी ही, सो तैयार हो गयी। लक्ष्मण जी ने एक माला तीक्ष्ण धारवाले बाणों की बनायी परन्तु इतनी छोटी कि वह आसानी से पहनी न जा सके, और जब वह माला लक्ष्मण ने सूर्पणखा के गले में डाला तो छोटी होने के कारण सूर्पणखा के सिर में फँसने लगी। लक्ष्मण खड़े-खड़े हँसने लगे। सूर्पणखा व्यग्रतावश स्वयं ही उस माला को जबरदस्ती सिर से गले तक लाने का प्रयास करने लगी। जैसे ही उसने उस बाणों की माला को अपने ही दोनों हाथों से कसकर नीचे किया और बाणों की माला तेजी से खींचा तो सूर्पणखा के नाक व कान दोनों ही उन तेजधार वाले बाणों से निर्मित माला से कट गये और वह चिल्लाती हुई वहाँ से भाग खड़ी हुई। अपने आप ही उसने अपने नाक-कान विवाह के उतावलेपन में काट लिया।

मात्र सूर्पणखा ही नहीं, ऐसी तमाम राक्षसियाँ वन में भटकती थीं और किसी भी सुन्दर पुरुष पर भोग की इच्छा से आसक्त हो जाया करती थीं। वाल्मीकि रामायण में वर्णन मिलता है कि वन में एक बार अयोमुखी नामक एक राक्षसी आकर अचानक लक्ष्मण जी से लिपट गयी और साथ में जन्मपर्यन्त रमण करते रहने का आग्रह करने लगी, तब लक्ष्मण ने उसे भी दण्ड दिया, उसके भी नाक-कान काट लिये।

श्रीराम तो आसुरी वृत्तियों के विनाशार्थ वन आये ही थे इसलिए उन्हें आतताइयों को दण्ड देना ही था। सूर्पणखा के नाक-कान कटे तो भागकर वह सीधे खर-दूषण के पास गयी। खर-दूषण ने 14,000 राक्षसी सेना के साथ श्रीराम पर आक्रमण कर दिया। खर-दूषण को वरदान प्राप्त था कि तुम लोगों की मृत्यु आपस में लड़कर मरने से ही होगी, अन्यथा तुम्हें कोई भी मार नहीं सकेगा। यह जानकर इन लोगों ने निश्चय कर लिया था कि हम कभी भी आपस में लड़ेंगे ही नहीं तो मरेंगे क्यों? इसलिए ये राक्षस कभी भी आपस में टकराते नहीं थे, इस कारण इन्हें कोई मार नहीं सकता था।

परन्तु श्रीराम से खर-दूषण की चालाकी नहीं चली। पहले तो खर-दूषण श्रीराम के स्वरूप पर ही मोहित हो गये और उन्हें युद्ध भूल गया–

प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी। थकित भई रजनीचर धारी।।
सचिव बोलि बोले खर-दूषन। यह कोउ नृपबालक नरभूषन।।
नाग असुर सुर नर मुनि जेते। देखे जिते हते हम केते।।
हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुन्दरताई।।
जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध लायक नहीं पुरुष अनूपा।।

(मानस-3/18/1-5)

परन्तु जब प्रभु पर आक्रमण करने के लिए कोई चढ़ ही आया हो तो उसे क्षमा कैसे मिल सकती है। खर-दूषण भी सीताम्बा को चाहते हैं, प्रभु कुपात्र व्यक्ति को अपनी भक्ति भला कैसे देते? प्रभु ने कहा, वह अर्थात् भक्ति स्वरूपिणी सीता तो मैं तुम्हें नहीं दे सकता। हाँ, जो मैंने किसी को नहीं दिया वह तुम लोगों को दे रहा हूँ। ऐसा कहकर प्रभु ने सबसे पहले अपने धनुष के टंकार से सम्पूर्ण राक्षसी सेना को बधिर कर दिया और फिर सभी राक्षसों को अपने समान मुख प्रदान कर दिया। सब आपस में एक दूसरे को 'राम' देख रहे थे, भयंकर संग्राम हुआ। वरदान के प्रभाव से राक्षस मर नहीं रहे हैं **'महि परत उठि भट भिरत मरत न करत माया अति घनी।'** श्रीराम तो सम्पूर्ण रहस्य समझ रहे थे इसलिए उन्होंने ऐसी माया किया सभी राक्षस एक-दूसरे में राम को ही देखने लगे। जब सभी को सामने वाला राक्षस राम दिखाई देने लगा तो अपने सामने वाले को राम समझकर राक्षस कठोर प्रहार करते और उसे मार देते, ऐसा करते हुए सभी राक्षस आपस में ही लड़कर मर गये–**'सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अति कौतुक कर्‌यो। देखहिं परसपर राम करि संग्राम रिपुदल लरि मर्‌यो।।'**

राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्वान।
करि उपाय रिपु मारे छन महुँ कृपानिधान।।

(मानस-3/20 (क))

जब सूर्पणखा ने देखा कि खर-दूषण, त्रिशिरा सहित 14,000 राक्षसी सेना को अकेले श्रीराम ने मृत्यु के मुँह में पहुँचा दिया तो उसी दशा में भाग कर रावण के पास पहुँची। **'धुँआँ देखि खर-दूषन केरा। जाइ सुपनखाँ रावन प्रेरा'**, रावण के पास पहुँचकर सूर्पणखा ने उसे अनेकों प्रकार से धिक्कारा। रावण ने सूर्पणखा की हालत देखकर पूछा–

कह लंकेस कहसि निज बाता। केइँ तब नासा कान निपाता।।

(मानस-3/21ख/2)

रावण के पूछने पर सूर्पणखा ने श्रीराम का जो परिचय प्रस्तुत किया उससे श्रीराम का कुल, कार्य व योजना सब उजागर हो गयी। परन्तु कहीं भी सूर्पणखा ने रावण को यह नहीं बताया कि मैंने भी कुछ गड़बड़ी किया इससे मेरी नाक व कान काटे गये, उल्टे कह दिया कि उन्होंने मुझे आपकी बहन समझकर मुझसे मजाक किया। वह कहती है–

अवध नृपति दसरथ के जाए। पुरुषसिंघ बन खेलन आए।।
समुझि परी मोहि उन्ह कै करनी। रहित निसाचर करिहहिं धरनी।।
जिन्ह कर भुजबल पाइ दसानन। अभय भए बिचरत मुनि कानन।।
देखत बालक काल समाना। परमधीर धन्वी गुन नाना।।
अतुलित बल प्रताप द्वौ भ्राता। खल बध रत सुर मुनि सुखदाता।।
सोभाधाम राम अस नामा। तिन्ह के संग नारि एक स्यामा।।
रूप रासि बिधि नारि सँवारी। रति सत कोटि तासु बलिहारी।।
तासु अनुज काटे श्रुति नासा। सुनि तव भगिनि करहिं परिहासा।।
खर-दूषन सुनि लगे पुकारा। छन महुँ सकल कटक उन्ह मारा।।
खर-दूषन-तिसिरा कर घाता। सुनि दससीस जरे सब गाता।।

(मानस-3/21ख/3-12)

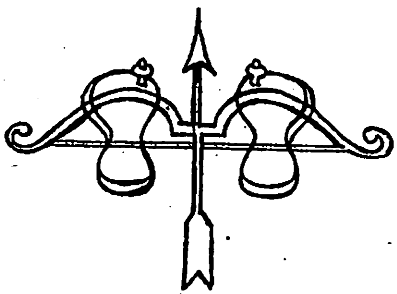
जब रावण ने सूर्पणखा से खर-दूषण व त्रिसिरा के वध का समाचार सुना तो हत्प्रभ रह गया। परन्तु फिर धैर्य धारण कर सूर्पणखा को ढाँढस बँधाया और रात्रि में जब अपने भवन पहुँचा तो उसे पूरी रात यही सोच-सोच कर नींद नहीं आयी कि **'खर-दूषन मोहि सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता।'** रावण विचार करता है कि कहीं भगवान् का अवतार तो नहीं हो गया, क्योंकि मेरे ही समान बली खर-दूषन को भगवान् के अतिरिक्त कोई अन्य मार नहीं सकता था। फिर विचारता है कि यदि भगवान् ने अवतार लिया होगा तो उनके हाथों मरने में ही कल्याण है क्योंकि इस तामसी शरीर से भजन तो होगा ही नहीं और यदि वे सामान्य राजा होंगे तो सूर्पणखा के कहने के अनुसार उनके पास एक सुन्दर स्त्री भी है, तब मैं उनकी स्त्री का हरण दोनों (राम-लक्ष्मण) को रण में जीतकर लाऊँगा–

सुररंजन भंजन महि भारा। जौं भगवंत लीन्ह अवतारा।।
तो मैं जाइ बैरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ।
होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा।।

जौं नररूप भूपसुत कोऊ। हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ।।

(मानस-3/22/2-5)

इस तरह अनेकों प्रकार से रावण के मन में अन्तर्द्वन्द्व उठता रहा और पूरी रात उसे नींद नहीं आयी। रावण निश्चय व अनिश्चय के बीच ही झूलता रहा। उसने यह भी विचार किया कि राम, राजकुमार हैं अथवा ब्रह्म इसका सही उत्तर मन नहीं दे सकता इसलिए रावण ने अपने हृदय की बात नहीं स्वीकारी क्योंकि हृदय तो कह रहा है कि खर-दूषण को मारने वाला भगवान् ही होगा, यदि वह हृदय की बात मानता तो व्यक्ति के हृदय में तो ईश्वर का ही अंश है वह असत्य बता ही नहीं सकता फिर रावण श्री राम को ब्रह्म मान लेता और सीता हरण की बात न सोचता, परन्तु वह तो निश्चय और अनिश्चय में फँस गया, और पहुँचा इस निष्कर्ष पर कि सत्य-असत्य का यथार्थ ज्ञान परीक्षा से ही हो सकता है। इसलिए सोचा कि चलकर देखना चाहिए कि असलियत क्या है? फिर रावण का मन सूर्पणखा के इस बात की ओर गया कि उसने कहा है–**'पुरुष सिंघ बन खेलन आए'** तो क्यों न शिकार की व्यवस्था करके चला जाय। ऐसा विचार कर अपनी योजना को मूर्त रूप देने के उद्देश्य से प्रभात होते ही अकेले लंका से अपने मामा मारीच के आश्रम की ओर चला। मारीच उस समय निराकार ब्रह्म की समाधि में रमे हुए थे।



सुन्दरी का श्राप

श्री रामकिशोर कपूर
शाहजहाँपुर (उ.प्र.)

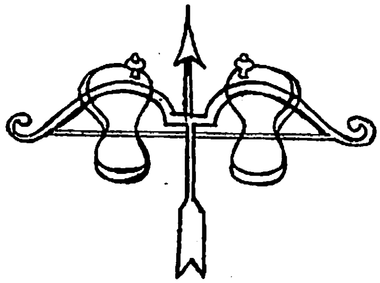
पौराणिक गाथाओं के अनुसार रावण जिसे दशानन भी कहा गया है, इतना पराक्रमी था कि उसने अपने बड़े भाई कुबेर से उनका राज्य (लंका), उनका पुष्पक विमान, समस्त पृथ्वी पर फैला वैभव और उनकी सबसे सुन्दर दासियों तक को छीन लिया और स्वयं लंका का राजा बन निरंकुशता से विरोधियों का दमन कर राज्य की सीमाएँ बढ़ा अपने को अत्यन्त बलवान मानने लगा, उसके पराक्रम और निष्ठुर व्यवहार के कारण उसके बड़े भाई कुबेर पुनः अलकापुरी में जा बसे, पृथ्वी पर छोटे-मोटे सरदार, मुखिया, राजे, नत-मस्तक हो उसे प्रणाम करने लगे और उसे सोना, चाँदी, कीमती वस्त्र, आभूषण, सुन्दर रमणियाँ, मणिकाएँ प्रदान करने लगे, जिसके कारण रावण लंका में अपने महलों में हर समय भोग-विलास में लिप्त रहने लगा; वह शंकर भगवान का अनन्य भक्त था जिसके कारण उसे सदेह स्वर्ग में जाने, जहाँ-तहाँ घूमने की पूरी छूट थी।

एक बार रावण अपने बड़े भाई कुबेर से मिलने अलकापुरी पहुँच गया, परन्तु उसके भाई कहीं और गये थे, अतः वह उनके महल में क्षणिक विश्राम कर, मौरेय आदि का सेवन कर नगर में स्वच्छन्द घूमने निकल पड़ा। कुछ ही दूरी पर महात्मा वृहस्पति का मकान दिखा जहाँ से उनकी नातिन बेदवती जो अत्यन्त खूबसूरत थी, दरवाजे से बाहर निकलते दिखाई दी, वह उस समय स्वर्ग लोक की कन्याओं में सबसे खूबसूरत थी , उसकी सुतवा नाक, साँचे में ढले अंग, तलवों को छूती घुँघराली काली केशराशि, कुन्दन-सा दमकता रंग, हिरणी सी आँखों ने रावण को पूर्णरूपेण उद्वेलित कर डाला, वह काम के आवेग से इतना व्याकुल हो गया कि उसने उस लड़की को घेर कर उससे रमण करने, विवाह करने का प्रस्ताव कर डाला, परन्तु उस लड़की ने बड़ी विनम्रतापूर्वक उससे कहा कि वह बचपन से इन्द्रदेव को वरण कर चुकी है, उन्हें ही अपने को समर्पित करना चाहती है, अतः वह उसका मार्ग छोड़ दे ताकि वह अपनी सहेलियों के घर जा सके।

परन्तु रावण ने कामान्ध हो उसे बालों से पकड़ कर अपने पास खींच, उसे अपने अंगों में भींच अपनी काम-पिपासा पूर्ण करने की चेष्ठा की, परन्तु उस लड़की ने रावण को जबरदस्ती करते देख, चिल्लाकर देवताओं से सहायता की याचना की, परन्तु रावण का सामना करने कोई घर से बाहर न निकला, विवशता में बेदवती ने रावण को अपने नखों से नोचना शुरू कर दिया और अपने दाँतों से कई जगह ऐसा काटा कि रावण के शरीर से खून निकलने लगा और इसी खींच-तान में वह रावण के बाहुपाश से छूट तेजी से भागकर दूर पहुँच गई, उसके दोनों भाई भी अपनी बहिन को बचाने हेतु हथियारों से सुसज्जित हो आ गये थे, परन्तु लड़की ने उन्हें प्रहार करने को रोककर कहा कि मैं रावण के स्पर्श से दूषित हो चुकी हूँ, अतः सती हो जाऊँगी; तुम शीघ्र मेरे

लिए अग्नि समाधि व्यवस्था करो, रह गया रावण से बदला और सजा वह मैं अपने तप बल के श्राप से दूँगी, कि यह शरीर छोड़कर मैं अगला शरीर पृथ्वी पर धारण करूँगी और ऐसी विडम्बनाएँ रचा डालूँगी कि इस नर-पिशाच रावण का समूचा कुल नष्ट हो जाय, कोई रोने वाला भी न रहे।

यह कह वह लड़की अग्नि में कूद पड़ी और रावण किंकर्त्तव्य-विमूढ़ की तरह उसके श्राप से थर-थर काँपता भावी आशंकाओं से घिरा लंका आकर सुधबुध-हीन हो गिर पड़ा।



खण्ड-चार

लोकनिष्ठा तथा कर्त्तव्य बोध

तुलसी का लोकसंग्रह

डा. रुचि वाजपेयी
इलाहाबाद (उ.प्र.)

काव्य-कला की उपयोगिता जनहित में है, ऐसी तुलसीदास जी की स्पष्ट धारणा है–

कीरति भनिति भूति भलि सोई,
सुरसरि सम सब कहँ हित होई।

इसीलिए विशाल जनसमुदाय निरन्तर उनकी दृष्टि में रहा है और उनकी प्रत्येक रचना में लोकमंगल का पावन स्वर विद्यमान है। यद्यपि उन्होंने आत्मसुखाय या 'स्वान्तः सुखाय' काव्य-रचना की थी, परन्तु वे स्वयं सात्विक वृत्ति के थे, अतः उनका 'स्वान्तः सुखाय' काव्य 'सर्वजनहिताय' अर्थात् लोक-हित की भावना से परिपूर्ण बन गया है।

तुलसी की अनुभूति ऐसी नहीं जो एकदम सबसे न्यारी हो। 'विनय' में कलि की करालता से उत्पन्न जिस व्याकुलता या कातरता का उन्होंने वर्णन किया है वह केवल उन्हीं की नहीं है, समस्त लोक की है। इसी प्रकार जिस दीनता, निरवलम्बता, दोषपूर्णता या पापमग्नता की भावना की उन्होंने व्यंजना की है वह भी भक्त मात्र के हृदय की सामान्य प्रवृत्ति है। वह और सब भक्तों की अनुभूति से अविच्छिन्न नहीं; उसमें कोई व्यक्तिगत वैलक्षण्य नहीं।

गोस्वामी जी का काव्य लोक-संग्रह की ही पृष्ठभूमि पर निर्मित है, उनके कवि, भक्त और धर्मोपदेशक– इन सभी रूपों में यही तत्त्व प्रमुख रहा है। 'दोहावली' तथा 'रामचरितमानस' में वे धर्मोपदेष्टा और नीतिकार के रूप में हमारे सामने आते हैं। केवल एक 'रामचरितमानस' से ही जनसाधारण को नीति का उपदेश, सत्कर्म की उत्तेजना, दुःख में धैर्य, आनन्दोत्सव में उत्साह और कठिन स्थिति को पार करने का बल, सब कुछ प्राप्त होता है। यह उनके जीवन का साथी हो गया है।

तुलसीदास जी ने अपनी कविता में सत्य की विजय पर पूर्ण विश्वास व्यक्त किया है। उनका कहना है कि परिस्थितियाँ चाहे कितनी ही विपरीत हो जाएँ, अन्त में विजय सदैव सत्य की होती है। इसीलिए उन्होंने जनता को राम जैसा एक महानायक दिया और लोगों को आशा बँधाई कि–

जब-जब होहि धरम कै हानी। बाढ़हिं अधम असुर अभिमानी।।
तब-तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।

धर्म के सब पक्षों का ऐसा सामंजस्य जिससे समाज के भिन्न-भिन्न व्यक्ति अपनी प्रकृति, विद्या और बुद्धि के अनुसार धर्म का स्वरूप ग्रहण कर सकें, यदि पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित हो जाय तो धर्म का रास्ता अधिक सुगम हो जाय।

उपर्युक्त सामंजस्य का भाव लेकर गोस्वामी तुलसीदास जी की आत्मा ने उस समय भारतीय जन-समाज के बीच अपनी ज्योति जगाई जिस समय नए-नए सम्प्रदायों की खींचतान के कारण आर्य धर्म का व्यापक स्वरूप आँखों से ओझल हो रहा था। एकांगदर्शिता बढ़ रही थी। जो एक कोना देख पाता था, वह दूसरे कोने पर दृष्टि रखने वालों को बुरा-भला कहता था। ऐसे समय में भक्तवर गोस्वामी जी ने वर्ण धर्म, आश्रम धर्म, कुलाचार, वेदविहित कर्म, शास्त्रप्रतिपादित ज्ञान इत्यादि सबके साथ भक्ति का पुनः सामंजस्य स्थापित करके आर्य धर्म को छिन्न-भिन्न होने से बचाया। उन्होंने अपनी अलौकिक प्रतिभा के बल पर भगवान् राम के आदर्श चरित्र के भीतर धर्म के सब रूपों को दिखाकर, भक्ति का प्रकृति आधार खड़ा किया। जनता ने लोक की रक्षा करने वाले प्राकृतिक धर्म का मनोहर रूप देखा। उसने धर्म को दया, दाक्षिण्य, नम्रता, सुशीलता, पितृभक्ति, सत्यव्रत, उदारता, प्रजापालन, क्षमा आदि में ही नहीं देखा बल्कि क्रोध, घृणा, शोक, विनाश और ध्वंस आदि में भी उसे देखा। अत्याचारियों पर जो क्रोध प्रकट किया जाता है, असाध्य दुर्जनों के प्रति जो घृणा प्रकट की जाती है, दीन-दुखियों को सताने वालों का जो संहार किया जाता है, कठिन कर्त्तव्यों के पालन में जो वीरता प्रकट की जाती है, उसमें भी धर्म अपना मनोहर रूप दिखाता है। जिस धर्म की रक्षा से लोक की रक्षा होती है–जिससे समाज चलता है–वह यही व्यापक धर्म है। सत् और असत्, भले और बुरे दोनों के मेल का नाम संसार है। पापी और पुणयात्मा, परोपकारी और अत्याचारी, सज्जन और दुर्जन सदा से संसार में रहते आए हैं और सदा रहेंगे।

सुगुन छीर अवगुन जल ताता। मिलइ रचइ परपंच विधाता॥

ऐसी दुष्टता सदा रहेगी जो सज्जनता के द्वारा कभी नहीं दबाई जा सकती, ऐसा अत्याचार सदा रहेगा जिसका दमन उपदेशों द्वारा कभी नहीं हो सकता। संसार जैसा है, वैसा मानकर उसके बीच से एक-एक कोने को स्पर्श करता हुआ जो धर्म निकलेगा वहीं धर्म लोक-धर्म होगा। जीवन के किसी एक अंग मात्र को स्पर्श करने वाला धर्म लोक-धर्म नहीं। जो धर्म उपदेश द्वारा न सुधरने वाले दुष्टों और अत्याचारियों को दुष्टता के लिए छोड़ दे, उनके लिए कोई व्यवस्था न करे, वह लोक-धर्म नहीं, व्यक्तिगत साधन है। लेकिन तुलसी की साधना वैयक्तिक नहीं थी, वह लोक-कल्याण की साधना थी। इसीलिए वे सच्चे लोक-धर्म के संस्थापक हुए।

समाज में मूर्खता का प्रचार, बल और पौरुष का ह्रास, अशिष्टता की वृद्धि, प्रतिष्ठित आदर्शों की उपेक्षा कोई विचारवान् नहीं सहन कर सकता। गोस्वामी जी भी धर्म और समाज की यह दुर्दशा कब देख सकते थे? लोकविहित आदर्शों की प्रतिष्ठा फिर से करने के लिए, भक्ति के सच्चे सामाजिक आधार फिर से खड़े करने के लिए, उन्होंने रामचरित का आश्रय लिया जिसके बल से लोगों ने फिर धर्म के जीवनव्यापी स्वरूप का साक्षात्कार किया और उस पर मुग्ध हुए। 'कलिकलुष विभंजिनी' रामकथा घर-घर धूमधाम से फैली। हिन्दू धर्म में नई भक्ति का संचार हुआ। 'श्रुति सम्मत हरि भक्ति' की ओर जनता फिर से आकर्षित हुई।

'रामचरितमानस' के प्रसाद से उत्तर भारत में साम्प्रदायिकता का वह उच्छृंखल रूप अधिक न ठहरने पाया जिसने गुजरात आदि में वर्ग के वर्ग को वैदिक संस्कारों से एकदम विमुख कर दिया था, दक्षिण में शैवों और वैष्णवों का घोर द्वन्द्व खड़ा किया था। यहाँ शैवों और वैष्णवों में मारपीट कभी नहीं होती। यह सब किसके प्रसाद

से? भक्त-शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास जी के प्रसाद से। शैवों और वैष्णवों के विरोध के परिहार का प्रयत्न रामचरितमानस में स्थान-स्थान पर लक्षित होता है। उन्होंने शिव को राम का सबसे अधिकारी भक्त बनाया, पर साथ ही राम को शिव का उपासक बनाकर दोनों का महत्त्व प्रतिपादित किया। राम के मुख से उन्होंने स्पष्ट कहला दिया कि–

शिवद्रोही मम दास कहावै। सो नर मोहि सपनेहुँ नहिं भावै।।

रामचरित के सौन्दर्य द्वारा तुलसीदास जी ने जनता को लोक-धर्म की ओर जो फिर से आकर्षित किया, वह निष्फल नहीं हुआ। वैरागियों का सुधार चाहे उससे उतना न हुआ हो, पर परोक्ष रूप से साधारण गृहस्थ जनता की प्रवृत्ति का बहुत कुछ संस्कार हुआ।

महाकवि तुलसी ने अपने लोककल्याणकारी विचारों के आधार पर ही राजनीतिक क्षेत्र में भी रामराज्य का आदर्श स्वरूप प्रस्तुत किया। राजा राम का आदर्श वाक्य था–

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी।।

तुलसी का रामराज्य धर्म-राज्य है। इसका प्रभाव जीवन के छोटे-बड़े सब व्यापारों तक पहुँचने वाला है। इस राज्य की स्थापना केवल शरीर पर ही नहीं होती, हृदय पर भी होती है। उसकी रमणीयता के अनुभव से प्रजा आप-से-आप धर्म की ओर प्रवृत्त होती है। रामराज्य में–

बयरु न करउ काहु सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई।।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति रीती।।

लोग जो बैर छोड़कर परस्पर प्रीति करने लगे, वह क्या राम के 'बाहुबल के प्रताप से', 'दण्डभय से'? दण्डभय से लोग इतना ही कर सकते हैं कि किसी को मारें-पीटें नहीं; यह नहीं कि किसी से मन में भी बैर न रखें, सबसे प्रीति रखें। सुशीलता की पराकाष्ठा राम के रूप में हृदयाकर्षिणी शक्ति होकर उनके बीच प्रतिष्ठित थी। उस शक्ति के सम्मुख प्रजा अपने हृदय की सुन्दर वृत्तियों को कर स्वरूप समर्पित करती थी। केवल अर्जित वित्त के प्रदान द्वारा अर्थशक्ति खड़ी करने से समाज को धारण करने वाली पूर्णशक्ति का विकास नहीं हो सकता। भारतीय सभ्यता के बीच राजा धर्मशक्तिस्वरूप है–

तुलसी ने यह दिखाने की चेष्टा की है। यहाँ राजा सेवक और सेना के होते हुए भी शरीर से अपने धर्म का पालन करता हुआ दिखाई पड़ता है। यदि प्रजा की पुकार संयोग से उसके कान में पड़ती है, तो वह आप ही रक्षा के लिए दौड़ता है; ज्ञानी महात्माओं को सामने देख सिंहासन छोड़कर खड़ा हो जाता है; प्रतिज्ञा के पालन के लिए शरीर पर अनेक कष्ट झेलता है; स्वदेश की रक्षा के लिए रणक्षेत्र में सबसे आगे दिखाई पड़ता है; प्रजा के सुख-दुःख में साथी होता है। वह प्रजा के जीवन से दूर बैठा हुआ, उसमें किसी प्रकार का योग न देने वाला खिलौना या पुतला नहीं है। प्रजा अपने सब प्रकार के—उच्च भावों का, त्याग का, शील का, पराक्रम का, सहिष्णुता का, क्षमा का–प्रतिबिम्ब उसमें देखती है।

राजा के पारिवारिक और व्यावहारिक जीवन को देखने की मजाल प्रजा को थी–देखने की ही नहीं, उस पर टीका-टिप्पणी करने की भी। राजा अपने पारिवारिक जीवन में भी यदि कोई ऐसी बात पावे जो प्रजा को देखने में अच्छी न लगती हो, तो उसका सुधार आदर्श रक्षा के लिए कर्त्तव्य माना जाता था। सती सीता के चरित्र पर

दोषारोपण करने वाले धोबी का सिर नहीं उड़ाया गया; घोर मानसिक व्यथा सहकर भी उस दोष के परिहार का यत्न किया गया। सारांश यह है कि माता, पिता, सेवक और सखा के साथ भी जो व्यवहार राजा का हो, वह ऐसा हो जिसकी उच्चता को देख प्रजा प्रसन्न हो, धन्य-धन्य कहे। जिस प्रीति और कृतज्ञता के साथ महाराजा रामचन्द्र ने सुग्रीव, विभीषण और निषाद आदि को विदा किया, उसे देख प्रजा गद्‌गद हो गई–

रघुपति चरित देखि पुरवासी। पुनि पुनि कहहिं धन्य सुखरासी।।

देखिए, राजकुल की महिलाओं के इस उच्च आदर्श का प्रभाव जनता के पारिवारिक जीवन पर कैसा सुखद पड़ सकता है–

जद्यपि गृह सेवक सेवकिनी। बिपुल सकल सेवा बिधि गुनी।।
निज कर गृहपरिचरजा करई। रामचन्द्र आयसु अनुसरई।।

चित्रकूट में भरत की ओर से वशिष्ठ जी जब सभा में प्रस्ताव करने उठते हैं; तब राम से कहते हैं–

भरत बिनय सादर सुनिय करिय बिचार बहोरि।
करब साधुमत, लोकमत नृपनय निगम निचोरि।।

गोस्वामी जी अपने राम या ईश्वर तक को लोकमत के वशीभूत कहते हैं–

लोक एक भाँति को, त्रिलोकनाथ लोकबस,
आपनो न सोच, स्वामी सोच ही सुखात हौं।

जबकि दुनिया एक मुँह से तुलसी को बुरा कह रही है तब उन्हें अपनाने का विचार करके राम बड़े असमंजस में पड़ेंगे। तुलसी के राम स्वेच्छाचारी शासक नहीं; वे लोक के वशीभूत हैं। गोस्वामी जी के भीतर लोकसंग्रह का भाव कितना प्रबल था यह उपर्युक्त बातों से स्वतः स्पष्ट हो जाता है।

तुलसीदास जी पर स्त्रियों की निन्दा का महापातक लगाया जाता है; पर यह अपराध उन्होंने अपनी विरति की पुष्टि के लिए किया है। उसे उनका वैरागीपन समझना चाहिए। सब रूपों में स्त्रियों की निन्दा उन्होंने नहीं की है। केवल प्रमदा या कामिनी के रूप में दाम्पत्य रति के आलम्बन के रूप में की है–माता, पुत्री, भगिनी आदि के रूप में नहीं। इससे सिद्ध है कि स्त्री जाति के प्रति उन्हें कोई द्वेष नहीं था। अतः उक्त रूप में स्त्रियों की जो निन्दा उन्होंने की है, वह अधिकतर तो अपने जैसे और विरक्तों के वैराग्य को दृढ़ करने के लिए, और कुछ लोक की अत्यन्त आसक्ति को कम करने के विचार से। उन्होंने प्रत्येक श्रेणी के मनुष्यों के लिए कुछ-न-कुछ कहा है। उनकी कुछ बातें तो विरक्त साधुओं के लिए है; कुछ असाधारण गृहस्थों के लिए, कुछ विद्वानों और पण्डितों के लिए। अतः स्त्रियों को जो स्थान-स्थान पर बुरा कहा है उसका ठीक तात्पर्य यह नहीं कि वे सचमुच वैसी ही होती हैं; बल्कि यह मतलब है कि उनमें आसक्त होने से बचने के लिए उन्हें वैसा ही मान लेना चाहिए। किसी वस्तु से विरक्त करना जिसका उद्देश्य है वह अपने उद्देश्य का साधन उसे बुरा कहकर ही कर सकता है। अतः स्त्रियों के सम्बन्ध में गोस्वामी जी ने जो कहा है, वह सिद्धान्त वाक्य नहीं है।

तुलसीदास जी कार्यक्षेत्रों के प्राचीन विभाग के पूरे समर्थक थे। पुरुषों की अधीनता में रहकर गृहस्थी का कार्य सँभालना ही वे स्त्रियों के लिए बहुत समझते थे। उन्हें घर के बाहर निकालने वाली स्वतन्त्रता को वे बुरा समझते थे। पर यह भी समझ रखना चाहिए कि **'जिमि स्वतन्त्र होइ बिगरहिं नारी'** कहते समय उनका ध्यान ऐसी ही स्त्रियों पर था जैसी कि साधारणतः पाई जाती हैं, गार्गी और मैत्रेयी की ओर नहीं।

अब रहे शूद्र। समाज चाहे किसी ढंग का हो, उसमें छोटे काम करने वाले तथा अपनी स्थिति के अनुसार अल्प विद्या, बुद्धि, शील और शक्ति रखने वाले कुछ-न-कुछ रहेंगे ही। तुलसी का विचार था कि ऊँची स्थिति वालों के लिए जिस प्रकार इन छोटी स्थिति के लोगों की रक्षा और सहायता करना तथा उनके साथ कोमल व्यवहार करना आवश्यक है, उसी प्रकार इन छोटी स्थिति वालों के लिए बड़ी स्थिति वालों के प्रति आदर और सम्मान प्रदर्शित करना। ब्राह्मण और शूद्र, छोटे और बड़े के बीच कैसा व्यवहार वे उचित समझते थे, यह चित्रकूट में वशिष्ठ और निषाद के मिलने में देखिए–

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि तें दण्ड प्रनामू।।
रामसखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुठत सनेह समेटा।।

केवट अपनी छोटाई के विचार से वसिष्ठ जैसे ऋषिवर को दूर से ही दण्डवत् करता है, पर ऋषि अपने हृदय की उच्चता का परिचय देकर उसे बार-बार गले लगाते हैं। वह हटता जाता है, वे उसे 'बरबस' भेंटते हैं। इस उच्चता से किस नीच को द्वेष हो सकता है? यह उच्चता किसे खलने वाली हो सकती है?

वस्तुतः तुलसी की समाज सम्बन्धी धारणाएँ भी अत्यन्त सन्तुलित व कल्याणकारी थीं। यदि समाज के सभी वर्ग अपना-अपना कर्त्तव्य ईमानदारी से निबाहें, तो संघर्ष कम-से-कम होगा और लोक में सुख-शान्ति स्थापित होगी।

गोस्वामी जी की भक्ति-पद्धति और उनका साधुमत भी लोक-संग्रहकारी सिद्ध होता है। यद्यपि सच्चे ज्ञान और सच्ची भक्ति में गोस्वामी जी कोई भेद नहीं मानते। उनके अनुसार जो सच्चा ज्ञानी है वह सच्चा भक्तिरसिक हुए बिना नहीं रह सकता और जो सच्चा भक्त है उसका भी संशयोच्छेदक सद्ज्ञानी बन जाना अनिवार्य है। लेकिन फिर भी जन-कल्याण की दृष्टि से तुलसी ने भक्ति को अधिक महत्त्व दिया क्योंकि सर्वसाधारण के लिए यही मार्ग उत्तम और प्रशस्त माना गया है। यह मार्ग निवृत्ति से नहीं वरन् प्रवृत्ति से प्रारम्भ होता है, त्याग से नहीं वरन् संग्रह से प्रारम्भ होता है, अपने अहंकार और तज्जन्य वासनाओं के दमन करने से नहीं, वरन् उन सबको आदर्श पूर्णत्व की ओर–भगवान् की ओर–प्रेरित कर देने से होता है। अतएव तुलसीदास जी ने अन्तःकरण की सामान्य से अधिक उच्चता सम्पादन के लिए शीलोत्कर्ष की साधना का एक अभ्यास मार्ग निकाला। उन्होंने राम के रूप में शील के असामान्य उत्कर्ष को प्रेम और भक्ति का आलोक बनाया, क्योंकि शील ही हृदय की वह स्थायी स्थिति है जो सदाचार की प्रेरणा आप-से-आप करती है।

तुलसी ने अपने साधुमत का रूप अनेक दर्शनों के उन तत्त्वों के आधार पर निर्धारित किया था, जो उन्हें अधिक अच्छे और लोक-कल्याणकारी प्रतीत हुए थे। उन्होंने जीव के स्वरूप पर विचार करते हुए यह दार्शनिक मत स्वीकार किया था कि वह ब्रह्म से पृथक् नहीं है। वे **'ईश्वर-अंश जीव अविनाशी'** के सिद्धान्त में विश्वास करते थे। तुलसी का मत है कि सांसारिक दुःखों का मूल कारण अपने मन में समाए हुए विकार तथा वह द्वैत-भावना है जो 'मैं-पर' का भेद करती है। स्पष्टतः तुलसी का यह साधु-मत लोकहित की भावना से परिपूर्ण है। लोक-जीवन के सभी दुःख और क्लेश स्व-पर के द्वन्द्व के कारण हैं। अनेक सामाजिक संघर्षों की नींव इसी भेद-भाव के कारण पड़ती है। तुलसी का कहना है कि मनुष्यों को अपनी सामाजिक भावना इतनी विस्तृत एवं व्यापक बनानी चाहिए कि स्व-पर का भेद-भाव जागतिक दुःखों को जन्म न दे।

तुलसी के साधु-मत की दूसरी सीढ़ी यह है कि जीव मायावश स्वयं को ब्रह्म से भिन्न समझता है। 'माया' मिथ्या प्रतीति का नाम है। यह संसार मिथ्या है, माया के कारण इसकी सत्ता दृष्टिगोचर होती है। अतः जीव का 'देह, गेह' को अपना मानना भ्रम है। तुलसी के इस मत में भी स्पष्टतः साधु-मत और लोक-हित का समन्वय है। वे शरीर तथा घर-सम्पत्ति के अभिमान को मिथ्या बताकर लोगों का वह दम्भ समाप्त करना चाहते हैं, जो लोक-जीवन में अनेक अनर्थों की नींव डालता है, लोक-जीवन के अनेक कष्ट सांसारिक मोह से पैदा होते हैं। इसलिए तुलसी जीव को समझाते हैं कि–

जागु जागु जीव जड़। जोहै जग-जामिनी।
देह-गेह-नेह जानि जैसे घन-दामिनी।।

गोस्वामी जी का साधुमत, ईश्वर-भक्ति और नास्तिकता का आधार लेकर चला है। ये दोनों आधार भी लोकहित के सम्पादक हैं। आस्तिकता समाज में अनाचारों का आधिक्य नहीं होने देती। ईश्वर में विश्वास करने वाला व्यक्ति प्रायः पाप करने से डरता है।

ईश्वर-भक्ति प्राप्त करने के लिए तुलसी ने साधु संगति की आवश्यकता बतलाई है। लोकहित के लिए मनुष्यों को साधु सत्संग भी आवश्यक है। समाज में 'अनहित' की भावना का प्रसार कुसंग के कारण ही होता है। जिन लोगों को सत्संग प्राप्त होता है, वे प्रायः कुकर्मों का शिकार होने से बचे रहते हैं।

गोस्वामी जी ने भक्त के लिए आत्म-दोषों से अवगत रहना और उनके प्रक्षालन के लिए प्रयत्न करना भी आवश्यक माना है। आत्मदोष दर्शन की यह भावना साधुमत का अंग होने के साथ-साथ लोकहित की भी सूचक है। संसार में अनेक संघर्ष इसीलिए पैदा होते हैं कि मनुष्य अपने दोषों को न देखकर सदा दूसरों के दोषों का दर्शन करता है। मनुषय की यह कुप्रवृत्ति लोकहित में बाधक है। तुलसी का साधुमत इस कुप्रवृत्ति का नाश चाहता है।

तुलसीदास जी का मत है कि जब जीव को सन्त स्वभाव की प्राप्ति हो जाती है, तब वह सच्चे आत्मसुख में लीन हो जाता है। अतः वे स्वयं भी यह कामना करते हैं–

कबहुँक घैं यह रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा तें, सन्त-सुभाव गहौंगो।।

ये पंक्तियाँ केवल साधुमत की ही प्रतिपादक नहीं हैं बल्कि लोकहित के उद्देश्य से भी युक्त हैं।

गोस्वामी जी की 'विनय पत्रिका' ऐसे उदाहरणों से भरी हुई है, जिनसे उनका साधुमत तो प्रकाश में आता ही है, साथ ही उससे लोक-कल्याण का भी दिशा-निर्देशन होता है।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन से यह भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी ने धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, पारिवारिक आदि सभी क्षेत्रों में महान् आदर्शों की स्थापना द्वारा लोक-संग्रह का पथ प्रशस्त किया है।



केले की श्रृंगार चौकी



चाँदी की श्रृंगार चौकी



राजगद्दी में भाग लेते कलाकार



राजगद्दी पर कार्यक्रम प्रस्तुत करते कलाकार



राजगद्दी पर दीप प्रज्वलन



रथ पर विराजित श्री राम और श्री लक्ष्मण



रामलीला का दृश्य



रामदल की एक चौकी



रामदल की एक चौकी



रामदल की एक चौकी



धनुष यज्ञ



भरत मिलाप



हनुमान जी द्वारा संजीवनी बूटी लाना



भरत मिलाप पर कार्यक्रम प्रस्तुत करते कलाकार



राम लीला के कलाकार



राम बारात का दृश्य

महारानी सुमित्रा की कर्त्तव्य परायणता

देवदत्त शर्मा
अजमेर (राजस्थान)

रामायण के सभी चरित्र अपने-अपने स्थान पर श्रेष्ठ हैं। सभी चरित्रों की महत्ता एवं त्याग-भावना प्रेरणास्पद एवं लोकमङ्गलकारी है। फिर भी पौराणिक ग्रन्थों एवं साहित्यकारों ने कई चरित्रों को महत्त्वपूर्ण तो माना है, परन्तु जनमानस में उनकी वास्तविक निर्मल छवि को उजागर नहीं किया है।

रामयाण के स्त्री पात्रों में महारानी कौशल्या, कैकेई एवं सुमित्रा, तीनों का स्थान लोकमङ्गलकारी रहा है। इन तीनों के चरित्र की तुलना करना असमंजस में डालने वाला है। किसे सर्वोच्च स्थान दिया जाय। फिर भी, निष्कर्ष निकाला जाय तो कैकेई को श्रेष्ठ नारी कहा जा सकता है, जिसने स्वयं की अस्मिता को मिटाकर लोकमङ्गलकारी निर्णय लिया। कैकेई के पश्चात् निश्चित रूप से महारानी सुमित्रा के चरित्र की वन्दना करने को जी चाहता है। और महारानी कौशल्या की सहृदयता की तो किसी से तुलना की ही नहीं जी सकती है।

मेरे लेख का प्रसंग महारानी सुमित्रा के सम्बन्ध में है। सुमित्रा का चरित्र कृतज्ञतापूर्ण है। युगों तक सुमित्रा की छवि नारी की निर्मलता के रूप में प्रेरणास्पद मानी जायेगी। श्रीराम के कार्य को पूरा करने में लक्ष्मण की भूमिका की वास्तविक प्रेरणा स्रोत उनकी माता सुमित्रा ही थीं। सुमित्रा का लक्ष्मण को श्रीराम के साथ दण्डकारण्य भेजने का आदेश पुरातन रहस्य को उजागर करता है।

वस्तुतः सुमित्रा एक अभागिन नारी थीं। उनके जीवन के सारे स्वप्न अधूरे सिद्ध हुए क्योंकि वह महाराज दशरथ की दृष्टि में शायद उपेक्षिता थीं। यदि उनकी स्थिति अयोध्या में सम्मानजनक थी तो, वह महारानी कैकेई एवं कौशल्या की उदारता के कारण। इन दोनों ने ही सुमित्रा को अपनत्व एवं सम्मान देकर दशरथ की उपेक्षा से रक्षा की। महाराज दशरथ की दृष्टि में सुमित्रा मात्र राजनीति का एक हिस्सा थी।

सुमित्रा सिंघल देश के राजा सुमित्र की पुत्री थी। अयोध्या के सामने सिंघल की स्थिति नगण्य-सी थी। यही कारण था कि सुमित्र ने अपनी पुत्री सुमित्रा का विवाह दशरथ से करके अपने राजनीतिक सम्बन्धों को सुरक्षित बना लिया। प्राचीनकाल में पिता के राज्य की सुरक्षा हेतु पुत्रियाँ सदा ही मोहरा बनती आई हैं। सुमित्रा भी राजनैतिक मोहरा बन गई।

कौशल्या एवं कैकेई दोनों ने सुमित्रा को अपना स्नेह दिया। उनकी सहानुभूति ही सुमित्रा का सहारा बनी।

सुमित्रा के प्रति दशरथ की उपेक्षा उस समय स्पष्टतः परिलक्षित हुई जब पुत्रेष्टि यज्ञ के पायस (खीर) वितरण का समय आया। रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास ने सुमित्रा के प्रति दशरथ की उपेक्षा का उल्लेख यों किया है–

अर्ध भाग कौशल्यहि दीना। उभय भाग आधे कर कीन्हा।।
कैकेई कहँ नृप सो दयऊ। रह्यो जो उभय भागि पुनि भयऊ।।
कौशल्या कैकेई हाथ धरि। दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि।।

(बालकाण्ड)

अर्थात्, महाराज दशरथ ने पायस का आधा भाग महारानी कौशल्या को दिया। शेष का आधा भाग (चौथाई) कैकेई को दिया। शेष भाग के पुनः दो हिस्से करके कौशल्या एवं कैकेई के हाथों में रखा और उन्होंने वे भाग सुमित्रा को दिए।

स्पष्ट है कि महाराज दशरथ ने पायस वितरण में पक्षपात तो किया ही था, परन्तु महारानी सुमित्रा की तो पूर्णतः उपेक्षा कर दी। क्या वे स्वयं सुमित्रा को पायस नहीं दे सकते थे? वैसे तो यह चाहिए था कि पायस के समान तीन भाग करके तीनों रानियों में समान रूप से वितरित कर देते।

वस्तुतः पायस वितरण में भेदभाव करना नियोजित राजनीति थी। दक्षिण कौशल के महत्त्वपूर्ण राजघराने से आई कौशल्या को सम्पूर्ण का आधा पायस दे दिया। उससे कम शक्तिशाली राजघराने कैकेय देश की राजकुमारी कैकेई को चौथाई भाग दे दिया। सम्भवतः कैकेई के प्रति दशरथ की विशेष आसक्ति के कारण उसे चौथाई भाग दे दिया, वरन् कैकेई भी युद्ध में जीतकर लाई गई थी। और, छोटे राजकुल (निर्बल) की पुत्री होने के कारण सुमित्रा की उपेक्षा कर दी। महारानी कौशल्या एवं कैकेई की उदारता के कारण ही सुमित्रा को पायस मिल सका था। फलस्वरूप सुमित्रा को मातृत्व मिला। यही कारण था कि लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न का जन्म क्रमशः कौशल्या एवं कैकेई के द्वारा दिये गए पायस के कारण माना गया। सुमित्रा ने भी अपने पुत्रों को अपना न मानकर कौशल्या एवं कैकेई के पुत्रों के रूप में स्वीकार किया। उसी भावना से उनका पालन किया।

बड़े पुत्र लक्ष्मण का झुकाव श्रीराम के प्रति इसलिए किया कि कौशल्या के हाथ से दिए पायस के कारण लक्ष्मण को श्रीराम का अंश माना। इसी भाँति शत्रुघ्न को भरत का अंश मानकर उसका झुकाव भरत की ओर रखा। सम्भवतः यही कारण रहा होगा कि **राम-लक्ष्मण** की जोड़ी एवं भरत-शत्रुघ्न की जोड़ी बन सकी। गोस्वामी जी ने भी मानस में यही संकेत दिया है–

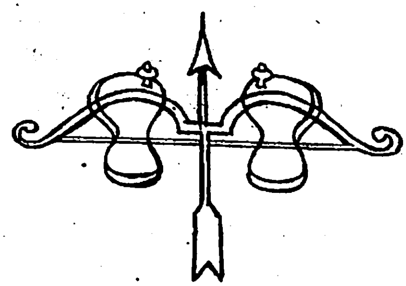
बारेहि ते निज हित पति जानी। लछिमन-राम चरन रति मानी।।
भरत शत्रुघ्न दूनऊ भाई। प्रभु सेवक जसि प्रीति बड़ाई।।

अवसर आने पर सुमित्रा ने अपनी ममता को भी कौशल्या एवं कैकेई के हित में न्यौछावर कर दिया। जब श्रीराम को अयोध्या का राज्य छोड़कर दण्डकारण्य जाना पड़ा तो बिना संकोच के, बिना हिचकिचाए सुमित्रा ने सहर्ष श्रीराम के साथ लक्ष्मण को भेज दिया। सुमित्रा ने लक्ष्मण को सीख दी–

उपदेशु यहु जेहिं तात तुमरे राम सिय सुख पावहीं।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं।।
तुलसी प्रभुहि सिख देई आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।
रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित-नित नई।।

सुमित्रा का चरित्र निःसन्देह कृतज्ञता एवं कर्त्तव्यपरायणता का रहा। कैकेई के प्रति भी उसने अपना कर्त्तव्य निभाया। कैकेई की सहानुभूति एवं स्नेह के कारण वह उसके प्रति कृतज्ञ थी। वस्तु-स्थिति से अनभिज्ञ जन-मानस कैकेई के विरुद्ध था। भरत पर कोई विपत्ति न आ जाय, अतः सुमित्रा ने शत्रुघ्न को भरत का सहायक बनाया। अन्यथा, जब भरत श्रीराम को वनवास से लौटाने गए तब वे शत्रुघ्न को भी श्रीराम के साथ भेज सकती थीं। चूँकि कैकेई के हाथ से दिए पायस के कारण सुमित्रा शत्रुघ्न को भरत का अंश मानती थी, अतः शत्रुघ्न को भरत के साथ रखा।

कहना न होगा कि शत्रुघ्न ने चौदह वर्षों तक भरत के माध्यम से अयोध्या के राज्य की सुरक्षा करके माँ सुमित्रा के आदेश का पालन किया। सुमित्रा की कृतज्ञता वास्तव में वन्दनीय है। उसने भी अपने चरित्र के द्वारा लोकमङ्गलकारी कार्य में पूर्ण सहयोग दिया। युगों तक सुमित्रा का चरित्र प्रेरणास्पद रहेगा।



अवतरित हुई थीं। अतः क्षेत्र पति आदि ने उनसे कृपा-दृष्टि बनाये रखने हेतु प्रार्थनाएँ भी की हैं। ''सौभाग्यवती! हम तेरी वन्दना करते हैं कि तू हमारे लिए श्रेष्ठ फल देने वाली होवे। प्रत्येक वर्ष हमें धन-धान्य से भरभूर रखे। सूखपूर्वक हमारे लिए हल जोते। हे शुनःसीर हम लोगों को सुख प्रदान करो।''

रावण भी जानता था कि सीता कृषि की, कृषकों की अधिष्ठात्री देवी हैं और मिथिला के राजा को हल जोतते समय मिली थीं। अतः वह येन-केन-प्रकारेण किसानों की आस्था व विश्वास को अपनी धरोहर बनाकर रखना चाहता था और इसी कारण बाध्य होकर उसने सीता-हरण का काण्ड किया। सीता-हरण का प्रथम प्रतिरोध पक्षीराज जटायु ने किया, क्योंकि किसानों की तरह कृषि वनस्पति पक्षियों को भी प्रिय है और आवश्यकता है। जटायु ने ही राम को सीता-हरण का हाल सर्वप्रथम बताया।

उस पर राम का साधारण आदमियों जैसा आचरण, विलाप–'हे सीता तुम कहाँ हो', राम में विद्यमान मानवीय कमजोरियाँ दर्शाता है ताकि आम आदमी को वह साधारण आदमी ही दिखें और यही हाल चित्रकूट में पिता राजा दशरथ की मृत्यु के भी समाचार पर लोगों ने उनमें देखा। यही राम का गुण है कि उन्होंने हर प्रकार से अपने आपको धरती से जोड़े रखा, उनका दुःख-सुख सब धरती पर रहने वाले आदमी का चित्रण है। वह कहीं पर भी राजा या ईश्वर नहीं लगते। कल्पना कीजिए उस व्यक्ति की जिसकी प्यारी पत्नी अकारण उससे अलग कर दी गयी हो, फिर भी पीड़ा और अवसाद को सहेज कर विक्षिप्तता की स्थिति में तुलसी के अनुसार– **'पूछत फिरे लता तरु पाती'**, यानी राम साधारण मानव की तरह सूर्य से, वायु से, वृक्षों से, पक्षियों से, वन्य पशुओं से, आकाश से, लताओं से यहाँ तक कि धरती और पहाड़ से रुदन करके पूछते हैं, सीता कहाँ गयी है, क्या वह हर ली गयी है, मर गयी अथवा मार्ग में पड़ी है।

चेतना जागृत होने पर उन्हें सोच आता है कि बिना सीता के वह वापस अयोध्या कैसे जा सकेंगे और किस तरह अपनी माताओं से, भाइयों से, भावजों से, ससुरालियों से, आत्मीयजनों और साधारण ज़नता से आँख मिला सकेंगे; क्योंकि सभी तो उन्हें पराक्रमहीन समझेंगे, इस तरह राम अपने को धिक्कारते हुए कहते हैं—'मेरे जैसा बदनसीब इस पृथ्वी पर दूसरा न होगा कि एक दुःख बीतता नहीं दूसरा आ जाता है' और फिर इस प्रकार विलाप करते जब वह 'प्रश्रवण' पर्वत के पास से गुजरते हैं तो मन के अन्दर छिपे दर्प से दोहरे होकर वह चिल्ला कर कहते हैं कि 'हे पर्वत! मुझे बताओ कि क्या तुमने मेरी सर्वांग सुन्दरी सीता को देखा है, यदि तुम सही उत्तर न दोगे तो मैं तुम्हारे शिखरों को चूर-चूर कर डालूँगा।'

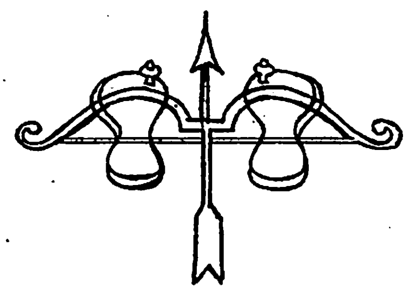
यह उनमें साधारण मनुष्य जैसी क्रोधवृत्ति का परिचायक है। शायद वह परमहंस नहीं थे, साधु-संन्यासी नहीं थे। फिर भी वह सरल भाव से भाई लक्ष्मण से कहते हैं कि 'शायद मेरी दयालुता ही मेरा दोष बन गयी है, सभी मुझे निर्बल समझकर परेशान कर रहे हैं। सौमित्र, मैं अपने शौर्य से आकाश को बाणों से ढँक दूंगा, पर्वत–शिखर मथ डालूँगा, समुन्दर का नाश कर दूँगा, ग्रहों की गति को रोक दूंगा, देवगण भी मेरा पराक्रम देखकर हैरान रह जायेंगे। अतः वह फौरन मेरी सीता को मुझे दें वरना मैं विध्वंस की ऐसी लीला रच डालूँगा कि तीनों लोकों के विनाश के साथ सभी देवता, पिशाच, राक्षस कोई न बचेगा।' राम का यह रौद्र रूप यज्ञ के समय लक्ष्मण के रौद्र रूप से ऊपर ही है।

ऐसा ही क्रोध राम ने समुद्र से पार उतरने की विनती करने के बाद दिखलाया था और कहा था—'आज या तो समुद्र से पार जाऊँगा या मेरे द्वारा समुद्र का संहार होगा।' उन्होंने यह भी कहा कि शान्ति, क्षमता, सरलता,

मधुर भाषण वाले पुरुषों के गुण जब गुणहीनों के साथ प्रयोग होते हैं तो वह उन्हें असमर्थ या कमजोर समझते हैं। सत्कार उसका करते हैं जो धृष्ट, दुष्ट, सर्वत्र त्राहि-त्राहि मचाने वाला और अच्छे-बुरे सभी पर दण्ड का प्रयोग करने वाला होता है, शान्ति से इस संसार में कुछ नहीं मिलता—न यश, न कीर्ति, न विजय।

राम का जीवन अति जनवादी है। वे गृहस्थ और राजकुमार होते हुए भी सामान्य आदमी के वस्त्रों में जटा-जूट के साथ 14 साल वनवास का संघर्षपूर्ण जीवन झेलते हैं, भूमि पर सोते हैं, झोपड़ी में रहकर, कन्द-मूल खा कर जीवन जीते हैं।

इस प्रकार राम का सम्पूर्ण जीवन संघर्षों की एक खुली किताब है जिसमें आदर्श की रक्षा हेतु अप्रिय सत्य—अपने सबसे प्रिय अनुज लक्ष्मण को शरीर त्यागने का आदेश, सीता की अग्नि परीक्षा और त्यागने का आदेश और महलों से दूर भिजवाना, अपने पुत्रों लव और कुश को अपने हाथों न पालने का दुःख, मृतक पिता को गोद न ले सकने का दुःख, गुरुदक्षिणा न दे सकने का कष्ट सदा उन्हें सताता रहा और एक आदर्श आदमी बन, जीकर दिखाने के तमाम संघर्षों और अवसादों ने उन्हें हमेशा घेरे रखा और उन पर हर प्रकार खरे उतर कर वह जनमानस के रोम-रोम में बस गये और मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाये।



खण्ड-पाँच

काव्य

पुनः धरा पर आओ राम

डा. त्रिलोकी सिंह
इलाहाबाद (उ. प्र.)

पाप-ताप-सन्ताप मिटाने,
पुनः धरा पर आओ राम॥
जन-जन का मन आज व्यथित है,
उनकी व्यथा मिटे कैसे?
अत्याचारी खूब बढ़े हैं,
फिर सुख-चैन मिले कैसे?
दुष्टों को दण्डित करके,
भक्तों के प्राण बचाओ राम।
पाप-ताप-सन्ताप मिटाने,
पुनः धरा पर आओ राम॥

सब अधर्म की ओर अग्रसर,
धर्म-मार्ग से विमुख हुए।
व्यर्थ विवादों में उलझे हैं,
कर्म-मार्ग से विलग हुए॥
सबको सच्चे धर्म-कर्म का,
आकर बोध कराओ राम।
पाप-ताप सन्ताप मिटाने,
पुनः धरा पर आओ राम॥

पिता-पुत्र, भाई-भाई में,
पति-पत्नी में कलह हो रहे।
ऐसा लगता है जैसे ये,
सम्बन्धों का भार ढो रहे॥
फिर से सबको प्रेम-भाव का,
आकर पाठ पढ़ाओ राम।
पाप-ताप सन्ताप मिटाने,
पुनः धरा पर आओ राम॥

दानवता समाज में फैली,
मानवता अस्तित्त्व खो रही।
करुणा, दया, सहानुभूति अब,
सिकुड़ी-सिमटी विवश हो रही॥
नैतिकता ही परम धर्म है,
आकर फिर समझाओ राम।
पाप-ताप-सन्ताप मिटाने,
पुनः धरा पर आओ राम॥

बिना तुम्हारे दीन-दुःखी को,
रघुनन्दन! अपनाये कौन?
जो अभिशप्त पड़े धरती पर,
तुम बिन उन्हें उठाये कौन?
पतितों और दीन-दुखियों को,
आकर गले लगाओ राम।
पाप-ताप-सन्ताप मिटाने,
पुनः धरा पर आओ राम॥

उठो! जगो! हे राष्ट्र-देवता!

डा. शिवनन्दन कपूर
खण्डवा (म.प्र.)

मेरी पावन मातृ-भूमि का कण-कण काशी, अणु-अणु शंकर।
करता है, आकाश वन्दना, नमित स्वर्ग है क्षितिज-क्षितिज पर॥
उज्ज्वल भाल हिमाचल, गिरि-गिरि हिम-किरीट, हीरक-नग विजड़ित,
यह विशाल आकाश शीश पर, जटा-जूट-सा प्रतिक्षण शोभित,
देखो नयन उठा पग-पग पर, चमक रहा है चन्द्र भाल पर॥ मेरी पावन...
हहर-हहर हहराती गंगा रज-रज के शिर पर चढ़-बढ़ कर,
लहर-लहर शिव-प्रतिमा बनती, बिन्दु-बिन्दु कहता है हर-हर,
गंगा-धर बन गया देश का कण-कण गंगा को धारण कर॥
रंग-रंग के सुमनों और विहगों वाले वन बाघम्बर,
सजते हैं विभूति से शुभकर, जीवन-दाता धौरे बादर,
नीलकण्ठ बन चुका देश यह हालाहल शत बार पचा कर॥ मेरी पावन...
हरे-भरे खेतों में आनन्द, नन्दी ही इसका वाहक है,
कार्तिकेय, गणपति से शत-शत सुत इन धरती के रक्षक हैं,
राष्ट्र-चेतना महादेव है, जन-गण-मन की शक्ति वरण कर॥ मेरी पावन...
यदि इसने वरदान दे दिया, कभी भूल से भस्मासुर को,
तो त्रिशूल लेकर पल भर में था विनष्ट कर दिया त्रिपुर को,
भूलें नहीं निशाचर, प्रलय हुआ करती इसके इंगित पर॥
उठो! जगो! हे राष्ट्र-देवता! संकट है अपनी सीमा पर॥

आओ मेरे राम!

सुधांशु दीक्षित
खीरी (उ. प्र.)

आओ मेरे राम! तुम्हें यह जग फिर आज बुलाता।
पंचवटी में जहाँ बनाई पर्णकुटी अलबेली।
सिसक रही है डाली-डाली कोयल व्याथित अकेली॥
नीरस हो तुलसी का चौरा कण-कण अश्रु बहाता।
आओ मेरे राम! तुम्हें यह जग फिर आज बुलाता॥
जहाँ धरा पर अरुणोदय-अनुराग जगा जाता था।
सामदेव के मधुर गान से जीवन स्वर पाता था॥
बिना तुम्हारे सब कुछ सूना, सूना मन अकुलाता।
आओ मेरे राम! तुम्हें यह जग फिर आज बुलाता॥
पहले कैसे होते थे नदियों के मधुर किनारे।
उन्हीं किनारों पर मरते मीनों के झुण्ड बिचारे॥
लोभग्रस्त हो गया मनुज जीवन को जहर पिलाता।
आओ मेरे राम! तुम्हें यह जग फिर आज बुलाता॥
सत्य अहिंसा और धर्म का कोइ न पालन करता।
सारा जग लगता अनाथ-सा कोई न पालनकर्त्ता॥
दम्भ द्वेष पाखण्ड यहाँ का प्रतिपल मुझे रुलाता।
आओ मेरे राम! तुम्हें यह जग फिर आज बुलाता॥

श्रीराम नाम महिमाष्टक

विद्यावारिधि डा. महेन्द्र सागर प्रचण्डिया
(डी. लिट्.) अलीगढ़ (उ. प्र.)

रघुकुल के प्रतिनिधि प्रमुख, रघुनंदन श्रीराम।
नाम लेत बनते सभी, बिगड़े सबके काम॥1॥

× × ×

राजा दशरथ के हुए, चार प्रतापी पुत्र।
लखन, भरत, शत्रुघ्नजी, पुजे राम सर्वत्र॥2॥

× × ×

तीन गुणों को धार कर, बने त्रिलोकीनाथ।
सुघर, शक्ति औ' शील को, सभी झुकाते माथ॥3॥

× × ×

धनुष बाण में शोभते, अलंकार बेजोड़।
तीन लोक में हैं नहीं, इस सरूप का तोड़॥4॥

× × ×

मर्यादा के आप हैं, पूजनीय प्रतिमान।
अन्तर्मन से पूजतें, होय त्वरत कल्यान॥5॥

× × ×

मातु-पिता के अन्यतम, आज्ञाकारी राम।
चले त्वरत वनवास को, करके उन्हें प्रणाम॥6॥

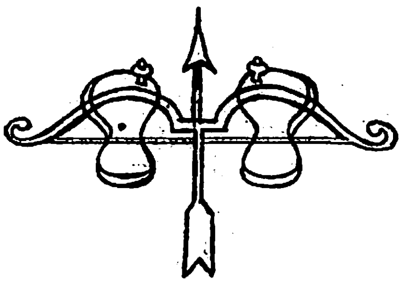
× × ×

सीय, लखन भी साथ हैं, बिलखें सारे लोग।
धैर्य बँधाते राम जी, करें धरम उपयोग॥7॥

× × ×

अटवी में निर्जन बसे, पालें व्रत आदेश।
वन का वैभव पेखते, पुलकित अन्तर्देश॥8॥

× × ×



हे पवन पुत्र हनुमान!

दिव्यांशु कुमार दीक्षित
खीरी (उ. प्र.)

हे पवन पुत्र हनुमान! ज्ञान कुछ मुझमें भी भर दो।
सेवा करें सदा हम सबकी ऐसा शुभकर वर दो॥
हे पवन पुत्र हनुमान! ज्ञान कुछ मुझमें भी भर दो॥
तम से भरा हुआ है यह जग, पथ का नहीं ठिकाना।
पग-पग पर संकट कंटक है, मुश्किल मंजिल पाना॥
स्वार्थपूर्ण इस जग में हे प्रभु! नव प्रकाश फिर भर दो।
हे पवन पुत्र हनुमान! ज्ञान कुछ मुझमें भी भर दो॥
तन से हार गया हूँ प्रभु! मन से भी विचलित हूँ।
होकर भ्रष्ट पंथ से अपने, माया से कीलित हूँ॥
आओ संकट मोचन मेरे, संकट सब क्षर दो।
हे पवन पुत्र हनुमान! ज्ञान कुछ मुझमें भी भर दो॥
संकट की नदियों में हर पल में डूबा जाता हूँ।
चाहूँ तेरा धाम जगत् से अब ऊबा जाता हूँ॥
मुझसे दीन दुःखी पर हनुमत्! तनिक कृपा कर दो।
हे पवन पुत्र हनुमान! ज्ञान कुछ मुझमें भी भर दो॥
चरण कमल में सदा आपके, मेरा मन मधुकर हो।
राम नाम का मधुरिम गुंजन, श्वांस-श्वांस अक्षर हो॥
लक्ष्य पंथ को कभी न भूलूँ वह साहस वर भर दो।
हे पवन पुत्र हनुमान! ज्ञान कुछ मुझमें भी भर दो॥

खण्ड – छः

माहात्म्य

राम से बड़ा राम का नाम

डा. ब्रजनन्दन वर्मा
मुजफ्फरपुर (बिहार)

भगवान् श्रीराम का चरित्र हमारे सम्पूर्ण जीवन में इतना रचा-बसा है कि हमें कभी भी अजनबी नहीं लगता है। यह हमारे जीवन को हमेशा नवीन आभा और आलोक प्रदान करता है। महाकवि तुलसीदास द्वारा रचित रामचरितमानस की पंक्तियाँ गाँव का एक अनपढ़, गरीब, मजदूर भी उतनी ही आसानी से गुनगुनाता रहता है जितना एक पढ़े-लिखे विद्वान द्वारा मनन और चिन्तन किया जाता है। आज हमारे जीवन में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का चरित्र काफी प्रतिष्ठित हो चुका है। यही कारण है कि जब भी हम 'रामराज्य' की बात करते हैं तो लोग बिना किसी भेद-भाव के इसका भाव समझ जाते हैं। राम ने अपने जीवन को काफी सहज और सरल बनाया था, तभी तो बिना भेद-भाव के शबरी के जूठे बेर खाने में कोई संकोच नहीं किया था। इसी प्रकार निषादराज को भी अपने गले से लगाकर दलितों के प्रति अपने प्रेम को उजागर किया था। इन्होंने सुग्रीव की सहायता भी की थी। साथ में विभीषण की भी सहायता की थी। राम ने अपना जीता हुआ राज्य उन्हीं को सौंपकर एक नया आदर्श कायम किया था, जो सर्वविदित है।

भगवान् श्रीराम का सम्पूर्ण जीवन करुणा का साकार रूप है, राम के जीवन-दर्शन में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक केवल करुणा के विकास के मार्ग ही मिलते हैं। राम अमीर-गरीब, विद्वान, अनपढ़ सभी के लिए समान रूप से श्रद्धा के पात्र हैं। वे हमारे लोक-जीवन की संस्कृति में, साहित्य में संजीवनी के समान सर्वत्र व्याप्त हैं। राम के बिना हमारे अस्तित्त्व की कल्पना करना ही बेकार की बात है।

आज हमारे समाज में चारों तरफ दुःख, निरपराधों को दी जाने वाली यातनाएँ, निहत्थे पर हमला करना, अन्याय को बढ़ावा देना, अपराधियों का इधर-उधर स्वतन्त्र घूमना आदि सभी रामकथा पर पुनः विचार करने के लिए बाध्य करते हैं। यह केवल मन को ही नहीं छूता बल्कि मन को शान्ति भी प्रदान करता है। श्रीराम के चरित्र के माध्यम से हमें जीवन के अनेक अनुत्तरित प्रश्नों के उत्तर भी आसानी से प्राप्त हो जाते हैं।

भगवान् श्रीराम के चरित्र को जो भी व्यक्ति आत्मसात् करता है वह समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, विभिन्न प्रकरा की बुराइयों को दूर करने में सहायक होता है। इसके माध्यम से दलित, कमजोर और समाज के जीवनधारा से पिछड़े हुए वर्गों और नारी उद्धार एवं उत्थान के लिए हमें नयी-नयी प्रेरणा मिलती रहती है। समाज के पिछड़े वर्गों को समान अधिकार के साथ-साथ जीवन दान देने की भी प्रेरणा देता है। शबरी के हाथ से जूठे बेर खाना समाज में व्याप्त छुआछूत के कोढ़ की जड़ से उन्मूलन करने का सन्देश देता है। हमें इन कुरीतियों को समाप्त करके ही सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करता है।

रामचरितमानस के दूसरे पात्र भगवान् श्रीहनुमान जी का चरित्र भी कम अनुकरणीय नहीं है। इनका चरित्र भी भारतीय समाज का मेरुदण्ड है। आदमी तभी तक ठीक रहता है, जब तक उसका मेरुदण्ड ठीक रहता है। हजारों वर्षों तक हम गुलाम जरूर रहे, परन्तु हमारा मेरुदण्ड कभी नहीं झुका, सैकड़ों बार हम पर आक्रमण होते रहे फिर भी हमारी संस्कृति को नष्ट नहीं कर सके। आज भी इस क्रम में लोग लगे हुए हैं फिर भी कोई हमारा बाल बाँका नहीं कर पा रहा है। क्योंकि हमारे पास अमूल्य धरोहर के रूप में भगवान् श्रीराम का चरित्र, जीवन के रग-रग में बसा पड़ा है। श्रीहनुमान जी श्रीराम के सेवक के रूप में आते हैं परन्तु उनका चरित्र भी हमारे समाज के लिए काफी जरूरी है। हमारी संस्कृति में सात लोगों के अमर होने की बात आती है जिसमें एक नाम श्री हनुमान जी का भी है। महाभारत काल में श्रीहनुमान जी की अपने भाई भीम (वायु का अंश) से मुलाकात करने की बात आती है—वे अपने भक्तों को भी दर्शन देते हैं।

17वीं शताब्दी में गोस्वामी तुलसीदास जी को भी हनुमान जी का दर्शन होने की बात आती है। इसका प्रमाण हनुमान बाहुक का प्रत्येक छन्द दोनों के सम्बन्धों की व्याख्या करता है।

स्वयं तुलसीदास ने कहा कि–"हमारे बाँह में दर्द है जिसे वायु (हनुमान) ने पकड़ा था।" आज सम्पूर्ण देश में श्रीहनुमान जी विविध रूपों में सर्वत्र विराजमान हैं। सभी जगहों पर इनकी पूजा-अर्चना होती है। ऐसे तो हमारे वैदिक साहित्य में, विभिन्न पुराणों में, विभिन्न तन्त्र साहित्यों में इनकी उपासना की चर्चा मिलती है। यही कारण है कि पंचमुखी हनुमान की उपासना तन्त्रों में भी बतायी गयी है।

प्रख्यात इतिहासकार विसेण्ट स्मिथ ने अपनी पुस्तक में लिखा कि "अकबर के समय भी उससे बड़ा एक व्यक्ति हिन्दुस्तान में था जो तुलसीदास के नाम से जाना जाता था। जिसकी यशगाथा सम्पूर्ण विश्व में गुंजित हो चुकी थी। 19-20वीं शताब्दी में मानस का अनुवाद विभिन्न देशों की 54 भाषाओं में हो चुका था। गोस्वामी तुलसीदास ने राम का चरित्र जन-जन तक पहुँचाने के लिए कीर्त्तन, कथा पाठ एवं रामलीला का माध्यम अपनाया था। आज भी इसी माध्यम पर हमारा समाज चल रहा है, आज भी देश के विभिन्न भागों में साल भर राम कथा, कीर्त्तन और रामलीला चलती ही रहती है।

एक बार की बात है कि भगवान् श्रीराम के वनगमन के समय जब वानरराज सुग्रीव विप्र का रूप धारण करके उनके पास गये तो उनकी बातों से श्रीराम इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने लक्ष्मण को अपने पास बुला कर कहा "हे लक्ष्मण, जिसने ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद न पढ़ा हो वह इस प्रकार की बातें नहीं बोल सकता है। वे व्याकरण की भी जानकारी रखते हैं। इन्होंने अपनी वार्त्ता के दौरान एक भी व्याकरण सम्बन्धित अशुद्धि नहीं की। यह आदमी अवश्य ही कोई भला पुरुष लगता है।"

तुलसीकृत रामचरितमानस का किष्किन्धा काण्ड और वाल्मीकि जी का सुन्दर काण्ड दोनों ही श्रीहनुमान जी का दिव्य चरित्र का काण्ड है। दोनों काण्डों में ही तान्त्रिक प्रयोग प्रचलित मिलते हैं। रामचरितमानस के किष्किन्धा काण्ड में असीम मन्त्र शक्ति है। इस काण्ड में ही रुद्रावतार श्रीहनुमान जी का विष्णु के अवतार श्रीराम से मिलन होता है। दोनों शक्तियों का एक साथ मिलन होने से एक महाशक्ति का उदय होता है, जिसके कारण आज तक संसार का कल्याण हो रहा है।

गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित पुस्तक श्रीहनुमान बाहुक एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है जिसमें 44 छन्दों का समावेश किया गया है, जो श्रीहनुमान जी के सम्पूर्ण जीवन का संकेत देता है। इसके अतिरिक्त हनुमान चालीसा, हनुमान

सठिका एवं बजरंग बाण स्त्रोत्र हैं। विनय पत्रिका में भी तुलसीदास ने 12 छन्दों में श्रीहनुमान जी की प्रार्थना की है। गीतावली और कवितावली में भी श्रीहनुमान जी के चरित्र का वर्णन मिलता है।

श्रीराम के साकेतवास के पश्चात् श्रीहनुमान जी का निवास स्थान भारतवर्ष ही रह गया। आज भी वे हम लोगों के बीच विराजमान हैं।

गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में 'राम-नाम' की महिमा की चर्चा करते हुए स्वयं कहा है–

''भव, कुभाव, अनरव आलाय हूँ।
राम जपत मंगल दिशी दस हूँ॥''

अर्थात् राम-मन्त्र इतना सिद्ध है कि भाव अर्थात् श्रद्धा से, कुभाव अर्थात् अश्रद्धा से, अनरव अर्थात् शत्रुता से और आलाय से भी राम-नाम का जाप किया जाय तो सभी प्रकार से मंगलकारी ही सिद्ध होता है।

रावण शत्रुभाव से राम का नाम बार-बार लेता था और नाम लेते-लेते वह भी स्वर्ग को चला गया जो सर्वविदित है। राम ने स्वयं भक्तों की कामनाओं को पूर्ण करने के लिए मानव शरीर धारण किया था। स्वयं संकट में रहे परन्तु समाज को सुखी करने का प्रयास करते रहे। राम का नाम अगर प्रेम-भाव से लिया जाता है तो उसका मंगलकारी प्रभाव होने लगता है। राम की शरण में आकर विभीषण ने अपने जीवन को सुफल बनाया। राम ने अहल्या का भी उद्धार किया। राम ने ही शिव के धनुष का खण्डन किया। अर्थात् उनका नाम ही भव-भय का भंजन करता है। राम ने एक ओर राक्षसी सेना का संहार किया तो दूसरी ओर असंख्य पापियों का भी उद्धार किया।

पं. श्री सूरजचन्द्र जी सत्य प्रेमी ने कल्याण में लिखा है कि 'राम नाम' के प्रताप से शैतान और हैवान भी इंसान बन जाता है और भगवान् से साक्षात्कार भी करता है। राम नाम का ही प्रभाव था जो पत्थर पानी के ऊपर तैरता रहा। अर्थात् राम नाम के प्रभाव से कमजोर भी बलिष्ठ हो जाता है इसका साक्षात् प्रमाण है, विश्वामित्र और वसिष्ठ ने द्वैत से राम नाम का जाप किया और अद्वैत के दर्शन किए। राम ने दोनों को अपना गुरु बनाया। राम नाम की महिमा का बखान करते हुए स्वयं तुलसीदास जी कहते हैं, कि–

''तुलसी जाके मुखन ते धोखेहु निकसत राम।
ताके पग की पगतरी, मोरे तन को चाम॥''

अर्थात् जिसके मुँह से धोखे में भी 'राम नाम' निकलता है, मेरे शरीर की चमड़ी उसके पाँव की जूती बनने योग्य है।

अन्त में हम कह सकते हैं कि 'राम' के बिना शायद हमारे जीवन-अस्तित्त्व की, साहित्य की और संस्कृति की सारी कहानियाँ अपूर्ण ही रह जायँगी। 'राम' का जो भी व्यक्ति साथ कर लेता है वह हर युग में जन्म-जन्मान्तर तक के पापों से मुक्त हो जाता है। राम सदैव हमारी रक्षा के लिए तैयार रहते हैं। जरूरत है भक्ति भाव से स्मरण करने की। आइए, हम सब मिलकर जाप करें–**''श्रीराम जयराम जय-जय राम।''**

येन केन विधि दीन्हे दान करइ कल्यान

अंशुमान सिंह
इलाहाबाद (उ.प्र.)

समुद्र मंथन से निकले अमृत घट को दानवों से बचाने के लिये, समुद्र तट से हटा कर सबसे पहले तीर्थ-राज प्रयाग लाया गया, जिसके प्रभाव से यहाँ प्रति बारहवें वर्ष कुम्भ पर्व मनाया जाता है। इस महापर्व पर यहाँ विश्व का सबसे बड़ा मेला आयोजित किया जाता है और छठें वर्ष अर्द्धकुम्भ का आयोजन होता है। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि तीर्थराज प्रयाग के निकट कन्नौज नाम का राज्य था, जहाँ थानेश्वर के महाराजा हर्षवर्द्धन का शासन चलता था। हर्षवर्द्धन ने अपने राज्य की सीमा उड़ीसा प्रान्त तक बढ़ा ली थी। हर्षवर्द्धन की दानशीलता विश्व प्रसिद्ध थी। वह तीर्थराज प्रयाग में प्रत्येक कुम्भ और अर्द्धकुम्भ पर्व पर अपना सर्वस्व दान कर देता था, यहाँ तक कि वह अपने पहने हुए राजसी वस्त्र भी दान कर देता था और अपनी बहन राजश्री द्वारा भेंट में दिये गये वस्त्र पहन कर वापस लौटता था। हर्षवर्द्धन के राज्य में चीनी यात्री ह्वेनसांग राजकीय अतिथि था, उसने अपने यात्रा-वृत्त में महाराजा हर्षवर्द्धन की दानशीलता का विस्तृत वर्णन किया है। महाराजा हर्षवर्द्धन का मानना था कि—

प्रभु का दिया हुआ सारा धन। अपना उसे समझना पाप॥
प्रभु माया जो अपनी समझे। उसे बहुत मिलता सन्ताप॥
मत संग्रह कर, दीजै दान। मत कीजै धन का अभिमान॥

तीर्थराज प्रयाग में त्रिवेणी मार्ग पर दानवीर महाराजा हर्षवर्द्धन की दान-मुद्रा में एक विशाल मूर्ति स्थापित की गयी है।

महात्मा विदुर, जो महाराज धृतराष्ट्र के महामन्त्री थे, का कहना है कि—

षडेव तु गुणाः पुंसा न ह्यातव्याः कदाचन।
सत्यं दान मनालस्य मनसूया क्षमा धृतिः॥

अर्थात् सत्पुरुष को कभी भी सत्य, दानशीलता, कर्मशीलता, अनसूया (गुणों में दोष दिखाने की प्रवृत्ति का अभाव), क्षमा तथा धैर्य आदि छः गुणों से विमुख नहीं होना चाहिये। उक्त छः गुणों में एक महत्त्वपूर्ण गुण दानशीलता भी है।

विद्वानों का कहना है कि दान से मनुष्य के काम, क्रोध, लोभ और मोह का नाश होता है। इस नश्वर संसार में मनुष्य प्रायः काम, क्रोध, लोभ और मोह-पाश में ही बँधा रहता है। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं—

तात तीन अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि विज्ञान धाम मन करहि निमिष महुँ क्षोभ॥

अर्थात् उक्त दुर्गुण, बड़े-बड़े ज्ञानी, विज्ञानी, ऋषि-मुनि पलक झपकते ही अपने वश में कर लेते हैं। उक्त परिप्रेक्ष्य में सुपात्र को धन-सम्पदा का यथाशक्ति सात्त्विक दान करने से आसक्ति, लोभ, मोह आदि दुर्गुणों का नाश अवश्यम्भावी है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने तामसी दान को वर्जित बताते हुए कहा है–

तामस धर्म करहि नर जप तप व्रत मख दान।
देव न बरषहि धरनी बंये न जामहि धान।।

अर्थात् कलियुग में तामसी कृत्यों की बहुलता होती है। ये कृत्य हैं—जप, तप, व्रत, मख के साथ दान भी है। ऐसे कृत्यों में दिखावा, प्रपंच, आडम्बर और पाखण्ड की प्रधानता होती है, क्योंकि–

सुनु खगेस कलि कपट हठ द्वेष दम्भ पाखंड।
मान, मोह, मारादि, मद व्याप रहे ब्राह्मण्ड।।

अर्थात् कलियुग में कपट, हठ (हठ योग या दुराग्रह), दम्भ, घमण्ड, द्वेष, पाखण्ड, मान-मोह और काम आदि दुर्गुण सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो रहे हैं। **''दम दाम दया नहिं जान मनी''**–अर्थात् इन्द्रियों को वश में करने की बात, दान और दया आदि सद्गुण या सत्कृत्य विलुप्त हो गये हैं।

कलियुग में केवल दो प्रमुख बातों का उल्लेख करते हुए तुलसीदास जी कहते हैं, पहली यह कि–

कलियुग सम युग आन नहि जो नर कर विश्वास।
गाइ राम गुण गन विमल, भव तर बिनहि प्रयास।।

रा.च.मा. उत्तरकाण्ड-103 (क)।

अर्थात् कलियुग में केवल हरि नाम जप या भगवद्भजन से ही भव-बन्धन और संसार-सागर से मुक्ति मिल जाती है। दूसरी बात, जो गोस्वामी तुलसीदास ने बतायी है, वह है–

प्रगट चारि पद धर्म के, कलि मुँह एक प्रधान।
येन केन विधि दीन्हे दान करइ कल्यान।।

रा.च.मा. उत्तरकाण्ड 103 (ख)

अर्थात् धर्म के चार चरण बताये गये हैं–सत्य, दया, तप और दान; किन्तु कलियुग में सत्य पालन, तपस्या आदि तो सम्भव नहीं है किन्तु लोभ (संग्रह के दुर्गुण के त्याग के लिये, मोह और आसक्ति के नाश के लिये और दम्भ, मद, अभिमान के नाश के लिये) दान करने से सर्वथा कल्याण होता है। इसीलिये कहा गया है कि दान एक हाथ से किया जाय तो दूसरे को भी उसका आभास नहीं होना चाहिये। दान के लिये यह भी आवश्यक है, कि दान सुपात्र को ही दिया जाय अन्यथा कुपात्र को दिये गये दान के दुरुपयोग के पाप का भागी, दानी को ही बनना पड़ेगा।

दान के लिये महाराजा बलि विश्व-विख्यात हैं, जिन्होंने सम्पूर्ण राज्य वामन भगवान् को दान कर दिया। अंग नरेश कर्ण को दानवीर कहा जाता है, जिसने अपने सीने से फाड़कर कवच और कुण्डल अपनी माँ कुन्ती को दे दिया था। कल्याणमस्तु।

लोकनायक तुलसीदास

विवेक सत्यांशु
इलाहाबाद (उ.प्र.)

गोस्वामी तुलसीदास की कविता का आधार लोकमंगल की भावना थी, इसी कारण सच्चे अर्थों में वे लोकनायक थे। लोक की संवेदना ही उनकी कविताओं का आधार थी। तुलसी के राम आम-आदमी की तरह जीवन में संघर्ष करते हैं, सीता की विरह-वेदना में आम-आदमी की तरह विलाप करते हैं, व्याकुल होते हैं। तुलसी के राम देवता के रूप में नहीं, आम-आदमी के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं। तुलसीदास ने खुद जीवन में दुःख और दरिद्रता को भोगा था, इसीलिए उनकी रचनाओं में यथार्थ परिष्कृत रूप में दिखायी पड़ता है। संवेदना, करुणा जन-सामान्य के हृदय को स्पर्श करती है।

तुलसीदास समन्वयवादी कवि थे। उनके काव्य की सबसे बड़ी विशेषता धर्म-समन्वय है। इस प्रवृत्ति के कारण वे वास्तविक अर्थों में लोकनायक कहलाए।

1. **सगुण-निर्गुण का समन्वय**—ईश्वर के सगुण और निर्गुण दोनों रूपों का विवाद, दर्शन एवं भक्ति दोनों ही क्षेत्रों में प्रचलित था, किन्तु तुलसीदास ने कहा–

   सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा॥

2. **कर्म, ज्ञान एवं भक्ति का समन्वय**—तुलसीदास की भक्ति मनुष्य को संसार से विमुख करके अकर्मण्य करने वाली नहीं हैं, अपितु सत्कर्म की प्रबल प्रेरणा देने वाली है।

3. **युग धर्म समन्वय**—भगवान् को प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार के बाह्य तथा आन्तरिक साधनों की आवश्यकता होती हैं। ये साधन प्रत्येक युग के अनुसार बदलते रहते हैं और इन्हीं को युग धर्म की संज्ञा दी जाती है। तुलसीदास ने इनका भी समन्वय प्रस्तुत किया है—

   कृतयुग त्रेता द्वापर, पूजा मख अरु जोग
   जो गति होइ सो कलि हरि, नाम ते पावहिं लोग॥

4. **सामाजिक समन्वय**—तुलसीदास के समय में भारतीय समाज अनेक प्रकार की विषमताओं तथा कुरीतियों से ग्रसित था। आपस में भेदभाव की खाईं चौड़ी होती जा रही थी। तुलसीदास ने वैसे समय में सन्त-असन्त का समन्वय, लोक, ग्राहस्थ का समन्वय, व्यक्ति और समाज का समन्वय तथा व्यक्ति और परिवार का समन्वय अपने काव्य में प्रस्तुत किया। श्रीरामचरितमानस में विश्व-प्रेम के सूत्र मिलते हैं। संसार में जितने भी युद्ध होते हैं, उनका जन्म पहले मानव के मन में ही होता है। तुलसीदास जी का मत है कि अभिमान और क्रोध से विरोध और हिंसा का जन्म होता है, इसलिए उन्होंने श्रीरामचरितमानस से इन दोषों को दूर करने का सुझाव दिया है। इस तरह हम देखते हैं कि श्रीरामचरितमानस में 'विश्व-प्रेम' के भी सूत्र मिलते हैं। पृष्ठभूमि में देखते हैं, इसलिए तुलसीदास लोकनायक के रूप में जनसाधारण में स्थापित हुए।

दशानन का "अन्तिम सैन्य-शिविर ध्वस्त"

डा. शिवनन्दन कपूर
खण्डवा (म.प्र.)

आर्यक राम विमान से, प्रथम भरत से मिलने नन्दिग्राम गये। उसके उपरान्त अयोध्या जाना था। नन्दिग्राम से अयोध्या तक के पथ पर हिम-शीत सलिल का सिंचन किया गया था। अनेक स्थान पर तोरण बँधे थे। उन शोभा-द्वारों को माल्य एवं अशोक, आम्र के नव पल्लवों से सज्जित किया गया था। सिंह-द्वार पर 'आर्यक राम चिरजीवी हों', अंकित था। पथ के दोनों ओर पंक्ति-बद्ध कदली-स्तम्भ तथा नारियलयुत घृत-दीप घट रखे गये थे। सुधा-धौत सदनों को सूत्र-बन्धन रहित कमलों तथा पचरंगे आभरणों से सजाया गया था। भरत से भेंट कर, जब राम चले तो उनका चार श्वेत अश्वों वाला पुष्प-रथ भरत जी हांक रहे थे। शोभा-यात्रा में सबसे आगे नर्तक-नर्तकियों का दल था। फिर पाणि-वादक की ताल तथा संकेत पर तूर्य, शंख, करताल, मुरज, दुन्दुभि आदि के वादक-दल थे। उनकी संयुक्त ध्वनि से नभ निनादित हो रहा था। लक्ष्मण तथा विभीषण चन्द्र-सा उज्ज्वल चामर लेकर श्रीराम के दोनों ओर व्यजन कर रहे थे। वानरराज सुग्रीव को शत्रुंजय नामक विशाल गजराज पर विभूषित किया गया था। अवध राज्य के आठों मन्त्री—धृष्टि, जयन्त, विजय, सिद्धार्थ, अर्थ साधक, अशोक, मन्त्रपाल तथा सुमन्त्र, मागध, दक्षिणात्य, अंग-बंग, ताम्रलिप्ति, निषध, कलिंग आदि स्थानों के ख्यात गजों पर थे। हाथियों पर सुनहरी झूले पड़ी थीं। गले में विशाल घण्टे थे। अमात्यों के हाथों में अवध राज्य के 'कोविदार' (कचनार) ध्वज शोभित थे।

हाथियों के पीछे अश्वों की पंक्ति थी। गणवेश में, 'कंचुक, कवच, अंगुलित्राण से युत सैनिक वीर-दर्प में अस्त्र लिये बैठे थे। अग्रिम श्रेणी में 'पुरुषक' जाति के प्रशिक्षित अश्व थे। वे दोनों पैर उठा कर पुरुषों की भाँति नृत्य कर रहे थे। उनके साथ ही पाणि-वादक ताली की लय पर स्वस्तिक, तूर्य, दुन्दुभि, शंख, करताल, आउम्बर आदि वाद्य-वृन्द वादकों का नेतृत्व कर रहा था। नर्तित हय उनकी ताल पर पैरों के घुँघरु बजाते ठुमक रहे थे। गजेन्द्र रह-रह सूँड़ उठाकर, चिंघाड़ उठते थे। पथ के दोनों ओर नारियल युत जल-भरे कलश पर घृत-दीप जल रहे थे। कदली-स्तम्भों की श्रृंखला श्रेणि-बद्ध सेनानियों का अभास करा रही थी। राम जी ने यहाँ से पुष्पक लौटा दिया था।

अयोध्या पहुँचकर, क्षौर-कर्म में कुशल, सुखहस्त 'केश-वर्धक' बुलाये गये थे। पर श्रीराम ने अलकों को कुछ सँवार कर, पुनः पहले के समान काक-पक्ष रखना उचित समझा। माता कौशल्या ने सीता ही नहीं, वानर-वनिताओं का भी उपयुक्त प्रसाधन किया। अभिषेक का आयोजन प्रारम्भ हो गया। चारों समुद्रों के साथ, देश की 500 नदियों का जल लाया गया। यह राष्ट्रीय एकता का संकेतक था। उक्त अवसर पर राजर्षि जनक भी

आये। विपुल रत्न लेकर केकय-नरेश मामा युधाजित् भी सम्मिलित हुए। काशिराज प्रतर्दन भी उपस्थित हुए। अन्य राज्यों से आए नृपों की संख्या तीन सौ हो गई थी। मुनि वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, काश्यप, कात्यायन, सुयश, गौतम तथा विजय ने सबसे पहले सिन्धु एवं नदियों के जल में औषधियाँ मिलाकर अभिषेक किया। इसके उपरान्त मातृरूपा मानी जातीं सोलह कन्याओं ने अभिषेचन किया। सबसे अन्त में अधिकारियों एवं व्यवसायियों को भी अवसर मिला। प्रजा उद्घोष कर रही थी, 'हमारे चन्द्र राम नक्षत्र-मण्डल तक प्रकाशमान रहें।' 'अवधपति राम की जय हो।' उसके लिये वह दिन मात्र 'पर्वणी' या उत्सव का न था। वह दिवस उल्लास, हास और रास लिये 'कौतुक-मंगल' या अनुपम 'महान् उत्सव' का बन गया था। कार्य सम्पन्न होने के पश्चात् अतिथि विदा हो गये। अन्य ऋषियों के साथ महामना अगस्त्य भी उस वेला में आना न भूले थे।

अब राम जी का ध्यान रावण के अन्तिम स्कन्धावार मथुरा की ओर गया। अगस्त्य जी ने उस ओर अनेक बार संकेत किया था। वहाँ का कार्य-वाहक लवणासुर प्रतापी तथा तापी होता जा रहा था। सभा में उसके विनाश के लिये पूछने पर शत्रु-सूदन ने उसे मारने का दायित्व लिया। उनका कथन था, 'आप तथा लक्ष्मण वन-वास से श्लथ हैं। भाई भरत भी तप-रत रहने से दुर्बल हैं। अतः यह मेरा कर्त्तव्य है।' शत्रु-सूदन ने मुनियों से उसके बल के सम्बन्ध में जिज्ञासा की। ज्ञात हुआ, लोला का ज्येष्ठ पुत्र मधु सदाचारी तथा शिव-भक्त था। उसने तप से भगवान् आशुतोष को प्रसन्न कर लिया था। महादेव जी ने उसे अनोखा अस्त्र दिया था। वह शस्त्र एक अद्भुत शूल था। उसमें आठ घण्टियाँ लगी थीं। फेंके जाते समय, वायु–लहरियों से घर्षण होने से उससे चिनगारियाँ छूटती थीं। प्रतीत होता है, कोई उल्का-पिण्ड जलता, कड़कड़ाता चला जा रहा है। भयंकर गर्जना से वह हृदय दहलाता था। इतना ही नहीं, वह शूल आवर्तक था। विशेष रीति से चलाये जाने पर वह अपने लक्ष्य को जला कर, वापस धारक के पास आ जाता था। दाहक तथा आवर्तक उस विचित्र शूल के कारण कोई उसके समक्ष न जाता था। उसे वर है, जब तक वह अस्त्र उसके हाथ में रहेगा, कोई उसे मार न सकेगा।

क्या अब तक किसी ने उसे मारने का प्रयास न किया? यह जिज्ञासा शत्रुघ्न के मन में उठी। उसका समाधान करते च्यवन ऋषि ने कहा, "अयोध्या-पति युवनाश्व के आत्मज मान्धाता अतिशय बलवान थे। उन्होंने स्वर्ग पर चढ़ाई की थी। देवराज ने उन्हें ताना दिया, "पहले लवणासुर पर विजय पा लो, फिर स्वर्ग जीतना।" उन्होंने उसके पास अधीनता हेतु दूत भेजा।

वह मदान्ध किसी की अधीनता क्यों स्वीकार करता? उसके पास सात्वत यादवों की सेना थीं। सुदृढ़ राज्य था। फिर विकट, विचित्र संहारक अस्त्र था। दूत अवध्य माना जाता था। पर उद्धत ने उसकी हत्या कर, उत्तर में उसका सिर भेज दिया। कुपित मान्धाता ने उस पर आक्रमण कर दिया। विरोधी के जल का अनुमान किये बिना उस पर आक्रमण करना मूढ़ता ही है। परिणाम वही हुआ। उसकी सेना नष्ट हुई। त्रिशूल चला। देखते-देखते रघुवंश के प्रतापी राजा की देह ईंधन-सी धधक उठी। इस घटना ने लोगों को और दहला दिया। युवनाश्व-सुत मान्धाता का मान और नाम भी लुप्त हो गया। यादव पराक्रमी थे। उन्होंने आर्य-संस्कृति के प्रसार में बहुत योग दिया था। मधु माल्यवान् की सुन्दरी पुत्री अनला या कुम्भीनसी का अपहरण कर लिया था। उसने उससे विवाह कर लिया। वह रावण की भगिनी लगती थी। मधु के पुत्र माधव लवण ने उससे भी सम्बन्ध जोड़ा। दोनों परस्पर सहायक हुए। इन कारधों से लवण और उद्धत हो गया था। राक्षस कुल की जननी के खान-पान का प्रभाव उस पर पड़ा था। लोग उसे असुर मान कर, लवणासुर कहने लगे थे।

अपने पूर्वज की वह अपमान-पूर्ण अवसान की कथा सुन कर, रिपुसूदन के नयन दहक उठे थे। नेत्र ही नहीं पूरी देह कोपानल से सुलग उठी थी। रोष से बोले, "मैं सुमित्रा-सुत प्रण करता हूँ। प्राण-प्रण से प्रयत्न कर, पूर्वज का प्रतिशोध लूँगा।"

वे राम की सेवा में गये। अपनी प्रतिज्ञा बताई। सुनकर वे बोले, तुम्हारी प्रतिज्ञा से मैं पूर्णतः प्रतिज्ञात हूँ। मैं क्या सभी भाई सहमत होंगे। रघुवंश में आज तक कोई काकरूक नहीं हुआ। न कोई कायर होकर पीठ दिखाता है, न प्रण कर, पग पीछे हटाता है। शक्ति, सैन्य तथा शूल-बल ने रावण के इस भगिनीय (भांजा) को गर्वोन्नत कर दिया है। हम इस स्कन्धावार का ही विनाश कर नहीं विराम लेंगे। मैंने वन में कबन्ध का वध किया था। सिर कन्धों में धँसा होने से, वह मात्र रुण्ड-सा लगता था। गज से बली उस असुर के सम्बन्ध में जन-श्रुति थी, समर में जब अयुत या दस हजार गज, नियुत या दश लक्ष तुरग और दस कोटि सैनिक काल के गल में समाते हैं, तब एक कबन्ध उपजता है। गज सा बल, हय सा वेग तथा रथ के कु + चक्री कबन्ध में शारीरिक विकार ही नहीं, मानसिक विकृति भी थी। वह रण-लिप्सा की जन्म-दात्री थीं। वे उदरंभरि, घस्मर होते हैं। वे पेट की ही आँख से देखते और सदा पेट की ही सोचते हैं। जैसे भस्मक रोगी की क्षुधा कभी नहीं मिटती, वैसे कबन्ध की भी तुष्टि नहीं होती। उनकी 'बाहें' लम्बी होती हैं। 'पहुँच' दूर तक होती है। अतः वे कुछ भी, कहीं भी अनर्थ करने में समर्थ हैं। छल से, बल से, कौशल से, वह सकल पदार्थ भुज-बन्ध में समेट 'पेट' में रखने में सफल हैं। समाज के इन निर्बन्ध 'कबन्धों' की 'बाहें' काटनी होंगी। अभी तो तुम मधुपुरी पर आक्रमण के लिये प्रस्तुत हो जाओ।"

राम ने शत्रुघ्न को विदा देने के पूर्व मधुपुरी के शासक रूप में राज-तिलक कर दिया। अभियान हेतु उनके अधीन विशाल सेना थी। प्रणाम कर वे चल पड़े। धौंसों की धमक से धरा थर्रा उठी। तूर्य-नाद तथा शंखों की तुमुल ध्वनि से दिशाएँ काँप उठीं। सूर्य-ध्वज लहराती सागर की लहर-सी सेना उमंग से उमड़ती चली। रिपू सूदन ने च्यवन से एक बार मिल लेना आवश्यक समझा। जिन यमुना-तट-वासियों ने लवण के अनाचार की बात की थी, उनमें वे मुख्य थे। उन्होंने एक विशेष सूचना दी। कहा, "लवण प्रातः मृगया के लिये वन जाता है। बली तथा अन्यान्य अस्त्र-चालन में निपुण होने से वह उस समय शिव-शूल नहीं ले जाता। उसे उसी समय ललकारो। इतना उत्तेजित करो कि शूल लाने की बात भूल जाये। एक बात और ध्यातव्य है। उसे नगर में न ललकारना। वह नित्य प्रातः शूल की पूजा करता है। यदि कोई उसे 'समाह्वय' (रण हेतु आह्वान) करता है, तो वह तत्काल शूल लाकर उसे जला डालता है। हाथ में उस अस्त्र के रहते वह अवध्य ही रहेगा। अतः मृगया के लिये वन जाते या लौटते समय ही उसे ललकारना उचित रहेगा।"

उनकी अधीनता में राम ने चार सहस्र अश्वारोही, दो सहस्र रथ, सौ गजराज और व्यय हेतु दस लाख स्वर्ण-मुद्राएँ भी दीं। एक विशिष्ट वाण देकर बोले, "यह शर मुझे मुनि अगस्त्य ने दिया था। इसका प्रयोग माधव लवण पर करना।"

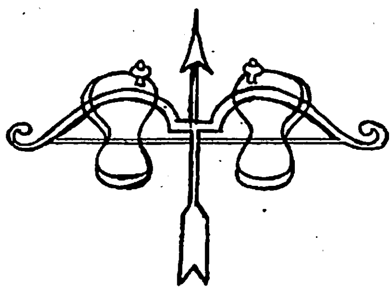
शत्रुघ्न ने सेना को चुपचाप आगे बढ़ने के लिये कहा। एक रात्रि उन्होंने वाल्मीकि के आश्रम में बिताई। अवध से प्रयाण के चौथे दिन वे मधुपुरी जा पहुँचे। यमुना पार कर, एक गुप्त तथा सुरक्षित स्थल पर शिविर स्थापित किया। लवण को मारने के लिये नगर से बाहर उसकी प्रतीक्षा करने लगे। कुछ काल बाद दीर्घकाय

लवण आता दिखाई दिया। कन्धे पर धनु, कर में करवाल लिये रथ पर था। उसके पृष्ठ भाग से संलग्न शकट में अनेक मृग, पक्षी आदि रक्ताक्त पड़े थे। काकुत्स को देख उसने कुत्सा और क्रोध से कहा, "कौन हे रे? तू यहाँ क्यों मरने खड़ा है?"

"नराधम्! मैं तेरा काल अवधपति राम का भाई हूँ। तुझसे वीर मान्धाता के हनन का प्रतिशोध लूँगा।"

"वही राम जिसने तेरी मातृश्वसा के भाई को मारा? अब तू मरेगा। ठहर, मैं अस्त्र लेकर आया।"

"यहाँ से तो तू सीधे यमपुर जायगा।" कह कह शत्रुघ्न ने वाण मारा। लवण ने उसे बचा कर, शर मारा। आघात से रिपुदमन संज्ञा-हीन हो गये। लवण शूल लाने बढ़ा। तब तक संज्ञा-युक्त हुए शत्रुघ्न ने राम के दिये बाण से उसे मार यमुना के पश्चिमी तट पर सात्वतों को परास्त कर, मधुपुरी पर अधिकार कर लिया। उसका नाम शूरसेन रखा। रावण का अन्तिम शिविर भी ध्वस्त हुआ।



खण्ड-सात

विविध

संस्कृति के महामानव थे हरिमोहनदास टण्डन

डा. सन्तोष खन्ना (तोषी भइया)
इलाहाबाद (उ.प्र.)

30 जुलाई को सावन का आखिरी सोमवार था, पूरे इलाहाबाद में जगह-जगह मन्दिरों-शिवालों में लोग भगवान शंकर की पूजा-अर्चना में लगे थे। हवाओं का झोंका मन को मद-मस्त किये हुआ था। इसी बीच अचानक मेरे मोबाइल फोन की घण्टी अपना स्वर अलापने लगी, सुनने के लिए कान को लगाया तो दूसरी तरफ से मेरे मित्र अमिताभ टण्डन (बबोनी) की आवाज आई, 'नन्हें बाबा का शरीर शाम 4 बजे शान्त हो गया।' सावन के महीने की पवन और उसके शोर का आनन्द क्षण भर में.....खेद का अनुभव और दुःख से आँखों में आँसुओं की धारा में बदल गया। लगा कोई मेरा अपना हमें छोड़ गया। अपने को सम्हाला और चैतन्य होने का प्रयास करने लगा, परन्तु पुनः नीर भरी आँखों में बचपन से जवानी तक की अवधि में बीते समय और उसकी स्मृतियाँ, जो प्रत्येक वर्ष के दशहरा के दौरान की थीं, किसी फिल्म और टी.वी. सीरियल की भाँति अपनी कल्पनाशील आँखों से देखने लगा।

बचपन से ही मुझे दशहरा का उत्सव बड़ा प्रिय रहा, इलाहाबाद में यह पर्व जैसे सभी को आनन्द देने वाला था, वैसे ही मुझे भी भाव-विभोर किये रहता। जब दशहरा प्रारम्भ होने में एक महीना शेष रहता, तो मन में अजीब-सी बेचैनी उत्साहित करती रहती। कुछ-न-कुछ करने की योजना सूझने लगती। उस समय मेरी उम्र लगभग 10-11 वर्ष की रही होगी। बचपन में रानीमण्डी स्थित (मनोहरदास के कटरे) के पुश्तैनी मकान में रहा करता था। घर के सामने ही 'बच्चा जी की कोठी' जहाँ से प्रयाग की संस्कृति का यह महाउत्सव शुरू होता है।

कमेटी की बैठक से लेकर भगवान श्रीराम, लक्ष्मण और माँ सीता के रात्रि स्वरूप का शृंगार कर, चौकी पर उनकी भव्य सवारी निकलने का सिलसिला क्वांर माह के शुक्ल पक्ष यानि अक्टूबर में शुरू होता है। दस दिनों तक की दशहरा अवधि में कोठी ही केन्द्र-बिन्दु बना रहता है। कमेटी के सभी सदस्य अपने-अपने दायित्वों को बड़ी निष्ठा और धार्मिक भाव से निर्वहन करते रहते दिखाई देते हैं। बचपन में रानीमण्डी में मुझे आठ-दस बालकों की मित्रता और उनका सानिध्य मिला। जिनमें अमिताभ टण्डन (बबोनी) और मयंक टण्डन विशेष थे। वर्षों स्कूल के बाद का समय इन्हीं के साथ चमेली लॉन और कोठी में खेलते हुए गुजरता था। दशहरा के दिनों में रानी मण्डी मोहल्ला शहर के निवासियों के लिए चहल-पहल के साथ उत्साह से गुलजार रहता था। सारे मुहल्ले के सम्भ्रान्त लोग चाहे वह युवा हों या वृद्ध महन्त बाबा हाथीराम पजावा रामलीला कमेटी के कार्यक्रमों में हिस्सा लेने के लिए अग्रणी रहते थे। मैं भी अपने बाल-सखाओं के साथ किसी काम के मिल जाने की प्रतीक्षा में रहता था, परन्तु ऐसा अवसर छोटे होने के कारण मुझे नहीं मिल पाता था। पजावा रामलीला मैदान में भगवान लीला कर जब कोठी पर विश्राम के लिए उतरते तो मैं भी भगवान के स्वरूप बने बच्चों को देखा करता था। विश्राम से पूर्व स्वरूपों के शृंगार उतारे जाते, फिर रात्रि में पुनः नये शृंगार धारण कराये जाते थे। जो चाँदी और

सोने के आभूषण और कीमती वस्त्र-विन्यास के होते थे। जिन्हें रखना-धरना सबसे महत्त्वपूर्ण और जिम्मेदार व्यक्ति के हाथों में वर्षों से रहा करता था। वह नाम "स्वनाम धन्य हरिमोहनदास टण्डन" जी था। जिन्हें लोग नन्हें भइया, नन्हें चाचा कहा करते थे। वह आकर्षक व्यक्तित्व के साथ हजारों की भीड़ में अलग दिखने वाले श्वेत वर्ण, श्वेत वस्त्रधारी स्वरूप में रहते थे। इन्हें बच्चों से कुछ अधिक स्नेह रहता था। तभी जब वह कुछ भी करते देखे जाते तो आस-पास बच्चे भी खड़े हो घेरे रहते थे। उन दिनों की बात है, दशहरा कमेटी के अध्यक्ष "बड़े बाबा" यानि स्व. बेनीप्रसाद टण्डन (बेनी बाबू) हुआ करते थे। सम्पूर्ण नगर में वह बेनी बाबू रईस के नाम से विख्यात थे। सभी सदस्यों के वह अतिप्रिय और आदरणीय होते थे। मुझे नन्हें बाबा उनके आदेश और निर्देश में दशहरा आयोजन की रूपरेखा तैयार करने में सदैव तत्पर दिखाई देते थे।

अपने बाल्यावस्था के दिनों में प्रयाग के महाउत्सव दशहरा में कुछ करने की अभिलाषा और रुचि को सृजनात्मक देने के लिए मुझे नन्हें बाबा के प्रति आकर्षित किया और उन्हें मेरे प्रति। दशहरा के दिनों में उनके अनेक कार्यों में सहयोग करना, धीरे-धीरे युवा अवस्था में आते-आते एक संस्कार के रूप में अपने में दिखाई देने लगा। बड़े-बुजुर्गों से पता चला कि यह संस्कार यूँ ही नहीं उत्पन्न हुआ है। मुझे यह वंश परम्परा के अनुसार विरासत में मिला है। स्वर्गीय हरिमोहनदास टण्डन जी की कलम से विदित हुआ, कि 1882 ई. में हमारे पिता श्री राजनाथ खन्ना के परदादा स्व. श्री तुलसीराम खन्ना खत्री रामलीला कमेटी (नया नाम पजावा रामलीला कमेटी) के मन्त्री थे। वहीं पारिवारिक और मुहल्ले के बुजुर्गों से ज्ञात हुआ कि मेरे दादा स्व. बद्रीप्रसाद खन्ना जी भी कमेटी से सम्बद्ध रहे और भगवान राम आदि का शृंगार का सृजन और निर्माण वही किया करते थे। साथ ही वह नगर के प्रख्यात रंगकर्मी भी थे।

यह बात जब नन्हें बाबा बताया करते और उनके संस्मरण सुनाया करते तो दशहरा से सम्बन्धित कार्यों को करने का उत्साहवर्द्धन हुआ और स्वयं को उनके सानिध्य में पाने लगा।

स्व. हरिमोहनदास टण्डन जी प्रयाग के दशहरा कार्यों में अनेक युवाओं को उत्साहित किया करते थे। मुहल्ले के सभी बच्चे उनके चारों ओर घूमा करते थे। वह सदैव सभी को उनकी प्रशंसा कर कमेटी के कार्यों में संलिप्त किये रहते थे। किसी भी कार्य में शिथिलता ज्ञात होने पर असीम ऊर्जा के साथ बच्चों के साथ बच्चा और युवा के साथ युवा बनकर स्वयं करने लगते थे।

पजावा रामलीला मैदान में आयोजित होने वाली लीला में वह नित्य भगवान की सवारी के साथ जाते थे और आयोजन करवाकर पुनः वापस लीला समाप्ति के बाद कोठी पर सुरक्षित उतरवाते थे। इनके साथ अनेक गणमान्य लोगों सहित स्व. कल्याणचन्द्र मोहिले (छुन्नन गुरु) भी अग्रणी रहते थे। दशहरे में उनकी सक्रियता पर प्रसिद्ध व्यंग्य लेखक श्री केशवचन्द्र वर्मा ने उन्हें "चलती-फिरती रामलीला" की उपाधि दे रखी थी। प्रारम्भ से आज तक वे राम-लक्ष्मण-सीता के रात्रि शृंगार से लेकर नई-नई चौकियों के निर्माण में सृजनात्मकता प्रदान करते और तन-मन-धन से योगदान करते थे।

कमेटी की अति प्राचीन चौकियाँ प्रत्येक वर्ष जनता के बीच आते-आते जीर्ण-शीर्ण हालत को प्राप्त हो रही थीं, उन्हें देख वह अत्यन्त चिन्तित रहा करते थे। उस जमाने में चौकियों को चार मोटे बाँस लगाकर कहार अपने कन्धों पर उठाया करते थे। इस परम्परा को सर्वप्रथम इन्होंने सेना के इंजीनियरों के सुझाव से बदलने की सोची और रामचन्द्र पटेल, आशानारायण टण्डन और अनेक सदस्यों के सहयोग से एक चार पहिया गाड़ी पर चारों ओर घुमाने की व्यवस्था-युक्त चौकी वाहन तैयार करवाया।

इन्होंने पुराने पोत की चौकी जो जीर्ण हो गई थी, उसे नवीन तितली के आकार में पुनः संरक्षित कर जनता के दर्शनार्थ निकलवाया। मुझे याद है, वह स्वयं बच्चा जी के धर्मशाला में निर्माण कर रहे कारीगरों के साथ लगे रहते थे और डिजाइन आदि स्वयं तैयार कर उन्हें अपनी कल्पना के अनुसार तैयार कराते थे। जब तक चौकी का निर्माण कार्य चलता रहता, वह बेचैन रहकर रातों जागते रहते और सृजन की धुन में रहते। दशहरा आयोजन का कार्य उनके लिए सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य होता था।

नन्हें बाबा ने कमेटी की चौकियों और उसके लकड़ी के ढाँचे को प्रत्येक वर्ष नवीनता प्रदान कर प्राचीन शृंगार कला को संरक्षित और सुरक्षित किया। दो-तीन सौ वर्षों पूर्व बने कलात्मक जड़ाऊ चौकी के अवशेष आज तक कमेटी के पास सुरक्षित हैं।

पजावा रामलीला कमेटी में कैसे नई चौकी या परम्परानुसार दशहरा कार्यक्रम में नया आयाम लाया जाये, यह कार्य हरिमोहनदास टण्डन से ही प्रारम्भ होता था। एक बार जो उन्होंने ठान ली, वह कार्य युवा सदस्यों के सहयोग से हमेशा हो जाता था। इधर कुछ वर्षों में जो भी नई-नई चौकियाँ निर्मित हुई हैं, उन्हें साकार करने में नन्हें बाबा को ही श्रेय जाता है।

इनमें नवयुवकों को प्रेरित कर उनसे राम-दल में झाँकियाँ निकलवाने की अद्भुत कला थी, जिसके लिए वह हमेशा इस विषय पर चर्चा करते रहते थे। इन्हीं की प्रेरणा से मैं भी प्रत्येक वर्ष एक चौकी स्वयं निर्मित कर राम-दल में भेजा करता था। जिसका सिलसिला वर्ष 1978 से 1992 तक चला। अनेक चौकी आयोजकों से कलात्मक चौकी बनाने की होड़ लगी रहती थी। दस दिनों तक रातों-दिन केवल चौकी की ही धुन में रहा करता, और अपने में अपार आनन्द की अनुभूति करता था। जो आज भी दशहरे के दौरान सिर पर सवार होने लगता है।

नन्हें बाबा का साथ प्रयाग के सभी साहित्यकार, कवियों, लेखकों और चित्रकारों के बीच सदैव बना रहता था। वह भी उनके अनुरोध पर दशहरा उत्सव में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेते थे।

रात्रि शृंगार की नई चाँदी की चौकी उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय के चित्रकला विभाग के अध्यक्ष और प्रसिद्ध चित्रकार स्व. शम्भूनाथ मिश्र से रेखांकित करवाया था। जिसे मात्र रेखांकित करते हुए देखने से मुझे भी चित्रकला में रुचि उत्पन्न हुई। युवा अवस्था में आते-आते मन में कुछ नया करने की प्रेरणा सदैव नन्हें बाबा दिया करते थे। एक बार दशहरा की तिथियाँ अधिक होने के कारण रात्रि शृंगार की एक चौकी कम पड़ रही थी। यह बात नन्हें बाबा ने बतायी तो मैंने बड़े डरे हुए स्वर में उनसे कहा, कि मैं भी एक शृंगार की चौकी बना सकता हूँ, यदि आप कुछ सहयोग और अनुमति दे दें तब। इस पर तत्काल वह बड़े प्रसन्न हुए और भण्डार का दायित्व सम्हाल रहे स्वराज गुप्ता (लाला) को मेरे सहयोग में लगा स्वयं प्रगति की जानकारी लेते रहे। यह चौकी वर्ष 1987 ई. में गंगा-यमुना की रेत कणों से निर्मित कर निकाली गई थी। जिसको वर्ष 1988 ई. की स्मारिका में सचित्र प्रकाशित किया गया।

स्वर्गीय हरिमोहनदास टण्डन बहुमुखी प्रतिभा के धनी भी थे। वह स्वयं एक अच्छे चित्रकार थे। उन्होंने इण्डियन प्रेस प्रकाशन के चित्रकार स्व. एच. बागची से चित्रकारी सीखी। पं. शम्भूनाथ मिश्र से म्यूरल पेन्टिंग सीखा। चित्रकार व प्रसिद्ध कवियत्री महादेवी वर्मा भी इनके सानिध्य में रहती थीं। नगर के चित्रकारों को भी वह सदैव उत्साहित करते थे। उनकी आर्थिक मदद के लिए वह उनकी बनाई कृतियाँ स्वयं अच्छे दाम देकर खरीद लिया करते थे। प्रसिद्ध लेखक, चित्रकार कवि डॉ. जगदीश गुप्त इनके मित्र और प्रशंसक थे। आप इलाहाबाद वर्किंग आर्टिस्ट एसोसियेशन के संरक्षक सदस्य भी थे। नगर की अनेक चित्रकला प्रदर्शनियों में वह स्वयं

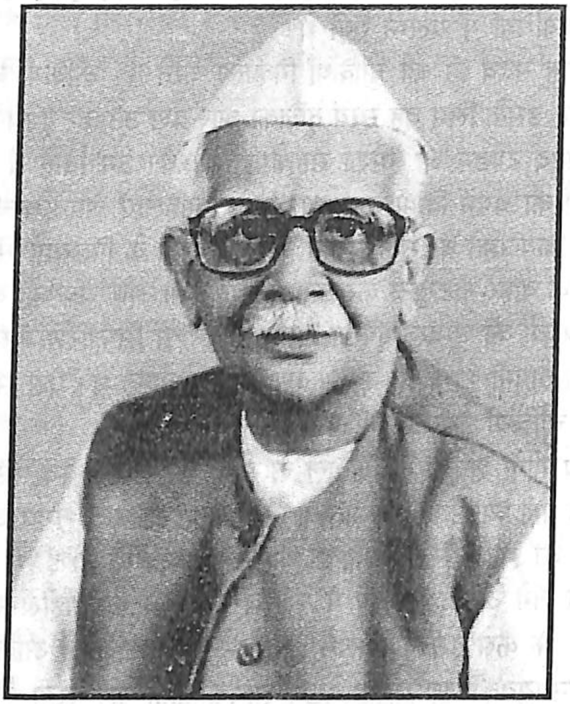
प्रतिभाग करते थे और कलात्मकता के अनेक पक्षों पर अपने उद्‌गार व्यक्त करते थे। इनके स्वभाव में सौन्दर्यानुभूति का अच्छा ज्ञान और अनुभव था। जिसके कारण वह अपने पूर्वजों की भाँति पजावा रामलीला कमेटी और उसकी सभी गतिविधियों में संलग्न रहते थे।

कमेटी के राम-दल में वह सदैव हर वर्ष चौकियाँ निकाला करते थे। चौकियों का स्वरूप कैसा हो, किस धार्मिक विषय पर आधारित हो, इसके लिए वह स्वयं तूलिका और ब्रश उठाकर दृश्य-अंकन करते थे। इस काम में इनके साथ स्व. द्वारिकाप्रसाद टण्डन जी हमेशा सहयोगी रहते थे। उन दिनों में राम-दल की चौकियों पर मुहल्ले के सुन्दर-सुन्दर बच्चों का चयन किया जाता था। अनेक महिलाएँ अपने बच्चों को, जो चौकी पर पात्रों के रूप में सजने के लिए हठ किये रहते थे, उन्हें सजाने के लिए कोठी के पिछवाड़े से स्व. सरोजनी दद्दा (स्व. बेनी बाबू की पत्नी) के कक्ष के बाहर खटखटा कर उन्हें पुकारा जाता और जब वह कमरे का दरवाजा खोलकर सामने आतीं तो उन्हें अपने बच्चों की सुन्दरता दिखा "नन्हें बाबा" से सिफारिश करने का अनुरोध किया जाता था। फिर क्या था, नन्हें बाबा अपनी भाभी श्री का आदेश तत्काल मानते थे। ऐसे समय में उन्हें इन बच्चों की इच्छापूर्ति के लिए कई और चौकियाँ तैयार करनी पड़तीं।

इस कार्य में इनके साथ गोपी शुकुल के शिवाले के सामने रहने वाले स्व. शिवप्रसाद खन्ना जी भी बड़े उत्साह से मदद करते थे। यह वही व्यक्ति हैं, जो प्रत्येक वर्ष दशहरा की रात्रि शृंगार की चौकी तैयार करते समय सभी को गरम-गरम देशी घी का हलुवा खिलाया करते थे। सन् 1970 से 80 ई. में दशहरे के समय दस दिनों तक रानी मण्डी सहित उससे लगे अनेक मुहल्लों में मेले जैसा उत्सव का माहौल रहता था। सभी मुहल्लों के लोगों में होड़ लगी रहती थी कि कैसे इस वर्ष अपने द्वारा राम-दल की सबसे आकर्षक और कलात्मक चौकी निकाली जाए। इस कार्य में नवयुवकों का उत्साह देखने लायक रहता था। परन्तु ऐसी उत्कृष्ट धार्मिक संस्कृति पर आज दूरदर्शन और टी.वी. सीरियलों ने अपनी फूहड़ संस्कृति का कुप्रभाव डालकर इलाहाबाद के दशहरा के महा उत्सव पर नगर के युवाओं को दिशाहीन कर दिया है।

ऐसी स्थिति में भी कमेटी के महामानव हरिमोहनदास टण्डन महन्त बाबा हाथीराम पजावा रामलीला कमेटी के उत्थान और परम्परा के लिए संघर्ष करते रहे। वह कभी किसी के असहयोग से विचलित नहीं हुए और निरन्तर भगवान के इस कार्यक्रम के रख-रखाव, निर्माण और विकास में अपनी ऊर्जा सदैव प्रदान करते रहे। आज उन्हीं की देन है कि दशहरा कमेटी के संवर्द्धन और प्रगति में श्री अमित कपूर, संजीव गुप्ता, राजेश मेहरोत्रा, नींबू और नारंगी, प्रदीप, राजे आदि अनेक नवयुवक कठिन परिस्थितियों में भी अथक परिश्रम से उनके आदर्श को अपनाते हुए सक्रिय हैं।

भविष्य में उनके आदर्श और पूर्वजों की दशहरा परम्परा पुनः सभी के सहयोग से अपने पुराने चरमोत्कर्ष पर प्रदर्शित रहेगी। कमेटी उनकी अभिलाषा और इच्छापूर्ति हेतु जनता के बीच कई नवीनतम चौकी और कार्यक्रमों को नये आयामों में प्रस्तुत करेगी।



श्रद्धाञ्जलि

श्री हरिमोहनदास टण्डन

(जन्म : उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद में 17 मई, 1921 एवं स्वर्गारोहण : 30 जुलाई, 2012 सायंकाल 4 बजे)

श्री पजावा रामलीला कमेटी में संरक्षक सदस्य श्री हरिमोहनदास टण्डन जी के निधन पर शोक संवेदना

लाला मनमोहनदास के चतुर्थ पुत्र श्री हरिमोहनदास टण्डन का जन्म 17 मई, 1921 को हुआ था। उन्होंने सी. ए. वी. हाई स्कूल, कायस्थ पाठशाला इण्टर कालेज तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त की। हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम. ए. की उपाधि प्राप्त करने के बाद वे हिन्दी साहित्य में शोध कार्य में लग गये, परन्तु पारिवारिक व्यस्तता के कारणवश डी. फिल. की उपाधि नहीं ले सके। उनका विवाह लखनऊ के एक सम्पन्न परिवार में श्रीमती लक्ष्मी देवी के साथ हुआ।

उन्हें साहित्य और कला में विशेष रुचि थी। उन्होंने श्री एच. बागची से चित्रकारी सीखी और पं. शम्भुनाथ मिश्र के पास बैठकर दीवार पर चित्र बनाने की कला (म्यूरल पेंटिंग) को समझा। उन्होंने नगर की अनेक साहित्यिक एवं रंगमंचीय संस्थाओं की सदस्यता ग्रहण कर उनकी गतिविधि में सहायता की। परिमल, कालिदास अकादमी, नाटक संस्थान आदि से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। इसी कारण वे यत्र-तत्र कुछ लिखते भी रहे। अनेक स्मारिकाओं का उन्होंने सम्पादन किया था।

शिक्षा प्रसार के प्रति भी उनकी स्वाभाविक अभिरुचि थी। अनेक शैक्षिक संस्थाओं के वे मंत्री, प्रबन्धक, कोषाध्यक्ष रह चुके थे। पारिवारिक परम्परा के अनुरूप वे समाज सेवा करने वाली संस्थाओं से जुड़े रहे। पारिवारिक न्यासों के अतिरिक्त लोकमान्य लोक सेवा ट्रस्ट, श्री हनुमान निकेतन ट्रस्ट, मुरलीमनोहर धर्मशाला न्यास, मुन्नी बीबी ठाकुरद्वारा न्यास, भारती भवन पुस्तकालय आदि अनेक संस्थाओं के वे अध्यक्ष रहे हैं।

पूर्वजों की भाँति उन्हें भी महंत बाबा हाथीराम पजावा रामलीला कमेटी से हृदय से लगाव था। उसके शृंगार के रख-रखाव, निर्माण और विकास से वे 1940 ई. से संलग्न रहे। उन्होंने इस कमेटी के इतिहास के शोध में कई वर्ष लगाये थे। प्रसिद्ध व्यंग्य लेखक श्री केशवचन्द्र वर्मा ने एक स्थान पर उनको चलती-फिरती रामलीला बतलाया है। 1940 ई. से लेकर आज तक जितने भी श्री राम-लक्ष्मण-सीता के शृंगार तथा शृंगार चौकी बनी सभी में उनका योगदान प्रमुख था। कला के प्रति उनकी अभिरुचि उन सभी निर्माणों में स्पष्ट झलकती है।

खत्री समाज की ओर भी उनका ध्यान गया था। वे खत्री सभा प्रयाग तथा उत्तर प्रदेश खत्री सभा के अध्यक्ष रह चुके हैं। उनके कार्यकाल में दोनों सभाओं का संगठन सुदृढ़ हुआ था। वे सामाजिक सेवा के लिये युवकों की भागीदारी के पक्षपाती थे। महिलाओं को भी समाज के हित में कार्य करने के लिये प्रोत्साहित करते रहे थे। समाजोत्थान की योजनाओं में वे सदा तत्पर रहते थे। उन्होंने खत्री जाति के अल्ल (उपजातियों) की सूची भी तैयार की। जिसमें लगभग 1000 उपभेद हैं।

उन्होंने पुस्तकालयों के उत्थान के लिये भी काम किया। वे भारती भवन पुस्तकालय के विकास में 1947 से लगे हुए थे। अपने पिता के आदेश से उन्होंने पुस्तकालय की पुस्तकों को व्यवस्थित ढंग से रखने और पाठकों की सुविधा के लिए उनका वर्गीकरण दशमलव पद्धति पर करने का कार्य सँभाला जो आज तक यथाशक्ति कर रहे थे। उत्तर प्रदेश पुस्तकालय संघ के निर्माण में भी उनका सहयोग था।

श्री हरिमोहनदास टण्डन जी हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान तथा गम्भीर अन्वेषक रहे हैं। उनकी कृतियाँ अनुसंधान के क्षेत्र में निरन्तर बहुचर्चित रही हैं। ये इस प्रकार हैं—

1. प्रयागराज लाला मनोहरदास का परिवार, 2. ब्रज के वैष्णव सम्प्रदाय और हिन्दी साहित्य, 3. खत्री जाति का ऐतिहासिक प्रकरण : अल्ल एवं संस्कार, 4. प्रयागराज, 5. इलाहाबाद का दशहरा उत्सव एवं 6. गंगा यमुना।

अखिल भारतीय ब्वायज स्काउट एशोशिएशन की इलाहाबाद शाखा के संगठन में उन्होंने सक्रिय भाग लिया। उसके अध्यक्ष की हैसियत से उन्होंने 1954 ई. को कुम्भ मेले में एक सफल कैम्प का

आयोजन किया और बाद में वे उसके जिला कमिश्नर बन गये, जिस पद को उन्होंने 1982 में त्याग दिया।

वे एक परिश्रमी, उदार, धार्मिक तथा सहृदय व्यक्ति थे। वे अपने पिता के बाद सरकारी खजाने तथा इलाहाबाद बैंक के जमानतदार कोषाध्यक्ष रह चुके हैं। कुछ दिनों तक उन्होंने ठेकेदारी का काम भी किया और नगर में सीवर लाइन तथा भवन बनवाये परन्तु व्यापार में अधिक मन न लगने के कारण उसे छोड़ दिया। अब वे समाज की विभिन्न क्षेत्रों में सेवा का कार्य कर रहे थे।

श्री हरिमोहनदास टण्डन को दो पुत्र तथा एक पुत्री प्राप्त हुई। बड़े पुत्र श्री सतीश टण्डन ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातक और एल. एल. बी. की उपाधि प्राप्त की है और परिवार के व्यापार को देख रहे हैं। श्री सतीश टंडन को एक पुत्र पुनीत टण्डन और दो कन्यायें हैं। श्री पुनीत ने कानपुर से इंजीनियरिंग पढ़ने के बाद अहमदाबाद से एम. बी. ए. किया है। बड़ी कन्या रुचि ने पिलानी में कम्प्यूटर इंजीनियर की परीक्षा उच्च श्रेणी में उत्तीर्ण की है। छोटी कन्या नित्या है।

हरिमोहनदास टण्डन के छोटे पुत्र श्री सुधीर टण्डन मैकेनिकल इंजीनियर हैं और उन्होंने कनाडा से एम. बी. ए. की उपाधि प्राप्त की है। श्री हरिमोहनदास की कन्या श्रीमती इन्दु मेहरोत्रा का विवाह पटना में हुआ है। अचानक दिनांक 30-7-2012 सायंकाल 4 बजे अपराह्न उनके निधन पर समस्त रामलीला परिवार शोक से पीड़ित है और ईश्वर से प्रार्थना करता है कि वह उनकी दिव्य आत्मा को शान्ति प्रदान करें।



श्रद्धाञ्जलि

श्री रामचन्द्र जायसवाल जी का 28 जुलाई, 2012 (शनिवार/एकादशी) को हृदयगति रुक जाने से निधन हो गया और वे पंच तत्त्व में विलीन हो गये। वे द्वितीय सत्र से लेकर 1968 तक इलाहाबाद विकास प्राधिकरण के उपाध्यक्ष, नगर महापालिका के वरिष्ठ सभासद रहे। 1975 में आपातकाल (इमरजेंसी) के दौरान जेल में रहे। 1980 में भारतीय जनता पार्टी से इलाहाबाद दक्षिणी और 1991 में इलाहाबाद पश्चिमी से विधायक का चुनाव लड़े।

2001 से 2005 तक राज्यपाल द्वारा मनोनीत नगर निगम के पार्षद रहे। भाजपा प्रान्तीय परिषद् के सदस्य, महानगर के उपाध्यक्ष, भाजपा व्यापार प्रकोष्ठ के जिलाध्यक्ष, उत्तर प्रदेश उद्योग व्यापार मण्डल के संगठनमन्त्री, प्रयाग व्यापार मण्डल के महामंत्री, संयुक्त व्यापारी संघर्ष समिति के संयोजक, भारत दर्शन शोध संस्थान के प्रबन्ध संयोजक, इलाहाबाद उद्योग व्यापार मण्डल के अध्यक्ष, गल्ला तिलहन व्यापार मण्डल के संरक्षक के रूप में आन्दोलन के माध्यम से व्यापारियों का नेतृत्व करते रहे। दूरसंचार सलाहकार समिति (T.A.C.), पीस कमेटी (शान्ति समिति) सहित कई समितियों के सदस्य रहे। अखिल भारतीय जायसवाल महासभा के सचिव, एच.के. जायसवाल सभा, प्रयाग के अध्यक्ष, महन्त बाबा हाथीराम पजावा रामलीला कमेटी के वरिष्ठ उपाध्यक्ष, संयुक्त रामलीला महासंघ के महामंत्री रहे। चाहे शासन की लड़ाई रही हो या प्रशासन की वे हर समस्या का निदान ढूँढ लेते थे। उनके निधन से समाज को गहरा आघात लगा है। वे अपने पीछे भरा-पूरा परिवार छोड़ गए। ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

यही हम सभी लोग ईश्वर से प्रार्थना करते हैं।

जय श्रीराम

हरि ॐ तत्सत्

महन्त बाबा हाथीराम पजावा रामलीला कमेटी, इलाहाबाद की स्थायी निधियाँ

	दाता	स्मृति में	रुपया	वर्ष
1.	श्री संगमलाल	नारायण मेवा-फरोशा	525/-	1978 ई.
2.	श्री संगमलाल	मेवालाल मेवा-फरोश	520/–	1979 ई.
3.	श्री संगमलाल	गणेश मेवा-फरोश	500/–	1980 ई.
4.	श्री गोपीनाथ कपूर	बद्रीनाथ दुर्गादेवी कपूर	1,001/–	1981 ई.
5.	श्री सुरेशप्रसाद कपूर	महेश प्रसाद कपूर तथा फूलमती कपूर	1,111/–	1982 ई.
6.	श्रीमती कृष्णलता	प्रेमनाथ कोहिली	1,000/–	1983 ई.
7.	श्री राजेन्द्र प्रकाश मालवीय	केदारनाथ मालवीय	1001/–	2007 ई.

महंत बाबा हाथीराम
पजावा रामलीला कमेटी, इलाहाबाद

संरक्षक सदस्य

1. श्री आशानारायण टण्डन
2. श्री बद्रीविशाल टण्डन
3. श्री हरीश टण्डन
4. श्री गोपेश खन्ना
5. श्री गोपालनारायण मालवीय
6. श्री राजकुमार टण्डन
7. श्री राकेशकुमार अरोड़ा
8. श्री कन्हैयालाल सेठ
9. श्री ओंकारनाथ महेन्द्र
10. श्री विजयकुमार तिवारी
11. श्री अमितकुमार कपूर
12. श्री महेशजी कपूर
13. श्री प्रकाशनारायण मालवीय

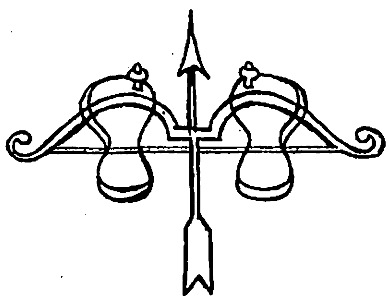
आजीवन सदस्य

1. श्री ओंकारनाथ खन्ना
2. श्री बसन्तलाल खन्ना
3. श्री रामेश्वरप्रसाद कपूर
4. श्री श्यामसुन्दर मेहरोत्रा
5. श्री हरिश्चन्द्र खन्ना
6. श्री हरिश्चन्द्र मेहरोत्रा
7. श्री अमरनाथ कपूर
8. श्री सुधीर टण्डन (हेस्टिंग रोड)
9. श्री गिरीश टण्डन
10. श्री मोतीलाल मालवीय
11. श्री वीरेन्द्रकुमार टण्डन
12. श्री गणेशचन्द्र मित्तल 'सेठू'
13. श्री सुधीर टण्डन (चौक गंगादास)
14. श्री सुरेशचन्द्र खन्ना
15. श्री सन्तकुमार टण्डन 'रसिक'
16. श्री अमित खन्ना
17. श्री सुभाषचन्द्र मेहरा
18. श्री ओमप्रकाश सेठी
19. श्री कुँवर शेखर
20. श्री पंकजकुमार मालवीय
21. श्री रामप्रसाद त्रिपाठी
22. श्री करवीर कपूर
23. श्री राजकुमार मेहरोत्रा
24. श्री रामजी केसरवानी
25. श्री रामचन्द्र पटेल
26. श्री संजीवकुमार गुप्ता 'नीबू'
27. श्री संदीपकुमार गुप्ता 'नारंगी'
28. श्री अनिल मेहरोत्रा
29. श्री अरुणकिशोर खन्ना
30. श्री अशोककुमार
31. श्री प्रेमकिशोर कपूर

विशिष्ट/नामित सदस्य

1. श्रीरामचन्द्र पटेल
2. श्री तुलसीदास मेहरोत्रा
3. श्री राजकमल पाण्डेय
4. श्री सुरेशचन्द्र खन्ना
5. श्री राजकुमार केसरवानी
6. श्री राजेश मेहरोत्रा (छोलू)
7. श्री बसन्तलाल खन्ना
8. श्री संजीवकुमार गुप्ता (नींबू)
9. श्री ब्रजेशकुमार मिश्र
10. श्री गोपालनारायण मालवीय
11. श्री बाबा गोपालदास
12. श्री सुरेशप्रसाद टण्डन (सुल्ले)
13. डा. विश्वनाथ कपूर
14. श्री विजयकुमार तिवारी
15. श्री बालकृष्ण मालवीय
16. श्री प्रकाश टण्डन (बेबी)
17. श्री बिशननारायण मेहरोत्रा
18. श्री हरिश्चन्द्र मेहरोत्रा
19. श्री परमानन्द मिश्र
20. श्री सन्तकुमार टण्डन (रसिक)
21. श्री गोविन्दनारायण टण्डन
22. श्री रामजी खरे
23. श्री विद्याधर द्विवेदी
24. श्री ज्ञानचन्द्र मेहरोत्रा
25. श्री कुँवरजी सेठ
26. श्री प्रकाशचन्द्र टण्डन
27. श्री वीरेन्द्र मोहिले
28. श्री ओंकारनाथ खन्ना
29. श्री अशोक मालवीय
30. श्री करवीर कपूर
31. श्री मोहनजी टण्डन
32. श्री रामजी मालवीय
33. श्री हीरालाल चड्ढा
34. श्री ओमप्रकाश सेठी
35. श्री रमेशचन्द्र कक्कड़
36. श्री राजबहादुर सिन्हा
37. श्री राजेशकुमार गुप्ता (गाँधी)
38. श्री नरेश सहगल
39. श्री पंकजकुमार मालवीय
40. श्री हरिश्चन्द्र मालवीय
41. श्री रतन टण्डन
42. श्री आशानारायण टण्डन
43. श्री कन्हैयालाल सेठ
44. श्री विमल जी श्रीवास्तव
45. श्री हीरालाल मालवीय
46. श्री गणेशदत्त तिवारी
47. श्री राजू मिश्रा
48. श्री अरुणकिशोर खन्ना
49. श्री रमेशचन्द्र मेहरोत्रा
50. श्री ओमनारायण मालवीय
51. श्री नीरज टण्डन
52. श्री अजय जैतली
53. श्री शिवबाबू साहू
54. श्री सत्यप्रकाश केसरवानी
55. श्री श्याम वोहरा
56. श्री रवीन्द्रकुमार नैय्यर
57. श्री राजीव कुमार नैय्यर
58. श्री ध्रुव पुरवार
59. श्री अनिल टण्डन
60. श्री सतीश पाठक
61. श्री सन्दीप कुमार गुप्ता (नारंगी)
62. श्री रितुराज नैय्यर

63. श्री कैलाश पुरी
64. श्री गोपालजी चौरसिया
65. श्री सचिनकुमार गुप्ता
66. श्री राकेश मेहरोत्रा
67. श्री केशवप्रसाद त्रिपाठी
68. श्री मंगलदास
69. श्री श्यामजी अग्रवाल
70. श्री उमेशचन्द्र कक्कड़
71. डा. सन्तोष खन्ना
72. श्री शिवबाबू गुप्ता (शिवजी)
73. श्री लक्ष्मीकान्त मिश्रा
74. श्री प्रकाशनाथ मेहरोत्रा
75. श्री राजू मालवीय
76. श्री अनिल कसेरा
77. श्री हेमन्त अवस्थी
78. श्री चिन्तामणि
79. श्री रमेशजी कपूर
80. श्री विनीत सेठ (गुज्जी)
81. श्री सुबोध टण्डन
82. श्री आलोक रस्तोगी
83. श्री रामजी कपूर
84. श्री विनीत चड्ढा
85. श्री राजेन्द्र पाण्डेय
86. श्री दीपचन्द्र तिवारी
87. श्री विनोद चड्ढा
88. श्री ओम कपूर
89. श्री घनश्याम सिगोरिया
90. श्री राकेश चड्ढा
91. श्री राजीव चड्ढा
92. श्री विनीत टण्डन
93. श्री पुनीत सेठ
94. श्री आलोक द्विवेदी
95. श्री रामकृष्ण अग्रवाल
96. श्री कैलाश बिहारी अग्रवाल
97. श्री कैलाश केसरवानी
98. श्री अनूप वर्मा
99. श्री अशोक केसरवानी
100. श्री विकास श्रीवास्तव
101. श्री राकेश खन्ना
102. श्री संजय खन्ना
103. श्री आदित्य नारायण टण्डन
104. श्री शुभम मालवीय
105. श्री अमित गुप्ता
106. श्री हरि कृष्ण चौरसिया
107. श्री सुधीर टण्डन
108. श्री अशोक कुमार वर्मा



श्री महन्त बाबा हाथीराम पजावा रामलीला कमेटी प्रयाग

तदर्थ समिति : प्राप्ति एवं भुगतान विवरण

(दिनांक 1.4.2011 से 31.3.2012 तक)

प्राप्तियाँ		धनराशि	भुगतान	धनराशि	
प्रारम्भिक रोकड़			**व्यय**		
नकद	2830.96		आरती खर्च	1,632.00	
सेन्ट्रल बैंक आफ इंडिया	1,23,061.41		बैंक खर्च	133.00	
बकाया खाता	18,350.00	1,44,242.37	भरत मिलाप खर्च	15,700.00	
आय एवं प्राप्तियाँ			केन्द्रीय प्रसारण खर्च	19,500.00	
चन्दा खाता	3,11,686.00		विद्युत खर्च	45,600.00	
अन्य चन्दा	21,000.00		हनुमान जी खर्च	3,090.00	
हनुमान जी	6,715.00		कार्यक्रम पुस्ति.का खर्च	48,220.00	
कार्यक्रम पुस्तिका	51,450.00		खजाना खर्च	3,426.00	
लीला	10,000.00		लीला खर्च	1,49,333.00	
रामदल	3,100.00		राजगद्दी खर्च	43,579.00	
केन्द्रीय प्रसारण	7,500.00	4,11,451.00	राम बारात खर्च	85,732.00	
			रामदल खर्च	1,55,827.00	
पजावा रामलीला स्थायी समिति		4,04,140.00	श्रृंगार खर्च	1,34,384.00	
			स्टेशनरी खर्च	5,960.00	
			अठरोजा खर्च	33,177.00	
			प्रेस कान्फ्रेन्स खर्च	3,750.00	
			केला श्रृंगार खर्च	14,000.00	
			नया सामान	1,525.00	**7,64,568.00**
			अन्तिम बाकी		
			रोकड़ शेष	18,386.96	
			उधार लेना	21,800.00	
			सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया	1,55,078.41	**1,95,265.37**
योग		**9,59,833.37**	**योग**		**9,59,833.37**

स्थान : इलाहाबाद
दिनांक : 30.08.2012

अमिताभ टण्डन
(कोषाध्यक्ष)

वास्ते एस. कक्कड़ एण्ड कं.
सनदी लेखाकार
(एस.सी. कक्कड़)

श्री महन्त बाबा हाथीराम पजावा रामलीला कमेटी प्रयाग

स्थायी समिति : प्राप्ति एवं भुगतान विवरण

(दिनांक 1.4.2011 से 31.3.2012 तक)

प्राप्तियाँ		धनराशि	भुगतान		धनराशि
प्रारम्भिक रोकड़			**उत्सव**		
नगद	706487.85		रामनवमी	10120.00	
मूलधन			तुलसी जयन्ती	3000.00	**13120.00**
बचत खाता	17287.00				
इलाहाबाद बैंक			**प्रचार एवं प्रसारण**		
बचत खाता	2274896.19		स्मारिका व्यय		97822.00
सावधि खाता	55684.00		नव-निर्माण खाता		593550.00
बकाया खाता	19501.00	**3073856.04**	मरम्मत खाता		7350.00
आय एवं प्राप्तियाँ			**अन्य व्यय**		
दान खाता		1007750.00	स्टेशनरी खाता		94.00
			विविध व्यय		1100.00
आय-स्मारिका खाता		23012.00	कार्यकारिणी खाता		404140.00
ब्याज खाता			**रोकड़ खाता**		
बचत खाता	90434.00		नगद	599061.85	
मूलधन बचत खाता	684.00		मूलधन		
फिक्स डिपाजिट	3041.00	94159-00	बचत खाता	17971.00	
			बचत खाता	2382883.19	
			सावधि जमा	55684.00	
			बकाया खाता	26001.00	**3081601.04**
		4198777.04			**4198777.04**

(सतीश चन्द टण्डन)

वास्ते एस. कक्कड़ एण्ड क.
सनदी लेखाकार
(एस.सी. कक्कड़)

स्थान : इलाहाबाद
दिनांक : 30.08.2012

पं0 सं0 899/40/3/ए0 एल0/84